श्री भगवती सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : भगवती सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– जिनशासन में श्रुतज्ञान रूप द्वादशा गी मौलिक आगम रूप में प्रसिद्ध है जिसमें **पाँचवाँ** अ ग सूत्र **व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र** है। यह शास्त्र वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रो में अतिविशाल है एव महत्वपूर्ण अनेक सैकडों विषयों को लिये हुए होने से इसका अपरनाम **भगवती सूत्र** प्रसिद्ध हुआ है। जिससे मौलिक–आगमिक नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र केवल लेखन में रह गया है । बोलचाल में प्रचलन में श्री भगवती सूत्र उपनाम ने ही पूर्ण स्थान पा लिया है । इसी मौखिक पर परा का वहन करते हुए इस आयोजन में भी भगवती सूत्र नाम को प्राधान्य दिया गया है ।

इस सूत्र का स क्षिप्त परिचय श्री न दीसूत्र तथा समवाया ग सूत्र में मिलता है । वहाँ यह बताया गया है कि इसमें छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर है । स ख्या दृष्टि से यह गिनती आज सिद्ध नहीं की जा सकती है तथापि इस शास्त्र में देव, देवेन्द्र, नरेन्द्र, गणधर, साधु, श्रावक, श्राविका अन्य मतावल बी ब्राह्मण आदि के प्रश्न और भगवान महावीर के उत्तर विशाल स ख्या में उपलब्ध है । मुख्य रूप से भगवान के उत्तर 'गौतम' इस स बोधन पूर्वक होने से यह आगम भगवान महावीर और गौतम गणधर के प्रश्नोत्तरों का महास ग्रह रूप है, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है ।

द्वादशा गी के रचनाकार गणधर प्रभु होने से यह शास्त्र भी गणधर रचित है । किसी भी गणधर का नामकरण रचना के साथ जोडा जाना योग्य नहीं है क्यों कि **"अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गु थ ति गणहरा णिउणा ।"** यहाँ पर सूत्र गु थन में बहुवचन से गणधरों का सामान्य कथन है । इसी के आधार से हमें समस्त **अ ग शास्त्रों को** गणराज्य के स विधान के समान व्यक्तिगत नाम के बिना गणधर रचित इतना ही स्वीकारना चाहिये । इस विषय को इस प्रावधान के

प्रथम–द्वितीय भाग में प्रार भिक प्रश्नों में विशेष स्पष्ट किया गया है । जिज्ञासु पाठक उस स्थल का पुनरावलोकन करें ।

इस शास्त्र का आगमिक नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र है जिसका प्राकृत–अर्धमागधी भाषा में **वियाह पण्णत्ति** यह शुद्ध लेखन एव उच्चारण है । क्यों कि **व्याख्या** शब्द का प्राकृत में 'वियाह' शब्द योग्य बनता है । तथापि लय विशेष से रूढ पर परा में **'विवाहप्रज्ञप्ति'** भी लिखा एव बोला जाता है । इसे भी व्याख्याकारों ने स्वीकार कर अर्थघटन करने का प्रयत्न किया है । यों प्राकृत भाषा में एक ही शब्द के अनेक वैकल्पिक रूप भी स्वीकारे जाते हक्त । जिसे व्याकरण के अभ्यासी समझ सकते हैक्त ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के व्याख्याकार–विवेचनकार कौन है ?

उत्तर– वर्तमान में इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । उसके बाद अनेक बहुश्रुत श्रमणों ने इस सूत्र पर स स्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में स क्षिप्त, विस्तृत अर्थ-विवेचन आदि लिखे हक्त जो विविध प्रकार से मुद्रित उपलब्ध है । जिसमें स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है ।

प्रश्न–३ : इस सूत्र में किन–किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर– जैन वाङ्मय में जैनशास्त्रों में आने वाले मौलिक प्राय: सभी विषय इस महाकाय महाशास्त्र में प्रश्नोत्तर रूप में स ग्रहित हुए हैं । जिसमें कथानक–जीवनचरित्र, उपदेश, स यमाचार, श्रावकाचार, तत्त्व, भ गजाल, मतमता तर, चर्चाएँ, क्षेत्रीय वर्णन, स्व–सिद्धा त, षड्द्रव्य, नारक देव स ब धी वर्णन, ज्योतिषी देव–देवलोक, सूर्य–चन्द्र आदि का भ्रमण, विरोधी भावों वाले गोशालक द्वारा उपद्रव अर्थात् भगवान के समवशरण में दो महामुनियों की हत्या, कोणिक–चेडा जैसे भगवान के परम भक्त जैन राजाओं का सामान्य कारण से युद्ध करके १ करोड ८० लाख*(कदाचित् १ लाख ८० हजार)* जीवों का घमासान आदि विविध, विचित्र विषय समाविष्ट किये गये हैक्त । स क्षेप में

सरल से सरल एव कठिन से कठिन विषय इस शास्त्र में निरूपित किये गये हैक्त ।

प्रश्न–४ : इस सूत्र में विभाग-प्रतिविभाग किस रूप में कहे गये हक्त ?

उत्तर– इस सूत्र में मुख्य विभाग–अध्याय–४१ है, जिन्हें **शतक** कहा गया है एव शतक में आये प्रति विभागों को **उद्देशक** कहा गया है । जिनकी स ख्या कोई भी निर्धारित नहीं है । बत्तीसवें शतक तक ये दो विभाग–शतक और उद्देशक रूप है । उसके बाद शतक तेतीसवें से शतक, अवाँतर शतक और उद्देशक यों तीन विभाग किये गये हक्त । शतक–१५ में कोई विभाग नहीं है, एक ही शतक विभाग में गोशालक स ब धी विशाल वर्णन है ।

इस शास्त्र में उद्देशकों की स ख्या भी १० से लेकर, ११,१२, ३४ और १९६ आदि भी हक्त । यह शास्त्र प्राचीन पर परा से १५७५२ श्लोक प्रमाण का माना जा रहा है । ब्यावर से प्रकाशित युवाचार्य मधुकर मुनि स पादित इस सूत्र के भाग–४ की प्रस्तावना में उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी ने सभी शतकों के अक्षरों की गिनती से उपलब्ध १९,३२० (उन्नीस हजार तीन सौ बीस) श्लोक प्रमाण यह शास्त्र वर्तमान में उपलब्ध है ऐसा स्वीकार किया है ।

स क्षेप में इस शास्त्र के ४१ शतक, अ तर शतक को गिनने से कुल १३८ शतक तथा कुल १९२३ उद्देशक हक्त एव अपेक्षा से १९३२० श्लोक प्रमाण यह शास्त्र उपलब्ध है ।

अति विशालता के कारण इस शास्त्र का प्रकाशन (१) प डित बेचरदासजी दोशी अनुवादित टीका ग्र थ चार भागों में (२) स स्कृति रक्षक स घ सैलाना से सात भागों में (३) आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से चार भागों में (४) गुढप्राण फाउन्डेशन राजकोट से ५ भागों में (५) एव आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. द्वारा स पादित हिंदी–गुजराती दोनों भाषा से स युक्त १७ भागों में पूर्ण किया गया है ।

हमारे सारा श प्रावधान में ३४० पृष्ट के करीब एक पुस्तक में इस शास्त्र के भावों को समाविष्ट किया गया है । प्रस्तुत प्रश्नोत्तर प्रावधान में हमें भी इस शास्त्र के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध ऐसे दो विभाग

करना आवश्यक हुआ है । प्रथम विभाग–पूर्वार्ध में शतक–१ से १२ का समावेश किया है और उत्तरार्ध में शतक–१३ से ४१ तक इस शास्त्र को पूर्ण किया है ।

शतक–१ : उद्देशक–१ से १०

प्रश्न–१ : प्रथम शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस शतक में प्रति विभाग रूप १० उद्देशक हक्त । उनमें अनेक विषय समाविष्ट है। तथापि प्रत्येक शतक के प्रार भ में विषय स कलन रूप में अथवा तो उद्देशकों के नाम निर्देशन रूप में एक गाथा आलेखित की गई है। किसी शतक के प्रार भ में आवश्यक होने पर अनेक गाथा के द्वारा भी उद्देशक का परिचय दिया गया है ।

उस गाथा में दिये गये स क्षिप्त शब्द उद्देशक के मुख्य विषय को लेकर होते हक्त या उद्देशक के प्राथमिक विषय को लेकर होते हक्त। सार यह है कि उस गाथा में अपेक्षा विशेष से प्रत्येक उद्देशक के विषय–सापेक्ष नाम दर्शाये गये हक्त । इसलिये कहीं–कहीं इसी शास्त्र के विषय को स क्षिप्त करने के लिये उस–उस उद्देशक का सूचन उस उद्देशक नाम से किया जाता है । यथा– श.९/३२ में 'सद्दुद्देसए' (शब्द उद्देशक) शतक–५ उद्देशक–४ के लिये । श.११/१० में 'अत्थिकाय उद्देसए' श.२ उद्दे.१० के लिये । इस शतक की आद्यगाथा अनुसार १० उद्देशकों का मुख्य विषय या प्रार भिक विषय इस प्रकार है–

(१) रायगिह-चलण– प्रथम उद्देशक में **चलमान-चलित** इस सिद्धा त का सर्वप्रथम निरूपण है । प्रश्न एव सूत्र के प्रार भ की उत्थानिका रूप में गौतम स्वामी द्वारा प्रश्न पूछने के स्थल रूप में राजगृहीनगरी का कथन है ।

(२) दुःख– दूसरे उद्देशक के प्रार भ में दुःख के स्वकृत या अन्यकृत होने स ब धी प्रश्न है ।

(३) क खपदोस– तीसरे उद्देशक में का क्षा मोहनीय स ब धी वर्णन है।

(४) **पगइ**– चौथे उद्देशक के प्रार भ में कर्मप्रकृति स ब धी निरूपण है।

(५) **पुढवी**– पाँचवें उद्देशक में प्रथम प्रश्न नरक पृथ्वी स ब धी है । फिर आवास स ब धी वर्णन है ।

(६) **जाव ते**– जितनी क्षेत्र दूरी सूर्योदय के समय होती है उतनी दूरी सूर्यास्त के समय होने का कथन इस छट्ठे उद्देशक के प्रार भ में है ।

(७) **णेरइए**– सातवें उद्देशक के प्रार भ में नैरयिक के उत्पन्न होने स ब धी वर्णन है ।

(८) **बाले**– आठवें उद्देशक में सर्व प्रथम एका त बालजीवों के आयुष्य ब ध स ब धी निरूपण है ।

(९) **गुढए**– नवमें उद्देशक में जीव के कर्मों से भारी और हल्का होने स ब धी कथन है ।

(१०) **चलणाए**– अन्यतीर्थिकों की **'चलमान अचलित'** मान्यता का इस दसवें उद्देशक में निराकरण–ख डन है ।

इस प्रकार इस शतक के तीसरे उद्देशक में मात्र का क्षा मोह स ब धी विविध निरूपण है । शेष सभी उद्देशक में अनेक विषय निरूपित है ।

प्रश्न–२ : शास्त्रों के प्रार भ में म गलाचरण रूप म गल पाठ होते हक्त ? क्या इस शास्त्र के प्रार भ में म गल पाठ है ?

उत्तर– अ ग आगमों का निरीक्षण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गणधर भगव तो को आगम के प्रार भ में या आगम के आदि, अ त, मध्य में म गल करने की आवश्यकता नहीं होती है । तदनुसार प्रथम अ ग आचारा ग सूत्र के प्रार भ में भी कोई म गल पाठ नहीं है और न ही उसमें आदि, मध्य, अ त म गल की प्रथा रखी है । उसी प्रकार इस भगवती सूत्र के सिवाय १० ही अ गशास्त्रों में सीधा आगम विषय ही प्रार भ हो जाता है ।

अत: अनुभव सिद्ध तथ्य है कि यह भगवती सूत्र विशाल अति विशाल शास्त्र है, इसका लेखन निर्विघ्न पूर्ण होवे उसके लिये यदा–कदा लेखन काल में शास्त्र लिपिकों ने इस भगवती सूत्र के प्रार भ में विविध म गल सूत्र, म गल शब्द लगाये हक्त जो प्राचीन टीकाकार

श्री अभयदेव सूरि के पूर्व लग चुके थे । क्यों कि उनकी टीका में उन म गल सूत्र पाठों की विवेचना हुई है।

इस भगवती सूत्र के अ त में भी म गल रूप प्रशस्ती आदि है वे भी टीकाकार के सामने रही है कि तु वहाँ टीकाकार ने उन अ तिम म गल रूप प्रशस्तियों को लहियों की है ऐसा कहकर व्याख्या नहीं की है पर तु प्रार भ में उन्हें यह स्मृति या आभास नहीं हुआ इसका कारण छद्मस्थता है ।

प्रस्तुत आगम गणधरकृत है। उन्हें शास्त्र को लिपिबद्ध करना ही नहीं था तो वे ब्राह्मी लिपि को नमस्कार क्यों करे ? वहीं पर श्रुत-देवता को भी नमस्कार किया गया है । व्याख्या में श्रुतदेवता गणधरों को ही स्वीकारा गया है । तो गणधर आगम की रचना करने वाले हक्त वे खुद को नमस्कार क्यों करेंगे ? इस प्रकार म गलपाठ लहियों के रखे हुए सिद्ध होते हक्त । इसीकारण ये म गल पाठ प्रतियों में भिन्न भिन्न रूप में मिलते हक्त । हस्तलिखित प्रतों में एव प्रकाशित प्रतियों में इन म गल पाठों में एकरूपता नहीं है । कई प्रतियों मे ब्राह्मी लिपि को नमस्कार रूप एक पद है । किन्ही प्रतियों में ब्राह्मी लिपि और श्रुत को नमस्कार रूप दो पद हक्त तथा किन्ही प्रतों में तीसरा पद **श्रुत देवता को नमस्कार** रूप है । किन्ही प्रतियों में ये १,२ या तीनों पद नमस्कार म त्र से पहले हक्त फिर नमस्कार म त्र है । किन्ही प्रतों में प च परमेष्टी नमस्कार म त्र पहले है बाद में ये १, २ या ३ म गलपाठ हक्त । इस प्रकार की विविधता से भी यह स्पष्ट होता है कि शास्त्रलेखन कर्ताओं ने अपनी ढचि अनुसार ये आदि नमस्कार पद लिखकर फिर शास्त्र का प्रार भ किया है ।

इस विचारणा को ध्यान में रखते हुए प च परमेष्टी नमस्कार के पाँच पद भी इस शास्त्र के प्रार भ में जो उपलब्ध हक्त वे भी यहाँ गणधर कृत न होकर लेखनकाल के ही सिद्ध होते हक्त । क्यों कि गणधरों ने नमस्कार म त्र की रचना आवश्यक सूत्र में पूर्ण रूप से दो श्लोकों में करी है जो आवश्यक सूत्र की प्राचीन व्याख्या– भाष्य, निर्युक्ति में स्वीकारा गया है और टीका प्रत में आवश्यक सूत्र के प्रथम आवश्यक में पूरा नमस्कार म त्र प्रथम सूत्र रूप में स्वीकार कर

उसकी व्याख्या की है तदनन्तर दूसरा पाठ 'करेमि भ ते' स्वीकारा है।

वास्तव में गणधर प्रभू आगम रचना आवश्यक सूत्र से ही प्रार भ करते हक्त अर्थात् आवश्यक सूत्र की अ गसूत्रों से भी प्राथमिकता है यह भी आगम पाठों से सुस्पष्ट है । क्यों कि अणगारों के अध्ययन वर्णन के वाक्य में 'सामायिक आदि (छ अध्यायमय आवश्यक सूत्र) सहित ग्यारह अ गो का अध्ययन किया' ऐसा पाठ आता है । इस प्रकार गणधर भगव तो द्वारा नमस्कार म त्र को आवश्यक सूत्र के प्रार भ में रखा होने से फिर आचारा ग आदि किसी भी सूत्र में उन्हें रखना आवश्यक नहीं होता है । भगवतीसूत्र के पहले भी चार अ गशास्त्र है, भगवती सूत्र पाँचवाँ अ गसूत्र है । प्रथम आचारा ग सूत्र में पुन: नमस्कार म त्र पूरा या अधूरा(प चपरमेष्टी नमस्कार) रखना आवश्यक नहीं हुआ उसके बाद के (२) सूयगडा ग (३) ठाणा ग (४) समवाया ग सूत्र में भी नमस्कार म त्र या कोई म गल शब्द नहीं रखा, इसी तरह छट्ठे आदि अ गसूत्र ज्ञाता, उपासकदशा आदि में भी कोई म गल शब्द या नमस्कार म त्र नहीं रखा तो इस अकेले भगवती सूत्र के प्रार भ में गणधरों को अधूरा नमस्कार म त्र रखने का कोई कारण नहीं हो सकता । जिस तरह दूसरे शतक से आगे के सभी शतक **गाथा** से ही प्रार भ होते हैक्त वैसे ही यह प्रथम शतक भी गणधरों ने गाथा से ही प्रार भ किया है ऐसा स्वीकारना न्यायपूर्ण होता है ।

इसी विचारणा अनुसार भगवती सूत्र में आये मध्य म गल पद भी (गोशालक शतक आदि में) गणधर कृत नहीं समझकर लेखनकर्ता के समझ लेने चाहिये ।

सार भूत तात्पर्य यह हुआ कि आवश्यक सूत्र में तो नमस्कार म त्र उस प्रथम अध्ययन का प्रथम सूत्र पाठ ही है । जो दो श्लोकमय पूर्ण पाठ है । अन्य आचारा ग आदि किसी भी शास्त्र में म गल रूप अधूरे नमस्कार म त्र का एक श्लोक या अन्य म गल पद कुछ भी गणधर कृत नहीं है । म गल रूप में लेखन कर्ताओं के लिखे हुए विभिन्न रूप से पाठ मिलते हक्त । ऐसे ही प्रवाह से कल्पसूत्र के प्रार भ में नमस्कार म त्र की स्थिति है जो कल्पसूत्र की पुरानी कोई प्रत में मिलता और कोई प्रत में नहीं मिलता है । अत: नमस्कार म त्र के पाँच

पद अर्थात् अधूरा सूत्र किसी भी शास्त्र के प्रार भ में लिखा होना लेखनकर्ताओं की ही देन है ।

वास्तव में गुणों से युक्त गुणी आत्माएँ ही नमस्करणीय होती है । स्वत त्र गुण आदरणीय आचरणीय धारणीय होते हक्त । ऐसा नहीं कि- "मक्त क्षमा को व दन करता हूँ, मक्त विनय को नमस्कार करता हूँ" ऐसे नमस्कार अनुपयुक्त होते हक्त । इसलिये लिपि या श्रुत, मोक्ष साधकों के लिये नमस्करणीय नहीं हो सकते । **श्रुत देवता** शब्द से गुणधारक गणधर प्रभू होने का अर्थ किया गया है। गणधर स्वय आगम रचयिता है तो वे स्वय को व दन क्यों करेंगे ? इस प्रकार श्रुतदेवता के नमस्कार का पद भी गुणी को नमस्कार होते हुए भी स्वय को नमस्कार होने से यहाँ अनुपयुक्त है ।

प्रश्न-३ : द्वादशा गी-आगम श्रुत शाक्तत है तो फिर इन अ गशास्त्रों में तीर्थंकर गणधरों के गुण-वर्णन और उनका पारस्परिक स वाद तथा शासन के वर्षों बाद की घटनाएँ इनमें उपलब्ध हो रही है वह कैसे ?

उत्तर- तात्त्विक सैद्धा तिक वर्णन की दृष्टि से द्वादशा गी शाश्वत है। अपने शासन के तीर्थंकर आदि के नाम, स्तुति, गुणकीर्तन आदि यथास्थान गणधर भगव त शासन के अनुरूप स पादित करते हक्त । प्रश्नोत्तर शैली में की गई आगम या अध्ययन की रचना में गणधर यथोचित नाम शासन के अनुरूप स पादित कर सकते हक्त ऐसा अधिकार प्रत्येक शासन के गणधर पद प्राप्त करने वालों को स्वत: होता है।

शासन के प्रार भ में रचना हो जाने पर भी उस के बाद की घटनाएँ लम्बी उम्र वाले गणधर यथासमय योग्य स्थान पर जोड सकते हक्त । इस प्रकार घटनाएँ, कथानक और नामकरण यथासमय योग्य समझकर गणधर स पादित कर सकते हक्त । सभी गणधरों के मोक्ष हो जाने के सैकडों वर्ष बाद भी बहुश्रुत पूर्वधर आदि बहुमति सहमति से समुचित घटनाएँ प्राप्त आगम में स पादित कर सकते हक्त। इस प्रकार ये अपने-अपने तीर्थंकर के शासन पूरते स पादन होते हक्त, जिसमें सिद्धा त और तत्त्व रचना में परिवर्तन नहीं होता है ।

इन्हीं कारणों से व्यक्तिगत तीर्थंकर के शासन रूप परिणत

द्वादशा गी में तीर्थंकर गणधरों के गुण-स वाद आदि मिलते हक्त । गणधर गौतम प्रभू एव भगवान के स वाद भी मिलते हक्त । भगवान महावीर के जीवन से स ब धित गौशालक, जमाली आदि **घटनाएँ** भी शास्त्रों में उपलब्ध है और प्रस्तुत शतक में राजगृही नगरी के वर्णन युक्त उत्थानिका होने का हेतु भी यही समझना चाहिये ।

इस प्रकार द्वादशा गी, तत्त्व सिद्धा तो की अपेक्षा शाक्तत भी है और उपरोक्त अपेक्षाओं से स्व-स्व शासन योग्य स पादित भी होती है । इसीलिये गणधर रचित द्वादशा गी कही जाती है तथा वर्तमान अवसर्पिणी हुण्डासर्पिणी होने से गणधरों के बाद बहुश्रुत पूर्वधर आचार्यों से स पादित भी कुछ अ श एव नये स पादित शास्त्र भी दशवैकालिक, प्रज्ञापना, छेदसूत्र एव न दी सूत्र आदि मिलते हक्त । अनेका त सिद्धा त से इस विषय को समझकर, उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं का समाधान किया जा सकता है ।

तथापि बहुश्रुत पूर्वधरों की स पादन-रचना में और लहियों के म गल रूप पदों में भिन्नता समझनी चाहिये । इन दोनों को एक या समकक्ष नहीं किया जा सकता, यह ध्यान रखना जरूरी है ।

प्रश्न-४ : गौतम स्वामीने 'चलमाणे चलिए' आदि ९ पदों को लेकर भगवान से प्रश्न किया, उसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर- इन नौ पदों से दो प्रकार के तत्त्वों का निर्णय हुआ है- (१) कोई भी कार्य प्रार भ किया, वह स्थूल दृष्टि से भले कुछ समय बीतने के बाद पूर्ण होता है तथापि वह कार्य सूक्ष्म दृष्टि से प्रतिसमय प्रतिक्षण कुछ न कुछ होता जा रहा है यह प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझाया गया है । (२) कर्म क्षय होने की क्रमिक प्रणाली प्रार भिक चार शब्दों से बताई गई है और पीछे के पाँच शब्दों से कर्मों की विभिन्न अवस्थाएँ स्थितिघात रसघात आदि का स केत है ।

(१) 'चलमाणे चलिए' सिद्धा त का स्पष्टीकरण :- कोई भी कार्य प्रार भ किया जाता है और अ त में पूर्ण किया जाता है । वह कार्य अपेक्षा से हर क्षण होता है एव पूर्ण की अपेक्षा अ तिम समय में निष्पन्न होता है । एक गज-मीटर कपडा बनकर तैयार हुआ । वह उस रूप में अ तिम क्षण में बना, फिर भी पूर्व के प्रत्येक क्षण में

भी बना है अन्यथा एक ही क्षण में एक मीटर कपडा बनकर तैयार नहीं हो जाता है ।

इस दृष्टि से यह कहा जाना उपयुक्त होता है कि कोई भी किया जाने वाला कार्य उसी समय में कुछ हुआ अर्थात् जितना प्रथम समय में किया गया, उतना तो उस समय में हो ही गया । अतः किया जाने वाला कार्य अपने प्रत्येक क्षण में हुआ यह कहना अपेक्षा एव नय दृष्टि से उपयुक्त ही है ।

कार्य की पूर्णता ही उपयोगी होने से, लक्षित दृष्टि का कार्य पूर्ण होने पर ही वह कार्य हुआ ऐसा प्रयोग किया एव समझा जाता है, यह स्थूल दृष्टि है । स्थूल दृष्टि एव सूक्ष्म सैद्धान्तिक दृष्टि दोनों को अपने अपने स्थान तक, सीमा तक ही समझने का लक्ष्य रखना चाहिये । स्थूल दृष्टि को सूक्ष्म दृष्टि से और सूक्ष्म दृष्टि को स्थूल दृष्टि से टकराने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा करने से लोक में अनेक विवाद खडे होते हक्त । इसलिये जिस दृष्टि से जिसका जो कथन हो उसे उसी दृष्टि से समझने एव समन्वय करने का प्रयत्न करना चाहिये ।जो जब जितने कर्म आत्मा में चलायमान हो रहे हक्त, उदीर्ण हो रहे हक्त, वेदन हो रहे हक्त, क्षीण हो रहे हक्त, उन्हें उतने अ श में चले, उदीर्ण हुए, वेदे एव प्रहीण हुए, ऐसा कहा जा सकता है ।जो कर्म स्थिति से छिन्न हो रहे हक्त, रस से भिन्न हो रहे हक्त, प्रदेशों से क्षय होने के काल में जल रहे हक्त नष्ट हो रहे हक्त, आयुष्य कर्म क्षय होने की अपेक्षा मर रहे हक्त एव सम्पूर्ण क्षय की अपेक्षा निर्जरित हो रहे हक्त, उन्हें छिन्न हुए यावत् निर्जरित हुए, ऐसा कथन, एक देश क्षय के समय भी, किया जा सकता है। कर्मों का चलित होना यावत् प्रहीण होना, इस कथन में समुदाय कर्म की अपेक्षा रही हुई है और छिन्न, भिन्न आदि में स्थिति घात, रस घात, प्रदेश घात आदि अलग-अलग विशेष अपेक्षाएँ रही हुई है, जो उपर स्पष्ट की गई है ।

एगट्ठा- प्रारंभ के चार शब्द एक अर्थ वाले अर्थात् क्रमिक एव स ब धित प्रवृत्ति वाले हक्त । **णाणट्ठा-** बाद के पाँ च शब्द भिन्नार्थ अर्थात् स्वत त्र अर्थ प्रवृत्ति वाले हक्त।

प्रश्न-५ : प्रथम उद्देशक के सूत्र ९ से ४७ तक में चौवीस द डक

स ब धी वर्णन में क्या समझाया गया है ?

उत्तर– वहाँ २४ द डक के जीवों की स्थिति, श्वासोश्वास और आहार स ब धी कथन है उनका विस्तुत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में होने से यहाँ प्राय: स क्षिप्त कथन है तथापि कहीं आहार श्वासोश्वास का कालमान प्रज्ञापनानुसार दर्शाया गया है, यथा– एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय का आहार विमात्रा से, तिर्यंच प चेन्द्रिय का आहार उत्कृष्ट दो दिन से, मनुष्य का आहार उत्कृष्ट तीन दिन से (जुगलियों की अपेक्षा) कहा है । इसी तरह देवों का कालमान भी कहा गया है। मनुष्य तथा तिर्यंच प चेन्द्रिय में महाशरीरी(युगलिये) बहुत पुद्‌गलों का आहार करते हक्त किंतु बार बार नहीं करके कदाचित्(२–३ दिन से) आहार करते हक्त । वे ही छोटे शरीर वाले अल्प पुद्‌गलों का और बार बार आहार करते हक्त बच्चों के समान ।

आहार के पुद्‌गलों का जब ग्रहण होता है तभी परिणमन होता है अन्य विरोधी विकल्प निषिद्ध है ।

पूर्व ग्रहित पुद्‌गलों का चय उपचय तथा उदीरणा, वेदन, निर्जरा भी होती है । जिसमें आहार द्रव्य की अपेक्षा चय उपचय दो ही होते हक्त । कर्म द्रव्य की अपेक्षा भेदन, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा होती है । ये चारों अणु और बादर अर्थात् अल्प तथा अधिक दोनों प्रकार से होतेहक्त । इसके अतिरिक्त कर्मों में उदवर्तन–अपवर्तन, स क्रमण, निधत्ति-करण, निकाचितकरण ये चारों करण जीव के त्रैकालिक अल्पाधिक दोनों होते रहते हक्त । यह समुच्चय कर्मवर्गणा स ब धी कथन है । इसके बाद तैजस-कार्मण रूप में ग्रहण चय उपचय यावत् निकाचितकरण तक सभी कथन है ।

आत्मावगाढ(अचलित) कर्म पुद्‌गलों का ही ब ध उदीरणा वेदन उद्‌वर्तन-स क्रमण, निद्यत्त-निकाचितकरण होता है । निर्जरा मात्र आत्मप्रदेशों से चलित कर्मों की होती है ।

प्रश्न–६ : आर भ, आत्मार भ आदि शब्दों का क्या अर्थ है और इस स ब ध में यहाँ क्या समझाया गया है ?

उत्तर– हिंसा आदि पापकारी प्रवृत्तियों के लिये **आर भ** शब्द का प्रयोग हुआ है । स्वय पापकार्य करने वाला आत्मार भी, अन्य से कराने वाला **परार भी** और दोनों तरह से पाप कार्य करने वाला **उभयार भी** होता है । २३ द डक के जीव आत्मार भी आदि तीनों होते हक्त । मनुष्य में स यत को छोडकर शेष सभी में तीनों होते हक्त। स यत में भी अप्रमत्त मुनि अनार भी होते हक्त। प्रमत्तमुनि में शुभ योगी मुनि अनार भी होते हक्त । कि तु अशुभ योगी मुनि आत्मार भी आदि तीनों हो सकते हक्त । सिद्ध भगवान अनार भी होते हक्त ।

इस तरह (१) अप्रमत्तमुनि (२) शुभयोगी प्रमत्तमुनि (३) सिद्ध, ये अनार भी होते हक्त । शेष स सार के सभी प्राणी तीनों प्रकार के आर भ वाले हिंसादि पाप करने वाले हो सकते हक्त ।

प्रश्न–७ : ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों में से आगामी भव में साथ में कौन चलता है ?

उत्तर– ज्ञान–दर्शन दोनों अपने विद्यमान स्वरूप में, है जैसे ही परभव में साथ चल सकते हक्त और यहीं पर नष्ट भी हो सकते हक्त । चारित्र (तप)परभव में विद्यमान स्वरूप में साथ में नहीं जा सकते कि तु उनका फल–श्रेष्ठ परिणाम परभव में साथ जाता है ।

कारण यह है कि ज्ञान–दर्शन चारों गति में और मोक्षगति में स्वभाव से जीव में पाया जाता है । चारित्र केवल मनुष्य भव में ही होता है ऐसा स्वभाव है । देश चारित्र तिर्यंचगति में होता है कि तु यहाँ उसकी अपेक्षा नहीं है ।

प्रश्न–८ : स यम या त्याग-व्रत के बिना भी जीव देव बन सकते हक्त ?

उत्तर– स यम, त्याग–तप की आराधना करने वाले जीव तो देव बनते ही हक्त और व्रत–नियम नहीं करने वाले भी कितनेक जीव देव बन सकते हक्त । यथा– जो लोग पुण्यवानी की कमी से लाचारी से भूख प्यास सहन करते हक्त, लाचारी से ब्रह्मचर्य पालते हक्त; इसी प्रकार ठ डी, गर्मी, मैल आदि सहन करते हक्त; इस प्रकार कष्टमय जीवन जीने वाले क्रूर परिणाम नहीं होने से सामान्य परिणामों में मरकर सामान्य देव अर्थात् छोटी उम्र के वाणव्य तर देव बनते हक्त । वहाँ उन देवों का

जघन्य १०-२० हजार वर्ष का जीवन, उत्कृष्ट एक पल्योपम का जीवन भी अच्छी सुख-सुविधा वाला होता है अर्थात् दैवी सुख उन्हें प्राप्त होते हक्त । उन देवों के भी अपने देवलोक रूप विशिष्ट नगर होते हक्त । जो अपनी पृथ्वी के अ दर १०० योजन नीचे जाने के बाद के ८०० योजन में होते हक्त । वहाँ उनका वैभव मानव से हजारों लाखों गुना श्रेष्ठ होता है।

प्रश्न-९ : अणगार बनने वाले तो आश्रव त्यागी स वरवान होते हक्त तो स वृत्त और अस वृत्त ऐसे दो भेदों से उनका कथन क्यों किया जाता है ?

उत्तर- घर छोडकर अणगार बनने वाले साधक सभी सरीखे नहीं होते हक्त और जीवनभर वैसे ही नहीं रह पाते हक्त अर्थात् कई अणगार साधक स यम लेने के बाद किसी न किसी रूप में आश्रवों का सेवन करने लग जाते हक्त । कुछ साधक पूर्ण अप्रमत्त भावों से स वरमय जीवन का पालन करने वाले भी होते हक्त । इस कारण यहाँ सूत्र में अणगार को दो विभाजन से कहा गया है, यथा- स वृत्त अणगार और अस वृत्त अणगार ।

प्रस्तुत में यह बताया गया है कि अणगार बनने वालों में कोई अपना कल्याण कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो सकता है और कोई कल्याण नहीं करके स सार में ही भ्रमण करते हक्त। यहाँ यह स्पष्ट किया है कि जो किसी प्रकार के आश्रवों का पापों का सेवन नहीं करते, जिनाज्ञा अनुसार यथार्थ स यम पालन करते हक्त वे स वृत्त अणगार कहे जाते हक्त और वे ही मुक्त हो सकते हक्त । जो किसी न किसी प्रकार से मन, वचन, काया से आश्रवों का, पापों का, सावद्य कार्यों का अर्थात् जिनाज्ञा विपरीत आचरणों का स्वीकार कर लेते हक्त, वे अस वृत्त अणगार कहे जाते हक्त । वे मुक्त नहीं हो सकते अपितु स सार में ही भ्रमण करते हक्त । जब कभी वे किसी भव में या वर्तमान भव में भी पूर्ण स वृत्त अणगार बनेंगे तभी मुक्त हो सकेंगे ।

कारण यह है कि अस वृत्त अणगार अनेक प्रकार से कर्मों का स ग्रह, कर्मों की आत्मा में पुष्टी करता है और कर्म ही स सार की वृद्धि के हेतु होते हक्त । अत: उनके स सार की, भवभ्रमण की वृद्धि

होती है ।स वृत्त अणगार का कर्माश्रव ब ध रहता है, पूर्व कर्म तप से क्षय होते हक्त, अत: उसकी मुक्ति शीघ्र स भव है ।

इस प्रकार दीक्षित होने वालों में भी स वृत्त अस वृत्त दोनों प्रकार के अणगार हो सकते हक्त । अत: उनका परिणाम भी यहाँ दोनों प्रकार का कहा गया है ।

प्रश्न-१० : 'सेव भ ते-सेव भ ते' इन शब्दों का तात्पर्य क्या है?

उत्तर- प्रस्तुत सूत्र में प्राय: गुढ शिष्य के अर्थात् भगवान और गौतम के प्रश्नोत्तर हक्त । गुढ से प्रश्न पूछकर उत्तर प्राप्त कर लेने के बाद सही समाधान मिल जाने पर गुढ वचनों का सन्मान, बहुमान इन शब्दों से किया जाता है कि भगवन् ! आपने कहा वैसा ही है अर्थात् आपके वचन सत्य है, प्रमाणभूत है । मुझे अच्छी तरह समझ में आ गया है । मक्त आपके कहे अनुसार सत्य स्वीकार करता हूँ । ऐसे भावों को व्यक्त करने वाले ये शब्द हक्त- सेव भ ते! सेव भ ते! ॥ प्रथम उद्देशक स पूर्ण ॥

प्रश्न-११ : कर्म सिद्धा त के विषय में यहाँ क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर- जीव अपने उदय में आये दु:ख को और कर्मों को भोगता है। उदय में नहीं आवे तब तक स्टोक में पडे कर्म का दुख नहीं भुगतता है । दूसरी बात यह कही है कि स्वय के किये हुए कर्म या आयुष्य जीव भोगता है अर्थात् अपने किये कर्मानुसार ही भवा तर में जाता है । जब तक इस भव का आयुष्य समाप्त नहीं होता है तब तक आगे के भव का ब धा हुआ आयुष्य भी उदय में नहीं आता है ।

प्रश्न-१२ : चौवीस द डक में से प्रत्येक द डक के जीवों के आहार, श्वासोश्वास, शरीर आदि समान होते हक्त या असमान?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-२ में प्रत्येक द डक में १० बोलों स ब धी समानता असमानता का प्रश्न किया गया है । यथा- (१) आहार (२) शरीर (३) श्वासोश्वास (४) कर्म (५) वर्ण (६) लेश्या (७) वेदना (८) क्रिया (९) आयुष्य (१०) उत्पत्ति ।

प्रथम छ बोल लेश्या तक सभी (द डक वालों के) असमान ही होते है । सातवाँ आठवाँ वेदना और क्रिया एकेन्द्रिय में समान

होते हक्त । विकलेन्द्रिय में वेदना समान है क्रिया में भिन्नता होती है। शेष सभी स ज्ञी द डक में वेदना और क्रिया भी असमान होती है । नौवाँ आयुष्य और दसवाँ उत्पन्न होने का समय ये दोनों किसी के समान और किसी के असमान यों दोनों प्रकार होने से चौभ गी-चार भ ग बनते हक्त । इस प्रकार का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के १७ वें पद में भी विस्तार से आता है । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय असन्नि होने से उनमें अव्यक्त(अनिदा) वेदना की अपेक्षा वेदना समान कही गई है।

प्रश्न-१३ : 'स सार स स्थान काल' के वर्णन से क्या समझाया गया है ?

उत्तर- जीव का स सार में रहने का समय चार प्रकार का है । वह आज तक अनेकों भव मिलाकर नरक में अन त काल रह चुका है। उसी तरह चारों गति में अन त अन तकाल रह चुका है । इस प्रकार ए क जीव का स सार स स्थान काल चार प्रकार का है और वे चारों ही अन तकाल वाले हक्त । तथापि मनुष्यगति स सार स स्थान का अन त काल सबसे कम है, उससे नरकगति का अधिक है, उससे देवगति का अधिक और उससे तिर्यंचगति का काल अधिक है । इस तरह यह जीव चारों प्रकार के स स्थान काल वाला है । तात्पर्य यह है कि यह जीव चारों गति में भ्रमणशील है, मात्र एक ही किसी गति में स्थाई नहीं रहता । यदि मोक्ष गति में चला जाय तो इस जीव का यह स सार भ्रमण समाप्त हो जाता है । क्यों कि कर्म समाप्त होने से जीव स सार से छूटकर मोक्ष गति में जाता है और वहाँ पर कर्म नहीं होने से निष्कर्म वाला जीव मोक्षगति में सदा-सदा के लिये स्थिर हो जाता है ।

यहाँ दूसरे प्रकार से भी स सार स स्थान काल का वर्णन किया गया है, वह स सार के समस्त जीवों की अपेक्षा चारों गतियों का स स्थान काल है । इसमें पृच्छा के एक समय उस-उस गति में रहे हुए जीवों की अपेक्षा कथन है । वह काल तीन प्रकार का कहा गया है- शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल ।

(१) पृच्छा समय में जितने नारकी जीव नरक में हक्त उन जीवों में से लगातार जितने समय तक एक भी जीव वहाँ से निकले

नहीं(मरे नहीं) और कोई भी नया जीव आकर जन्मे नहीं तो वह काल नारकी का **अशून्य काल** है ।

(२) पृच्छा समय के सभी जीव निकल जाने के बाद उसमें का एक भी जीव नरक में आवे नहीं, सभी नये जीव ही रहे, तब तक के काल को **शून्यकाल** कहा गया है ।

(३) पृच्छा समय के जीवों में से कुछ जीव निकल चुके हक्त और कुछ रहे हुए हक्त या निकल कर फिर वापिस आये हक्त तो इस तरह जाना-आना करते हुए पृच्छा समय वाले कुछ जीव मिले, कुछ नये मिले, ऐसे मिश्रण वाले काल को यहाँ **मिश्रकाल** कहा गया है ।

ऐसे ये तीनों तरह के काल, सब जीवों की अपेक्षा बनते हक्त। नरक, मनुष्य और देव में ये तीनों तरह के काल बनते हक्त कि तु तिर्यंच गति में शून्यकाल का निषेध किया है अर्थात् वहाँ पृच्छा समय के अन त जीव सभी खाली नहीं हो सकते । क्यों कि तिर्यंच के सिवाय शेष तीनों गति में जीव अस ख्य ही होते हैं, अन त नहीं होते । अतः तिर्यंच के सभी अन त जीव निकल कर खाली होवे तो जावे कहाँ? अर्थात् उन सबके चले जाने के लिये कोई गति नहीं है ।

तीनों गति में **अशून्य काल** सबसे थोडा होता है । उससे **शून्य काल** अन तगुणा हो सकता है, उतने काल तक वे जीव तिर्यंचगति में जाकर रह सकते हक्त और शून्यकाल से भी मिश्रकाल अन तगुणा चल सकता है । अतः वह सबसे ज्यादा होता है ।

तिर्यंच गति के दो प्रकार के काल में से अशून्यकाल कम है और मिश्रकाल अन तगुणा होता है । नरक आदि में पृच्छा समय में जितने जीव जहाँ है वहीं रहना एक भी कम ज्यादा नहीं होना वह जन्मने मरने के अभाव में बनता है अर्थात् उस उस गति में जन्म-मरण का जो विरहकाल होता है वहीं अशून्यकाल होता है । जन्म-मरण का नहीं होना वह समय बहुत कम होता है अतः अशून्यकाल बहुत कम रहता है ।

पुनश्च- (१) अशून्यकाल- एक भी जीव कम नहीं होना । (२) शून्यकाल- पृच्छा समय वाले जीवों में से एक भी जीव नहीं

रहना, शून्य हो जाना, (३) मिश्रकाल- कुछ जीव पृच्छा समय वाले और कुछ नये । इस अपेक्षा के कथन में सर्व जीवों का गति की अपेक्षा वर्णन किया गया है ।

प्रश्न-१४ : भगवती सूत्र गणधर रचित और प्राचीन है तथा प्रज्ञापना सूत्र बाद में आचार्य रचित है तो भगवती सूत्र में प्रज्ञापना सूत्र के नामपूर्वक स क्षिप्त पाठ क्यों आते हक्त ?

उत्तर- मौलिक शास्त्र गणधर रचित तो १२ अ ग सूत्र ही है । उसमें तो समस्त श्रुत ज्ञान का समावेश हो जाता है । तथापि बाद के आचार्यों ने शिष्यों के या शासन के उपकार हेतु नये और स्वत त्र तत्त्व या विषय वाले शास्त्र बनाये हक्त । उनका अलग महत्व स्थापित रखने के लिये देवर्द्धिगणि आचार्य के लेखन समय में उन-उन सूत्रों का निर्देश करके भगवती सूत्र में स क्षिप्त पाठ का स पादन किया गया है । ऐसा नहीं किया जाता तो भगवती सूत्र में ही प्रज्ञापना सूत्र, ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि कितने ही शास्त्र पूरे समाविष्ट हो जाते, तब उनको अलग रखना या अलग गिनती करने का कोई अर्थ नहीं रहता । अत: लेखनकाल में देवर्द्धिगणि के समय गणधर रचित भगवती सूत्र में अन्य आचार्य रचित शास्त्रों का निर्देश जरूरी बन जाने से ऐसा किया गया है ।

तथापि कोई-कोई छोटे विषय २-३ शास्त्रों में भी मिलते हक्त। यथा- अस यति भव्य द्रव्य देव आदि १४ बोल वाले जीवों की देवोत्पत्ति स ब धी वर्णन प्रज्ञापना पद-२० में है तथापि यहाँ भी (श.१/२ में) वह वर्णन स्पष्ट रूप से है । ये १४ में से ११ बोल के जीव देवगति के सिवाय अन्य गति में जा सकते हक्त तथापि यहाँ ये जीव देवगति में जावे तो कहाँ-कहाँ तक जाते हक्त ऐसी पृच्छा की गई है। तीन बोल वाले तो नियम से देवलोक में ही जाते हक्त यथा- (१) अस यति भव्य द्रव्यदेव (२) आराधक श्रमण (३) आराधक साधु ।

औपपातिक सूत्र में भी अलग तरीके से विस्तार से ये अनेक बोल कहे गये हक्त और उन जीवों की देवगति का कथन है। इस प्रकार यह विषय तीन सूत्रों में उपलब्ध है, स क्षिप्त विस्तार आदि कुछ भिन्नता है, मौलिक-सैद्धा तिक भिन्नता नहीं है ।

असन्नि तिर्यंच भी चारों गति का आयुष्य बा ध सकता है । वह मनुष्य तिर्यंच का जघन्य अ तर्मुहूर्त और नारकी देव का जघन्य दस हजार वर्ष का आयुब ध करता है। उत्कृष्ट चारों गति में पल्योपम के अस ख्यातवें भाग का आयुष्य बा धता है । उसमें भी उत्कृष्ट आयुष्य देव का सबसे कम ब ध होता है उससे मनुष्य का अस ख्यगुणा, उससे तिर्यंच का अस ख्यगुणा, उससे नरक का अस ख्यगुणा आयुब ध करता है । यह असन्नि आयुष्य का वर्णन भी प्रज्ञापना पद-२० में होते हुए भी यहाँ पर (श.१/२ में) भी उपलब्ध है । किसी भी कारण से इन दोनों विषय में प्रज्ञापना की सूचना करके स क्षिप्त कथन नहीं किया गया है। व्याख्या अनुसार देवता का उत्कृष्ट असन्नि आयुष्य क्रोडपूर्व का है वह भी पल्योपम के अस ख्यातवें भाग रूप ही है । शेष तीन गति में अस ख्य क्रोड पूर्व रूप पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग समझना

॥ दूसरा उद्देशक स पूर्ण ॥

प्रश्न-१५ : का क्षा मोहनीय का क्या अर्थ है और यहाँ तीसरे उद्देशक में तत्स ब धी क्या निरूपण है ?

उत्तर- मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति में ऐसा कोई भेद नहीं है । प्रस्तुत में मिथ्यात्व मोहनीय के पर्याय शब्द रूप में का क्षा मोहनीय शब्द ग्रहण करके तत्स ब धी अनेक निरूपण है-

(१) जो कर्म पुद्गल आत्मा ग्रहण करती है उन सभी का सभी आत्म-प्रदेशों पर एक सा ब ध होता है । आत्मा का कोई किनारा किसी कर्म से रिक्त नहीं रहता है और ग्रहण किये गये कर्म पुद्गल भी सभी ब धतेहक्त।

(२) कर्मब ध, चय, उपचयजन्य पुद्गलों की आत्मा में दीर्घकाल तक सत्ता रहती है कि तु कर्म उदय उदीरणा, निर्जरा होने वाले पुद्गलों का आत्मा में अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं रहता है ।

(३) अनेक कारणों, निमित्तों से जीव आगम तत्त्वों में श काशील होता है । स देहशील परिणामों की वृद्धि से मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है । तब जीव मिथ्यात्व मोहनीय रूप "का क्षा मोहकर्म का" वेदन करता है । ऐसी स्थिति सामान्य जीवों की एव श्रमणों की भी हो सकती है ।

(४) स देहशील अवस्था में स देह रहित बन जाने के लिये आत्मा को इस तरह भावित करना चाहिये कि "जिनेश्वर कथित तत्त्व जो जैसे हक्त वे सत्य हक्त श का करने योग्य भी नहीं है, क्यों कि वे सर्वज्ञ-सर्वज्ञानी द्वारा कथित है । मेरे किसी भी क्षयोपशमाभाव या योग्य स योग के अभाव में कोई तत्त्व ठीक से समझ में नहीं आ रहा है यह मेरी स्वय की ही कोई अज्ञान कर्मजन्य अवस्था है ।"

तमेव सच्च निस क ज जिणेहिं पवेइय इस वाक्य को स बल बनाकर जिन वचनों में दृढ श्रद्धा आस्था रखने वाला आराधक होता है और उत्पन्न स देह में अधिक-अधिक फँस जाने वाला का क्षामोह का वेदन करके मिथ्यात्व को प्राप्त कर विराधक बन जाता है ।

(५) जिनेश्वर भगव तो के अस्ति-नास्ति भाव सभी सही रूप में ही परिणमन होते हक्त । उनका ज्ञान भी सही रूप में ही होता है, उसमें कुछ भी मतिभ्रम नहीं होता है । वे भगवान जैसा अभी यहाँ जानते हक्त, वैसा अन्यत्र भी बाद में भी जानते हक्त । क्षेत्रकाल या स योग से किसी भी प्रकार से उनके ज्ञान में विभ्रम नहीं होता है । अत: उनके वचन पूर्ण श्रद्धेय होते हक्त, ऐसी दृढ आस्था रखने पर का क्षा मोहनीय का-मिथ्यात्व का वेदन नहीं होता है ।

(६) का क्षा मोहनीय-मिथ्यात्व का ब ध मुख्यत: प्रमाद के कारण से होता है । प्रमाद पाँच कहे हक्त- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग । अपेक्षा से जीव के प्रयत्न पुढषार्थ से मिथ्यात्व का ब ध होता है, यों जीव अपने ही उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुढषाकार-पराक्रम से का क्षा मोहनीय-मिथ्यात्व का ब ध करता है, स्वय ही उस मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की श का आदि से उदीरणा करके उसे उदय में लाता है और स्वय ही ज्ञानवृद्धि तथा श्रद्धा की सुरक्षा से का क्षा मोहनीय को उपशा त अर्थात् स वृत्त करके मिथ्यात्व के उदय से बच सकता है ।

(७) इस प्रकार २४ ही द डक के जीव का क्षा मोहनीय कर्म का वेदन आदि करते हक्त । उदीरणा, उपशमन, निर्जरा, गर्हा भी स्वय ही अपने प्रयत्न पुढषार्थ से करते हक्त । एकेन्द्रिय जीवों के स ज्ञा, मन, तर्क, वचन आदि नहीं होते हक्त । उन्हें का क्षा मोहोदय का भान भी नहीं होता है । फिर भी वे मिथ्यात्व का वेदन तो अवश्य करते ही हक्त । एकेन्द्रिय

आदि अव्यक्त वेदन करते हक्त जब कि स ज्ञी प चेन्द्रिय व्यक्त रूप में का क्षा मोहनीय का वेदन करते हक्त ।

प्रश्न-१६ : श्रमण निग्रंथ तो छट्ठे सातवें गुणस्थान में होते हक्त उनको का क्षा मोहनीय का वेदन कैसे होता है ?

उत्तर- श्रमण निग्रंथ भी कई निमित्त स योग या उदयवश का क्षा मोहनीय का वेदन करते हक्त अर्थात् कई प्रस गों एव तत्त्वों को लेकर वे भी स देहशील बन जाते हक्त । कभी कोई स देह में उलझ जाने से का क्षा मोहनीय का वेदन होता है । फिर समाधान पाकर या उक्त श्रद्धा वाक्य को स्मरण करके उलझन से मुक्त स्वस्थ अवस्था में आ जाते हक्त।

जो ज्यादा से ज्यादा उलझते ही रहते हक्त या उस उलझन में ही स्थिर हो जाते हक्त, समाधान पाने से या उक्त श्रद्धा वाक्य स्मरण से व चित रह जाते हक्त, वे स यम एव समकित से च्युत होकर विराधक हो जाते हक्त । अत: श्रमण निग्रंथों को तत्त्व ज्ञान अनुप्रेक्षा करते हुए भी श्रद्धा में सावधान रहना चाहिये और उक्त अमोघ श्रद्धा रक्षक वाक्य को मानस में सदा उपस्थित रखना चाहिये ।

स देह उत्पत्ति के कुछ निमित्त कारण ये हक्त- १. ज्ञान की विभिन्नताएँ २. दर्शन की विभिन्नताएँ ३. आचरणों की विभिन्नताएँ ४. लि ग वेशभूषाओं की विभिन्नताएँ ५. सिद्धा तो की विभिन्नताएँ ६. धर्म प्रवर्तकों की विभिन्नताएँ । इसी तरह ७. कल्पों ८. मार्गों ९. मतमता तरों १०. भ गो ११.नयों १२.नियमों एव १३. प्रमाणों की विभिन्नताएँ ।

व्यवहार में विभिन्न जीवों की ये विभिन्नताओं और भ गों तथा नयों की विभिन्नताओं को देखकर समझ नहीं सकने से अथवा निर्णय नहीं कर पाने से कुतूहल, आश्चर्य और स देहशील होकर श्रमण-निर्ग्रंथ का क्षा मोहनीय के शिकार बन सकते हक्त । अत: गुढ अपने शिष्यों को पहले से ही विविध बोध के द्वारा सशक्त बनावे ताकि वे इन स्थितियों के शिकार बन कर अपनी सुरक्षा को खतरे में डालने वाले न बने । पर तु ज्ञान के अमोघ शस्त्र से सदा अजेय बनकर अपने स यम और

सम्यक्त्व की सुरक्षा करने में सक्षम रहे । प्रत्येक शिष्यों साधकों को भी चाहिये कि वे पहले स्वय इस प्रकार के अजेय और सुरक्षित बनने का प्रयत्न करें एव अश्रद्धाजन्य प्रत्येक परिस्थिति में श्रद्धा के अमोघ शस्त्र रूप वाक्य को मस्तिक में सदा तैयार रखे कि **भगवद् भाषित तत्त्व तो सत्य ही है, उसमें श का करने योग्य कि चित् भी नहीं है ।** ॥ उद्देशक–३ स पूर्ण ॥

प्रश्न–१७ : चौथे उद्देशक में 'उपस्थान और **अपक्रमण' शब्द से क्या निरूपण किया गया है ?**

उत्तर– उपस्थान = स सार वृद्धि या उत्थान। अपक्रमण = पतन, गिरावट। मोहकर्म के उदय में जीव स सार वृद्धि रूप उपस्थान बालवीर्यपने से करता है । तथा मोहनीय कर्म के उदय से उपर के गुणस्थान से नीचे के गुणस्थान में आता है तब बालवीर्य से चोथे यावत् प्रथम गुणस्थान में अपक्रमण पतन–गिरावट करता है । कदाचित् बालप डित वीर्य से जीव छट्ठे गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान में आने रूप में अपक्रमण= गिरावट करता है ।

मोहनीय कर्म का उपशम होने से जीव उत्थान–प्रगति करता है तब वह बाल प डित वीर्य से चौथे गुणस्थान से पाँचवें में और प डित वीर्य से छट्ठे आदि गुणस्थानों में जाता है । मोहनीय कर्म के उपशम में कदाचित् अपक्रमण–पतन करता हुआ जीव बालप डितवीर्य से छट्ठे गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान में पहुँचता है ।

इस प्रकार दोनों **अपक्रमण** में नीचे के गुणस्थान में आना होता है और दोनों उपस्थान में से एक स सार की वृद्धि रूप है और एक गुणस्थान की प्रगति रूप है ।

यह उत्थान और अपक्रमण जीव स्वय करता है । मोहनीय कर्म के उदय से अर्थात् मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से पहले जीव की धर्म में जैसी श्रद्धा ढचि प्रतीति होती है, वैसी फिर नहीं रहती है, इसलिये अपक्रमण–पतन होता है ।

प्रश्न–१८ : किये हुए कर्मों को भुगतने में स्याद्वाद–विकल्प किस तरह स भव है ?

उत्तर– सामान्यत: यह सिद्धा त है कि– **कडाण कम्माण ण मोक्ख**

अत्थि= किये हुए कर्मों को भुगते बिना छुटकारा नहीं है, यह राजमार्ग है । कर्म यथासमय अपना फल देते ही हक्त । अपवाद रूप से कभी कोई कर्म का फल भुगतना नहीं भी होता है, प्रदेशोदय से ही वे कर्म क्षय हो जाते हक्त, इनके उदाहरण, यथा– (१) तीव्र परिणामों से नहीं ब धे हुए अर्थात् म द प्रयत्न से कर्म ब धे हो (२) बाह्य स योग उस कर्म के अनुकूल नहीं हो (३) विशिष्ट तप ध्यान से कर्म नष्ट हो जाय । यथा– (१) नरक में तीर्थंकर नामकर्म, अणुत्तर देव में स्त्रीवेद (२) तीर्थंकर होने वाले चक्रवर्ती के या पा डवों के भव में म द परिणामो से ब धे हिंसादिजन्य कर्म उसी भव में क्षय हो जाते हक्त । (३) **भव कोडि स चय कम्म तवसा णिज्जरिज्जइ ।** ध्यान–तप से भी कर्म उदय में आये बिना नष्ट कर दिये जाते हक्त तथापि इन तीनों अवस्थाओं में प्रदेशोदय से तो उन ब धे कर्मों को भोगना होता ही है । विपाकोदय में उक्त प्रकार से ढकावट शक्य है ।अत: एक अपेक्षा से **कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि** सिद्धा त सत्य होते हुए भी कुछ कारणों से कर्मों को प्रदेशोदय से ही क्षय कर दिया जाता है विपाकोदय ढक जाता है अर्थात् उसमें ढकावट उपस्थित की जा सकती है । इसी तथ्य को शतक–५, उद्देशक–५ में एव भूत कर्मवेदन और अनेव भूत कर्मवेदन रूप से कहा गया है। २४ द डक के जीव कुछ कर्मों को बा धे वैसे ही भोगते हक्त और कुछ कर्मों को स्थितिघात रस- घात, उद्वर्तना अपवर्तना, स क्रमण आदि करके अन्य रूप में वेदते हक्त ।

प्रश्न–१९ : सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान के विषय में यहाँ क्या–क्या स्पष्ट किया है ?

उत्तर– कौन से जीव अपने कौन से कर्मों को भविष्य में प्रदेशोदय से ही क्षय कर देंगे ? यह केवली भगवान अपने ज्ञान से जानते हक्त तथा कौन से जीव अपने कौन-कौन से कर्मों को विपाकोदय रूप में भोगकर क्षय करेंगे यह भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान जानते हक्त। सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनने के बाद ही जीव सिद्ध होते हक्त । केवली बने बिना कोई भी छद्मस्थ या अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी भी सिद्ध नहीं बन सकते । यह त्रैकालिक सिद्धा त है ।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान 'अलमस्तु' कहे जाते हक्त । इसका

तात्पर्य यह है कि जिन्होंने प्राप्त करने योग्य सभी ज्ञानादि गुण प्राप्त कर लिये हक्त जिनके लिये प्राप्त करने योग्य कुछ भी अवशेष नहीं रहा है, ऐसे वे परिपूर्ण ज्ञानी 'अलमस्तु' स ज्ञक हक्त । यहाँ केवलियों के चार अघाती कर्मों को क्षय करके अकर्मा अशरीरी बनना शेष है उसे नगण्य-गौण कर दिया गया है ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-२० : चौवीस द डक में जीवों के आवास स्थान, भवनावास, नगरावास या विमानावास कितने हैं ?

उत्तर- **(१)** नरक के द डक में सात नरक में कुल **चौरासी लाख** आवास स्थान(नरकावास) है । यथा क्रमशः ३०, २५, १५, १०, ३, **१ लाख में ५ कम** और सातवीं नरक में ५ नरकावास है ।

(२-११) भवनपति के १० द डकों में कुल ७, ७२,००,००० सात करोड बहत्तर लाख भवनावास है । यथा क्रमशः- ६४, ८४, ७२, ९६, असुर, नाग, सुवर्ण और वायुकुमारों के; शेष ६ के ७६-७६ लाख भवनावास है ।

(१२-२३) औदारिक के दस द डक तथा व्य तर ज्योतिषी देव इन सभी के अस ख्य आवास स्थान हक्त । जिनमें व्य तरों के नगरावास और ज्योतिषी के विमानावास हैक्त ।

(२४) वैमानिक देवों के कुल ८४,९७०२३ (चौरासी लाख सत्ताणु हजार तेवीस विमानावास है । यथा क्रमशः पहले से आठवें देवलोक तक ३२, २८, १२, ८, ४ लाख; ५०, ४०, ६ हजार । फिर आगे ४००, ३००; १११, १०७, १००; ५ अणुत्तर विमान ।

प्रश्न-२१ : चौवीस द डकों में स्थिति स्थान कितने है और उन में से अशाक्तत कितने है ?

उत्तर- सभी द डकों में स्थितियाँ अस ख्य प्रकार की होने से स्थिति स्थान अस ख्य हैं । औदारिक के दस द डकों में जघन्य अ तर्मुहूर्त है फिर १ समय अधिक, २ समय अधिक, यों अस ख्य समय अधिक यावत् अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति तक सभी स्थिति स्थान होते हक्त। नारकी देवता में जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति के बाद १ समय अधिक, २ समय अधिक, यों अस ख्य समय अधिक यावत् अपने-

अपने स्थान की उत्कृष्ट स्थिति तक के सभी स्थिति स्थान होते हक्त ।

२३ द डकों में अस ख्य जीव होते हक्त और वनस्पति में अन त जीव होते हक्त, अतः अस ख्य स्थिति स्थानों में अर्थात् सभी स्थितियों में जीव हो सकते हक्त । क्यों कि सर्वत्र जीव ज्यादा है और उनकी स ख्या से स्थिति स्थान की स ख्या कम होती है । तथापि एकेन्द्रिय के पाँच द डक में सभी स्थिति स्थानों में सदा जीव मिलते हक्त । शेष १९ द डक में सर्व जघन्य स्थिति शाक्तत है, उसके बाद १ समय अधिक से लेकर स ख्यात समय अधिक तक के स्थिति स्थान अशाक्तत है अर्थात् उसमें कभी जीव मिलते हक्त कभी नहीं भी होते हक्त । उसके बाद के सभी स्थिति स्थान में जीव शाक्तत होते हक्त । मनुष्य में विशेषता है कि सर्व जघन्य स्थिति स्थान(अ तर्मुहूर्त)भी स मूर्च्छिम मनुष्यों की अपेक्षा अशाक्तत है ।

प्रश्न-२२ : चौवीस द डक में अवगाहना स्थान कितने होते हक्त उनमें अशाक्तत कौन से होते हक्त ?

उत्तर- सभी द डकों में जन्म समय सर्व जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग की अवगाहना होती है तदन तर एक प्रदेशाधिक, दो प्रदेशाधिक आदि अवगाहना होती है अ त में अपनी-अपनी उत्कृष्ट अवगाहना होती है ।

एकेन्द्रिय में सभी अवगाहना स्थान शाक्तत होते है । शेष १९ द डक में जघन्य से लेकर स ख्यात प्रदेशाधिक अवगाहना स्थान अशाक्तत है क्यों कि वहाँ विरहकाल में अपर्याप्त के स ख्यात स्थान नहीं होते। अस ख्यात प्रदेशाधिक के दो प्रकार हक्त पर्याप्त और अपर्याप्त। पर्याप्त अस ख्यात प्रदेशाधिक शाक्तत है। अपर्याप्त अस ख्य प्रदेशाधिक अशाक्तत है तथापि पर्याप्त अपर्याप्त के सभी अस ख्य प्रदेशाधिक का एक ही बोल होता है । अतः सूत्र में अस ख्य प्रदेशाधिक को शाक्तत कहा है । सभी द डक में अपनी अपनी उत्कृष्ट अवगाहना शाक्तत है ।

प्रश्न-२३ : इस पाँचवें उद्देशक में कषाय स ब धी भ ग वर्णन क्या है ?

उत्तर– औदारिक के दस द डकों में क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों कषाय शाक्तत मिलते हक्त । नारकी में मान, माया, लोभ ये तीन अशाक्तत है और देवताओं में क्रोध, मान, माया ये तीन अशाक्तत है अर्थात् नारकी में क्रोध शाक्तत है और देवताओं में लोभ शाक्तत है ।

इस प्रकार नारकी तथा देवता में एक कषाय शाक्तत और तीन कषाय अशाक्तत होने से प्रत्येक शाक्तत स्थिति स्थान में और शाक्तत अवगाहना स्थान में २७ भ ग बनते हक्त । जो स्थिति, अवगाहना स्थान अशाक्तत है वहाँ चारों ही कषाय स्वत: अशाक्तत हो जाने से ८० भ ग बनते हक्त । इस कारण अशाक्तत स ख्यात स्थिति स्थानों में और प्रार भिक स ख्यात अवगाहना स्थानों में ८० भ ग होते हक्त । मनुष्य में सर्व जघन्य स्थिति स्थान में भी ८० भ ग स मूर्च्छिम मनुष्य के विरहकाल की अपेक्षा कहे गये हक्त ।

प्रश्न–२४ : भ ग स ख्या २७, ८० वगेरे किस तरह बनती है ?

उत्तर– किसी भी **दो बोल में** एक शाक्तत एक अशाक्तत हों तो तीन भ ग होते हक्त– (१) सभी एक शाक्तत बोल वाले (२) शाक्तत बोल वाले अनेक और अशाक्तत बोल का एक (३) शाक्तत बोल के अनेक और अशाक्तत बोल के भी अनेक । कोई **तीन बोल में** एक शाक्तत और दो अशाक्तत हो तो ९ भ ग बनते हक्त । यथा– (१) सभी जीव ए क शाक्तत बोल वाले । (२) शाक्तत के अनेक+प्रथम अशाक्तत का ए क (३) शास्वत के अनेक+और प्रथम शाक्तत के भी अनेक (४) शाक्तत के अनेक और द्वितीय अशाक्तत का एक (५) शाक्तत के अनेक और द्वितीय अशाक्तत के भी अनेक । (६) शाक्तत के अनेक और दोनों अशाक्तत के एक–एक (७) प्रथम अशाक्तत के एक, द्वितीय अशाक्तत के अनेक (८) प्रथम अशाक्तत के अनेक और द्वितीय अशाक्तत के एक और (९) दोनों अशाक्तत के अनेक । इस तरह अस योगी–१ भ ग, द्वि स योगी–४ भ ग और त्रिस योगी ४ भ ग हुए यों कुल १+४+४ भग=९ भ ग हुए ।

कोई चार बोल में एक शाश्वत और तीन अशाक्तत हो तो २७ भ ग बनते हक्त । जिसमें प्रथम भ ग **केवल शाश्वत का उपर अनुसार ।** द्विस योगी **६ भ ग**– शाश्वत के साथ तीन अशाश्वत

क्रमश: एक और अनेक ३X२=६ । तीन स योगी १२ भ ग और चार स योगी ८ भ ग । कुल– १+६+१२+८=२७ ।

कषाय ४ हक्त अत: उसके नरक में एक क्रोध शाक्तत और मान आदि तीन अशाक्तत के २७ भ ग इस प्रकार है– (१) सभी क्रोधी (२) क्रोधी अनेक मानी एक और (३) इस तरह क्रोधी के साथ मानी बहुत (४) मायी एक और (५) मायी बहुत (६) लोभी एक और (७) क्रोधी बहुत लोभी बहुत । (८–११) क्रोधी, मानी, मायी से चार भ ग (१२–१५) क्रोधी, मानी लोभी से चार भ ग (१६–१९) क्रोधी, मायी, लोभी से चार भ ग । (२०–२७) क्रोधी अनेक+मानी मायी लोभी ए क–एक । यहाँ मानी को एक रखने से और मायी–लोभी के एक अनेक पलटने से ४ भ ग और मानी को अनेक कहकर दूसरे ४ भ ग वैसे ही समझना । यों आठ भ ग चार स योगी के होते हक्त ।

जब मूल बोल अशाक्तत हो तब चारों कषाय अशाक्तत हो जाते हक्त । तब चारों अशाक्तत के ८० भ ग होते हक्त । तब **अस योगी** एक–अनेक के ८ भ ग होते हक्त अर्थात् चारों अलग–अलग एक–एक और चारों अनेक–अनेक । द्विस योगी ६ विकल्प की ६ चौभ गियाँ बनने से ६X४=२४ भ ग होते हक्त । **तीन स योगी** ४ विकल्प बनते हैं और प्रत्येक विकल्प में ८ भ ग बनते हक्त । अत: ४X८=३२ भ ग। **चार स योगी** १ विकल्प ही बनता है क्यों कि कषाय ४ ही है । एक विकल्प में १६ भ ग बनते है । यथा– क्रोधी एक मानी एक रखते मायी–लोभी से एक चौभ गी, मानी अनेक से दूसरी चौभ गी, ये आठ भ ग क्रोधी एक से हुए हक्त । फिर क्रोधी अनेक के आठ भ ग । यों कुल– ८+२४+३२+१६=८० भ ग ।

नारकी देवता में शाक्तत स्थान में भी तीन कषाय अशाक्तत होने से २७ भ ग और अशाक्तत स्थान में ४ कषाय अशाक्तत होने से ८० भ ग । एकेन्द्रिय में सभी स्थान शाक्तत है और चारों कषाय भी शाक्तत है इसलिये एक ही भ ग बनता है कि चारों कषाय शाक्तत है । त्रस के औदारिक पाँच द डकों में चार कषाय तो शाक्तत है पर तु स ख्यात स्थिति स्थान और स ख्यात अवगाहना स्थान खुद अशाक्तत होने से चारों कषाय अशाक्तत हो जाते हक्त । अत: उन अशाक्तत

स्थानों में ८० भ ग होते हक्त ।शेष सभी शाक्तत स्थानों में अभ ग(एक भ ग) होता है ।

प्रश्न-२५ : यहाँ स्थिति और अवगाहना स्थान के अतिरिक्त क्या वर्णन है ?

उत्तर– इन दो के अतिरिक्त यहाँ आठ बोल और वर्णित है, यथा– (१) शरीर (२) स घयण (३) स स्थान (४) लेश्या (५) दृष्टि (६) ज्ञान (७) योग (८) उपयोग । इनमें से मनुष्य में आहारक शरीर तथा पृथ्वी पानी, वनस्पति में तेजोलेश्या अशाक्तत है । विकलेन्द्रिय में सम्यग्दृष्टि और २ ज्ञान अशाक्तत है । मिश्र दृष्टि सर्वत्र (१६ द डक में) अशाक्तत है । इन सभी अशाक्तत बोलों में चार कषाय के ८० भ ग बनते हक्त । शेष शाक्तत बोलों में नारकी देवता में कषाय के २७ भ ग बनते हक्त और औदारिक १० द डकों में कषाय का अभ ग अर्थात् एक भ ग है ।

॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-२६ : छट्ठे उद्देशक में रोहा अणगार के प्रश्न विषयक क्या निरूपण है ?

उत्तर– रोहा अणगार भगवान महावीर स्वामी का अ तेवासी शिष्य था । किसी समय धर्मध्यान में लीन बने रोहा अणगार को शाक्तत पदार्थों के विषय में जिज्ञाशा उत्पन्न हुई । उसने भगवान की सेवा में उपस्थित होकर समाधान प्राप्त किया । भगवान का समाधान था कि लोक और अलोक या जीव और अजीव इसमें कोई पहले या पीछे नहीं है, ये शाक्तत पदार्थ हक्त । इनमें आनुपूर्वीभाव नहीं कि तु ये अनानुपूर्वीभाव हक्त । इसीतरह भवी-अभवी, सिद्ध-स सारी, सिद्धि-असिद्धि (सिद्ध शिला) वगेरे । कूकडी और अ डे में भी पहले पीछे किसी को नहीं कहा जा सकता । क्यों कि अ डा, कूकडी से और कूकडी, अ डे से उत्पन्न होती है; ये दोनों भी शाक्तत भाव हक्त ।

लोक के साथ सातवीं नरक, उसका आकाशा तर, घनोदधि, घनवात, तनुवात, द्वीप, समुद्र, २४ द डक के जीव, ५ अस्तिकाय, ८ कर्म, ५ शरीर, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, ४ दर्शन, ४ स ज्ञा, ५ ज्ञान, ३ योग, २

उपयोग ये सभी के भेद परस्पर अनानुपूर्वी भाव वाले हक्त, इनमें पूर्वापर का कथन नहीं हो सकता । ये सब शाक्ततभाव हक्त । रोहा अणगार को उठी हुई जिज्ञाशा का पूर्ण समाधान हो गया।

प्रश्न-२७ : सूर्य के प्रकाश के स ब ध में यहाँ क्या बताया गया है ?

उत्तर– सुबह और शाम दोनों समय सूर्य समान क्षेत्र को प्रकाशित एव आतापित करता है । वास्तव में सूर्य के लिये सुबह शाम सभी सरीखे हैं वह तो सदा एक सरीखा प्रकाश करता है ।

सूर्य प्रत्येक स्थल, क्षेत्र, वस्तु आदि को छ दिशा से आतापित करता है । सूर्य सभी को स्पर्श करके आतापित उद्योतित करता है अर्थात् सूर्य की किरणें पदार्थों को ६ दिशा से स्पर्श करती है ।

यहाँ यह भी दर्शाया गया है कि लोक अलोक को, अलोक लोक को, द्वीप समुद्र को और समुद्र द्वीप को, जल नावा को, नावा जल को ये सभी एक दूसरे को ६ दिशा से स्पर्शित करते हक्त ।

प्राणातिपात आदि पापक्रियाएँ भी जीव के स्वय करने से लगती है । वे क्रियाएँ ६ दिशा से स्पृष्ट होकर की जाती है । ये पाप क्रियाएँ परकृत नहीं लगती है । स्वय करने में कराना अनुमोदन भी समाविष्ट है अतः अव्रत की क्रिया सूक्ष्म अनुमोदन रूप से स्वकृत लगती है । अव्रत की क्रिया अनुमोदन रूप होती है ।

एकेन्द्रिय में ये क्रियाएँ कदाचित् ३-४-५ दिशा से भी लगती है अन्य में नियमा छ दिशा से लगती है । एकेन्द्रिय जो लोका त में होते हक्त उसके व्याघात आसरी ३-४-५ दिशा से क्रियाएँ लगती है जो लोक मध्य में होते है उनके नियमा छ दिशा से क्रियाएँ लगती है।

प्रश्न-२८ : लोक स स्थिति किस प्रकार की है ?

उत्तर– इस छट्ठे उद्देशक में लोक स स्थिति के ८ प्रकार दर्शाये हक्त– (१) आकाश के आधार पर वायु है (२) वायु के आधार पर जल है (३) जल के आधार पर पृथ्वी है (४) पृथ्वी पर त्रस स्थावर प्राणी है (५) अजीव जीव प्रतिष्ठित है (६) जीव कर्माधीन अर्थात् कर्म के वशवर्ती है (७) अजीवों को जीवों ने स ग्रह करके रखा है (८) जीव को कर्मों ने रोक रखा है ।

मशक में पानी और हवा विशेष तरीके से भरी जाय तो हवा पर पानी रह जाता है । हवा भरी मशक को पीठ पर बा धकर जल को तैर कर पार किया जा सकता है । यह हवा के आधार पर लोक स स्थिति को समझने के लिये दृष्टा त है । हम जिस पृथ्वी पर है उसके नीचे घनोदधि(जल)है । फिर उसके नीचे घनवाय है, उसके नीचे तनुवाय है और फिर नीचे केवल आकाश है ।

प्रश्न–२९ : सूक्ष्म स्नेहकाय के स ब ध में यहाँ उद्देशक–६ में क्या कहा है ?

उत्तर– ऊँचे नीचे तिरछे सदा निर तर सूक्ष्म स्नेहकाय गिरती है । मूलपाठ में सूक्ष्म और स्नेहकाय शब्द है ये दोनों ही महत्त्व के हक्त। इसके बाद कहा है कि जिस तरह बादर अप्काय की वर्षा बू दें मिलकर इकट्ठे होकर चिरकाल–कुछ समय तक रहती है वैसे यह सूक्ष्म स्नेहकाय इकट्ठे होकर रहती नहीं है कि तु गिरते ही तत्काल विध्व श–नष्ट हो जाती है ।

इस प्रकार यहाँ सूक्ष्म स्नेहकाय को बादर अप्काय के समान होने का निषेध किया है और ओस, कुहरा, धूँअर आदि जैसी चक्षुग्राह्य भी यह स्नेहकाय नहीं है और इसका अस्तित्व जहाँ गिरे वहीं नष्ट हो जाता है ।

तब भला इस सूक्ष्म स्नेहकाय के नाम से रात्रि में मस्तक पर कपडा ओढना एव क बली ओढना तथा सुबह-शाम सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले एक प्रहर तक क बली ओढना वगेरे पर परा अत्य त विचारणीय अर्थात् समीक्षा करने योग्य है । क्यों कि आगम में क बली या वस्त्र रखने का ही साधु के लिये आग्रह नहीं है । अचेल होना या वस्त्र की उणोदरी करना प्रशस्त कहा है । जवान स्वस्थ साधु को एक जाति के ही वस्त्र रखने की अर्थात् मात्र सूती वस्त्र रखने की ही शास्त्राज्ञा है, दूसरी जाति के वस्त्र रखने का स्पष्ट निषेध है । अत: ऊनी वस्त्र रूप क बल रखने का जरूरी कायदा करना आगम विपरीत प्ररूपणा है तथा इस सूक्ष्म स्नेहकाय का गलत भ्रमित मनमाना तात्पर्य निकाल करके नासमझी से चलाया हुआ ढर्रा मात्र हक्त, ऐसा समझना चाहिये । इस विषय स ब धी कुछ स्पष्टीकरण

दशाश्रुतस्क ध सूत्र के सारा श में और भगवतीसूत्र के सारा श में यथास्थान किया गया है । विशेष जिज्ञासा वाले पाठकों को उन स्थलों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये ॥ उद्देशक–६ स पूर्ण ॥

प्रश्न–३० : जीव की सर्व आत्मप्रदेशों से उत्पत्ति, मरण या आहार आदि होते हैं या देश से, अर्ध से भी ?

उत्तर– जीव के आत्मप्रदेशों का विभाजन नहीं होता है वे देश से या अर्ध से उत्पन्न नहीं होते, सर्व आत्मप्रदेशों से उत्पन्न होते हक्त; सर्व आत्मप्रदेशों से आहार करते हक्त अर्थात् आहार का परिणमन सर्व आत्म-प्रदेशों में होता है । मात्र दिखाउ ग्रहण निस्सरण मुख आदि से होता है । इसी तरह मरण भी सर्व आत्मप्रदेशों से होता है । ग्रहण किये जाने वाले आहार पुद्‌गलों में से कभी सर्व का आहार(परिणमन) होता है कभी देश का परिणमन होता है अर्थात् रोमाहार ओजाहार में सर्व ग्रहित आहार का पूर्ण परिणमन होता है । कवलाहार में **स ख्यातवें भाग** का आहार रूप में परिणमन होता है और अवशेष आहार का निस्सरण हो जाता है । इसी तरह चोवीस द डक में भी समझ लेना चाहिये ।

[अस ख्यातवें भाग के परिणमन का कहने की पर परा तथा वैसा उपलब्ध होने वाला पाठ अशुद्ध है । क्यों कि एक बार के कवलाहार का अस ख्यातवाँ भाग परिणमन होना मानने पर १०० वर्ष में क्रोडवार कवलाहार करने पर भी अस ख्यातवें भाग आहार ही कुल जीवनभर में परिणमन होगा । तब पाँच कि.ग्रा. वजन का बालक जीवनभर में ६ कि.ग्रा. वजन वाला भी नहीं हो सकेगा । अत: स ख्यातवें भाग का परिणमन वाले पाठ को शुद्ध स्वीकारना योग्य है।]

प्रश्न–३१ : सातवें उद्देशक में गर्भस्थ जीव स ब धी जानकारी किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) माता-पिता के स योगजन्य शुक्र-शोणित का मिश्रण १२ मुहुर्त तक पुत्रोत्पत्ति के योग्य रहता है ।(२) उत्पन्न होने वाला जीव सर्व प्रथम उस मिश्रण का आहार कर शरीर बनाता है । (३) आने वाला जीव भावेन्द्रिय पाँचों साथ लेकर आता है, द्रव्येन्द्रिय से रहित

आकर जन्मता है । (४) तेजस कार्मण की अपेक्षा सशरीरी जन्मता है, शेष शरीर की अपेक्षा अशरीरी आकर उत्पन्न होता है । (५) जन्म के बाद गर्भ में रहा हुआ जीव माता के किये हुए, परिणमाये हुए आहार में से कुछ अ श 'ओज' रूप आहार ग्रहण करता है । (६) गर्भगत जीव के कवलाहार नहीं होता है। (७) गर्भगत जीव के और माता के दोनों के एक-एक रसहरणी नाडी होती है । (८) पुत्र की नाडी माता को स्पर्शित होती है और माता की नाडी पुत्र को स्पर्शित होती है । माता की नाडी से पुत्र आहार प्राप्त करता है और स्वय की नाडी से आहार का चय उपचय होता है । (९) मानव शरीर में तीन अ ग मातृअ ग और तीन पितृअ ग प्राधान्यता से कहे गये हक्त । स्थाना ग में भी कहा है, देखें प्रश्नोत्तरी भाग-२, पृष्ट-७८ । समय-समय क्षीण होते वे अ ग जीवन भर रहते हक्त अर्थात् उस अ ग में माता-पिता का जीवन अ श आयुष्य पर्यंत रहता है । (१०) गर्भगत जीव अशुभ विचारों से, युद्ध के विचारों से और वैक्रिय लब्धि से युद्ध करते हुए मरकर नरक में भी जा सकता है तथा शुभ विचारों से धर्मभावों से देवगति में उत्पन्न हो सकता है । (११) गर्भ में रहा हुआ जीव चित्ता, पसवाडे, अ तकुब्ज आसन से भी रहता है माता के सोने पर सोता है, बैठने, खडे रहने पर गर्भगत बालक भी वैसे रहता है । माता के सुखी दुखी होने पर वह सुखी दुखी भी होता है।(१२) गर्भगत बालक प्रसूति के समय मस्तक से या पाँव से आता है तो सुखपूर्वक बाहर आता है, आडा- टेढा आता है तो कष्टपूर्वक बाहर आता है या मर जाता है । (१३) अशुभ कर्म लेकर आनेवाला काला, कलूटा, बेडौल, अप्रिय, अमनोज्ञ, हीन स्वर, दीन स्वर आदि **अनोदयवचन** वाला होता है । शुभ कर्म स ग्रह करके लाने वाला इससे विपरीत गौरवर्ण आदि यावत् **आदेय वचन** वाला होता है ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३२ : वीर्य, पुढषार्थ, पराक्रम कितने प्रकार का कहा गया है तथा सिद्धों में या स सारी जीवों में कौन कौन सा वीर्य होता है ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-८ में जीव के वीर्य-पुढषार्थ का वर्णन दो प्रकार से निरूपित है । बाल, प डित एव बालप डित वीर्य यों तीन प्रकार है

तथा लब्धि एव करणवीर्य यों दो प्रकार के हक्त । सिद्धों में इन पाँचों में से कोई भी वीर्य नहीं होता है ।

स सारी जीवों में लब्धि, करण और बालवीर्य ये तीनों २४ ही द डक में होते हक्त । प डितवीर्य केवल मनुष्य में एव बालप डित वीर्य मनुष्य-तिर्यंच दोनों में होते हक्त ।

अपर्याप्त जीवों में और शैलेषी अवस्था में करणवीर्य नहीं होता है मात्र लब्धि वीर्य ही होता है ।

बालवीर्य में चारों गति का आयुष्य ब ध सकता है । बालप डित वीर्यवाला श्रमणोपासक होता है, वह वैमानिक देवों का आयुष्य बा ध सकता है । प डित वीर्य वाले कोई तो आयुष्य का ब ध करतेक्त (गुण-६-७ वाले) और कोई (उपर के गुणस्थान वाले) आयुब ध नहीं करते हक्त, अ तकिरिया-मोक्षगति करते हक्त ।

आयुष्य जीवन में एक बार ही ब धता है ।जहाँ का आयुब ध होता है जीव वहीं पर जाता है, अन्यत्र कहीं भी नहीं जाता है । आयुष्य बा धे बिना कोई जीव मरता भी नहीं है । एक बार आयुष्य बा धने के बाद उसमें फिर कोई परिवर्तन नहीं होता है क्यों कि वह निकाचित ब द होता है ।

प्रश्न-३३ : कायिकी आदि ५ क्रियाएँ कौन सी है और वे जीव को कब कैसे लगती है ?

उत्तर- स्थाना ग सूत्र एव तत्त्वार्थ सूत्र अनुसार कुल २५ क्रियाएँ कही जाती है जिनका एक साथ वर्णन सारा श की पुस्तकों में उपदेश शास्त्र में किया गया है । क्रियाओं स ब धी दो दो भेदों का कथन स्थाना ग सूत्र में स्थान-२ में एव पाँच में भी आता है । देखें- प्रश्नोत्तर भाग-२, पृष्ट-१३, प्रश्न-६ ।

प्रस्तुत आठवें उद्देशक में- (१) कायिकी (२) अधिकरणिकी (३) प्राद्वेषिकी (४) परितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी इन पाँच क्रियाओं स ब धी निरूपण इस प्रकार है-

मृग को मारने के स कल्प से लेकर धनुष बाण चढा कर खडे होने एव बाण छोडने तक उस जीव को **तीन** क्रिया, बाण मृग को

लगने पर **चार** क्रिया और मृग के मरने पर **पाँच** क्रिया लगती है। मृग को फँसाने के लिये जाल बिछाने वाले को पूर्व तैयारी से तीन क्रिया, मृग के फँसने पर चार क्रिया और उसे मारने पर पाँच क्रिया लगती है । सजीव **घास** को जलाने के लिये इकट्ठा करने तक तीन क्रिया, आग उसमें रखने पर चार क्रिया एव घास के जलने पर पाँच क्रिया लगती है ।

एक व्यक्ति धनुष बाण खींच कर मृग को मारने की तैयारी में खडा है, दूसरे व्यक्ति ने आकर तलवार के वार से उस व्यक्ति को मार दिया जिससे बाण भी छूट जाने से मृग भी मर गया । तब दोनों व्यक्ति अपने-अपने स कल्प अनुसार वैर से स्पृष्ट होते हक्त अर्थात् पुढष को मारने के स कल्प वाला पुढष के वैर से एव मृग को मारने के स कल्प वाला मृग के वैर से स्पृष्ट होता है । मृग वधक को मृग से पाँच क्रिया एव पुढष घातक को पुढष से पाँच क्रिया लगती है । इसके अतिरिक्त मृग वध से पुढष घातक को भी तीन या चार क्रिया लगती है । जिसकी स्पष्टता यहाँ नहीं की गई है कि तु शतक-५, उद्देशक-६ से स्पष्ट होता है ।

कोई व्यक्ति किसी को हाथोहाथ(निकट से) तलवार भाला बरछी आदि से मारता है तो वह उसके तीव्र वैर से स्पृष्ट होता है ए व उसे पाँच क्रिया तो लगती ही है । यहाँ कही गई तीन क्रिया चार क्रिया और पाँच क्रिया क्रमश: ही समझना । क्रम उपर दिया गया है ।

॥ उद्देशक-८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३४ : स सार के पदार्थों को हल्के भारी आदि रूप में किस प्रकार विभाजन किया जाता है ?

उत्तर- पदार्थों के व्यवहार नय से गुढ, लघु, गुढलघु और अगुढलघु यों चार प्रकार होते हक्त कि तु शास्त्र में निश्चय नय से गुढलघु और अगुढलघु यों दो भेद में समस्त पदार्थों को लिया जाता है । यथा-

अगुढलघु- चौफर्सी पुद्गल और अरूपी पदार्थों को अगुढलघु कहा गया है, यथा- सात आकाशा तर, चार अस्तिकाय, काल, कर्म, भाव-लेश्या, कार्मणशरीर, ३ दृष्टि, ४ दर्शन, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ स ज्ञा,

मन-वचनयोग, दो उपयोग, ३ काल ।

गुढलघु- आठ स्पर्श वाले बादर पदार्थ गुढलघु होते हक्त, वे इसप्रकार हक्त, यथा- ७ तनुवाय, ७ घनवाय, ७ घनोदधि, ७ पृथ्वी, सभी द्वीप-समुद्र, सभी क्षेत्र और चार शरीर(कार्मण सिवाय), ६ द्रव्यलेश्या और १ काययोग; ये सभी पदार्थ बादर स्क ध युक्त होते हक्त ।

उभय- अनेक तरह के स ग्रह वाले बोल में ये उपरोक्त दोनों बोल अर्थात् अगुढलघु और गुढलघु होते हक्त, यथा- पुद्गलास्तिकाय, सर्व द्रव्य, सर्वप्रदेश, सर्वपर्याय । इनमें कुछ गुढलघु और कुछ अगुढलघु होतेहक्त ।

प्रश्न-३५ : आगे के भव का आयुष्य बा धने के बाद जीव उसे तत्काल भोगना चालु कर देता है ?

उत्तर- आयुष्य ब ध स ब धी जानकारी प्रश्न-३२ में दी गई है । आयुष्य ब धने के बाद वह तत्काल उदय में नहीं आता है । उसका प्रदेशोदय चालु हो जाता है किंतु विपाकोदय नहीं होता है । आयुष्य बा धने के बाद जितना इस भव का आयु बाकी रहा है उसे ही भोगा जाता है । इस भव के आयुष्य के पूर्ण होने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होता है तभी अगले भव का आयुष्य भोगना प्रार भ होता है । आयुष्य कर्म बा धने के बाद उसका प्रदेशोदय होता है जो यहाँ के कथन से अविढद्ध है । यहाँ उद्देशक-९ में स्पष्ट कहा है कि एक समय में एक ही आयु का वेदन किया जाता है इस भव का या परभव का । दो आयुष्य का ए क साथ वेदन कहने वाले मिथ्या कथन करते हक्त । यह कथन विपाकोदय-वेदन की अपेक्षा है, प्रदेशोदय को वेदन रूप नहीं गिना जाता है ।

प्रश्न-३६ : कालश्यवेषी अणगार कौन थे और उनकी क्या उलझन थी ?

उत्तर- वे अणगार तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के शिष्य थे एव बाह्य प्रवृत्ति या व्यवहार के आचरण के प्रति कुछ स देहशील थे अर्थात् ये वेशभूषा और बाह्य प्रवृतियाँ सामायिक स वर आदि कैसे हो सकती है ?

भगवान महावीर स्वामी के स्थविर भगव तों का समागम हो जाने पर अपनी उलझन को जिज्ञासा रूप में एव आक्षेपात्मक शब्दों में रखी । स्थविर भगव त अनुभव वृद्ध थे, वे उस अणगार की मनोस्थिति समझ गये और व्यवहार को गौण करके, निश्चय नय की भाषा में बोले कि– आत्मा ही सामायिक और सामायिक का अर्थ है, आत्मा ही स वर और स वर का अर्थ है प्रत्याख्यान विवेक और व्युत्सर्ग भी आत्मा ही है । गुण गुणी में होते हक्त अतः ये सभी आत्म स्वरूप ही है ।

प्रतिप्रश्न–तो फिर क्रोधमान आदि भी आत्मस्वरूप ही है आत्मा में होने से, तो उनकी गर्हा क्यों की जाती है ? **समाधान**– क्रोधादि आत्मस्वरूप होते हुए भी अवगुण रूप है, उनकी गर्हा–विवेक **स यम** के लिये की जाती है । गर्हा दोषों का विनाश करने वाली है एव बालभाव का निवारण करती है । जिससे आत्मा में स यम पुष्ट होता है, आत्मा स यम में स्थिर होती है ।

स्थविरों का सीधा और सचोट उत्तर कालास्यवेषी अणगार को सरलतापूर्वक हृदयग्राही बना । उसे अत्यधिक स तुष्टी हुई जिसे उसने व दन करते हुए निम्न कृतज्ञता के शब्दों से व्यक्त किया, यथा– हे भगवन् ! इन पदों को मक्तने पहले जाना सुना नहीं था, इनका मुझे **बोध** नहीं था, अभिगम(ज्ञान) नहीं था, अदृष्ट, अश्रुत, अविचारित, अविज्ञात, अप्रगट, अनिर्णित, अनिर्यूढ और अनवधारित थे । इस विषय में मुझे श्रद्धा प्रतीति ढचि नहीं थी कि तु आपके द्वारा इन पदों का सही अर्थ परमार्थ समझने को मिला यावत् अवधारण होने से अब मक्त इन पदों की यथार्थ श्रद्धा प्रतीति ढचि करता हूँ जैसा कि आपने समझाया है ।

इस प्रकार सरलात्मा कालास्यवेषी पुत्र अणगार भगवान महावीर के शासन में स्थविर भगव तो के पास पुनः महाव्रतारोपण करके प च महाव्रत-सप्रतिक्रमण धर्म में दीक्षित बने एव अनेक वर्ष स यम पर्याय का पालन कर सिद्ध बुद्ध मुक्त बने ।

सामायिक आदि का व्यवहारनय प्रधान अर्थ :– (१) समभावों में लीन बनना, सावद्य योगों का त्याग करना **सामायिक** है । नये कर्मों को रोकना, पुराने का क्षय करना यह सामायिक का प्रयोजन है । (२) पापों का या आहारादि पदार्थों का त्याग करना, यह **प्रत्याख्यान**

है । आश्रव रोकना और कर्म निर्जरा करना यह उसका प्रयोजन है । (३) पृथ्वीकाय की यतना करना स यम आदि १७ प्रकार का स यम तथा इन्द्रिय एव मन का निग्रह करना **स यम** है । (४) **स वर**– आश्रवों का निरोध करना (५) **विवेक**– विशेष बोध, हेय उपादेय तत्त्व का पृथक्करण करना । (६) **व्युत्सर्ग**– हेय का त्याग करना । विवेक और व्युत्सर्ग दोनों ही सम्यक् अवबोध प्राप्ति में उपयोगी है । यह इन छ पदों का व्यवहार नयापेक्षा अर्थ–प्रयोजन है । निश्चय और व्यवहार दोनों नय सापेक्ष मोक्षमार्ग की साधना आराधना सफलता को प्राप्त कराती है ।

प्रश्न–३७ : अप्रत्याख्यानी क्रिया क्या सभी को लगती है ?

उत्तर– अव्रती चार गुणस्थान तक के जीवों को अविरति की अपेक्षा यह क्रिया लगती है । पाँचवें छट्ठे आदि गुणस्थान वालों को व्रत-प्रत्याख्यान ढचि हो जाने से यह क्रिया नहीं लगती है । इस क्रिया में वर्तमान के साधन स योग पुढषार्थ का कोई प्रभाव नहीं होने से हाथी और कीडी या राजा और र क सभी को यह क्रिया अव्रत के कारण लगती रहती है ।

इस भव में कुछ भी किये बिना लगने वाली इस अव्रत क्रिया से बचने के लिये सीधा और सरल उपाय है कि सम्यक् तत्त्वों का अवबोध एव श्रद्धान के साथ साथ व्रतों के स्वरूप को भी समझकर श्रद्धान करके त्याग–प्रत्याख्यान रूप विरति भावों को शीघ्र स्वीकार करके यथाशक्य व्रत, त्याग–प्रत्याख्यानों का अवधारण करते रहना चाहिये ।

प्रश्न–३८ : जैन श्रमण, अपने लिये बना आधाकर्म दोष वाला आहार करे तो उन्हें क्या फल होता है?

उत्तर– स कल्पपूर्वक जान–बूझकर आधाकर्म आहार का सेवन करने से जैनश्रमण को ७ कर्मों की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारों ब ध की वृद्धि होती है; हलके कर्म प्रगाढ बनते हक्त; अल्पस्थिति दीर्घ बनती है; अशाता वेदनीय का अधिकतम ब ध होता है यावत् अन त स सार में परिभ्रमण होता है । क्यों कि वह श्रमण अपने आचार धर्म का अतिक्रमण करता है, छ काय जीवों के घात की परवाह नहीं करता है एव दयाभाव की उपेक्षा करता है; जिनके

शरीर का आहार करता है उन जीवों पर अनुक पा नहीं करता है; उनके जीवन की अपेक्षा नहीं रखता है ।

प्रासुक एव अेषणीय आहार भोगने वाला श्रमण सातों कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की वृद्धि नहीं करके उन कर्मों को शिथिल करता है । क्यों कि शुद्ध आहार गवेषक भिक्षु अपने आचारधर्म का स रक्षण करता है, छ काय जीवों की अनुक पा से भावित बनता है । उन-उन जीवों के जीवन की अपेक्षा रखता है यावत् स सार से मुक्त हो जाता है ।

वास्तव में स यम में **अस्थिर चित्त** बन जाने वाली आत्मा में ही व्रतनिष्ठा, आचारनिष्ठा **पलोट्टइ** = परिवर्तित हो जाती है, बदल जाती है; जिससे वे व्रतभ ग करते हक्त । स यम में **स्थिर चित्त** वाली आत्मा में आचार निष्ठा नहीं बदलती है जिससे वे व्रतभ ग नहीं करते है। इस तरह प डितपना और बालपना(बालत्व) अशाक्तत है । प डित और बाल बनने वाला जीव शाक्तत है ॥ उद्देशक-९ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३९ : अन्यतीर्थिकों की खोटी-खोटी कौन सी मान्यताएँ है?

उत्तर- यहाँ दसवें उद्देशक में तत्त्व स ब धी अनेक अस गत कुमान्यताएँ दर्शायी गई है । यथा- (१) परमाणु-परमाणु आपस में नहीं जुडता है क्यों कि उनमें स्नेह नहीं होता है तीन परमाणु जुड जाते हक्त उनमें स्नेह होता है । तीन प्रदेशी के दो विभाग होने पर डेढ-डेढ परमाणु दोनों विभाग में होते हक्त । **वास्तव में** दो-तीन परमाणु भी आपस में जुडकर द्विप्रदेशी त्रिप्रदेशी आदि स्क ध बनते हक्त एव तीनप्रदेशी के दो विभाग होने पर एक तरफ परमाणु और एक तरफ दो प्रदेशी स्क ध होता है । डेढ-डेढ परमाणु कभी होता नहीं है । (२) चलमान को अचलित कहा जाता है क्रियमाण कार्य किया हुआ नहीं कहना । **यह भी** जिन वचन से विढद्ध है । (३) पाँच परमाणु मिलते हक्त और वे दुख रूप बनते हक्त । **यह भी** अस गत है क्यों कि अन तप्रदेशी बादर स्क ध ही दु:ख सुख का कारण बनते हक्त । (४) बोलने के पहले और पीछे भाषा भाषारूप है, बोली जाती भाषा अभाषा है । **ऐसा कहना भी** विपरीत वचन है । **वास्तव में** बोली जाती हुई भाषा ही भाषा है । (५) क्रिया करने के पहले या पीछे दु:ख हेतु रूप होती है । **वास्तव**

में क्रिया करने के समय ही दु:ख हेतुरूप होती है ।(६) जीव क्रिया किये बिना ही दुखरूप वेदना वेदते हक्त । **यह भी** असत्य वचन है । **वास्तव में** क्रिया करके ही प्राण-भूत-जीव-सत्व वेदना वेदते हक्त । (७) एक समय में जीव ईर्यावहि और सा परायिक दोनों क्रियाएँ करता है । **यह कथन** भी मिथ्या है क्यों कि सा परायिक क्रिया दसवें गुणस्थान तक है और ईर्यावहि क्रिया ११ से १३ गुणस्थान तक होती है अत: दोनों क्रियाओं का साथ में होना अशक्य है ।

उद्देशक-१० में यह वर्णन किसी व्यक्ति विशेष या स प्रदाय विशेष के नाम से नहीं किया जाकर समुच्चय "अन्यमतावल बी" के स केत पूर्वक किया गया है । तात्पर्य यह है कि जिनमत से विपरित तत्त्व निरूपण करने वाले भी जगत में कई मिथ्यामति मिथ्यादृष्टि लोग होते

शतक-२ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस शतक में उद्देशक स ख्या १० है । उन दस उद्देशकों के नाम या मुख्य विषय सूचक एक गाथा शतक के प्रार भ में है । तदनुसार विषय परिचय इस प्रकार है-

(१) उस्सासखं दए- प्रथम उद्देशक में एकेन्द्रिय जीवों के श्वासोश्वास, मडाई अणगार एव स्क धक परिव्राजक का मोक्षपर्यंत का विस्तृत वर्णन है ।

(२) समुद्घात- दूसरे उद्देशक में समुद्घात के वर्णन के लिये अन्यत्र का सूचन मात्र है वर्णन कुछ नहीं है ।

(३) पृथ्वी- सात पृथ्वी स ब धी वर्णन की सूचना मात्र है ।

(४) इन्द्रिय- पाँच इन्द्रिय स ब धी वर्णन की सूचना मात्र है ।

(५) अन्यतीर्थिक- परिचारणा स ब धी अन्यतीर्थिक असत्प्ररूपणा है एव गर्भस ब धी निरूपण, कामभोग स ब धी अस यम, तु गियानगरी के श्रावक, गर्मपानी का कु ड इत्यादि वर्णन है ।

(६) भाषा- स क्षिप्त स केत ।

(७) देव- देवों स ब धी स क्षिप्त स केत ।

(८) **चमरच चा**– अधोलोक में रही हुई चमरेन्द्र की राजधानी स ब धी वर्णन है ।

(९) **समयक्षेत्र**– स क्षिप्त स केत ।

(१०) **अस्तिकाय**– पाँच अस्तिकायों का सा गोपा ग निरूपण है।

इस प्रकार इस शतक के पाँच उद्देशकों मे वर्णन है और पाँच उद्देशक नाम मात्र के हक्त । स क्षिप्त स केत जिस शास्त्र स्थल का किया गया है उस विषय स ब धी प्रश्नोत्तर उस शास्त्र स्थल में किये जायेंगे।

प्रश्न–२ : एकेन्द्रिय जीव श्वासोश्वास लेते हक्त क्या ?

उत्तर– पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु तथा वनस्पति ये पाँचों एकेन्द्रिय जीव भी त्रस जीवों की तरह निर तर श्वासोश्वास लेते हक्त, वे भी श्वासोश्वास वर्गणा के पुद्गलों को ६ दिशा से अथवा कोई ३,४,५ दिशा से ग्रहण करते हक्त। लोक मध्य में ६ दिशा से और लोका त में स्थित जीव ३,४,५ दिशा से श्वासोश्वास वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करते हक्त ।

वायुकाय के जीव भी निर तर वायु का श्वासोश्वास लेते हक्त। सैद्धा तिक दृष्टि से जिन्हें श्वासोश्वास वर्गणा के पुद्गल कहा जाता है उसे ही स्थूल दृष्टि से अथवा व्यवहार से वायु कहा जाता है । श्वासोश्वास वर्गणा रूप वायु अचित्त होती है और वायुकाय जीव रूप वायु सचित्त सजीव होती है । सभी जीव अचित्तवायु रूप श्वासोश्वास वर्गणा का(ओक्सीजन का, प्राणवायु का) श्वास लेते हक्त । एकेन्द्रिय जीव त्वचा से, स्पर्शेन्द्रिय से श्वास लेते हक्त ।

प्रश्न–३ : मडाई अणगार का क्या मतलब है ?

उत्तर– मड=मृत=अचित्त । निर्दोष अचित्त आहार करने वाला श्रमण। मडाई यह अणगार का एक विशेषण है । इस शब्द प्रयोग पूर्वक यहाँ उद्देशक–१ में यह बताया गया है कि ऐसे श्रमण भी यदि अपना स सार घटाकर निष्ठितार्थ होकर मुक्त नहीं होवे तो उन्हें भी जन्म मरण करना पडता है । आयुष्य पूर्ण होने के पहले कोई भी गति या द डक का आयुब ध परिणामों के अनुसार होता है वहाँ जाना पडता है । ऐसे निर्ग्रंथ भी अन्य गति में जाने के बाद स सार में जन्म मरण

करते हुए वे प्राण, भूत, जीव या सत्त्व आदि कहलाते हक्त । बाह्य–आभ्य तर श्वासोश्वास क्रिया वाले होने से **प्राणी** कहे जाते हक्त । तीनों काल में अस्तित्व स्वभाव वाले होने से **भूत** कहे जाते हक्त । जीवत्व स्वभाव वाले होने से या जीवन जीने वाले होने से **जीव** कहलाते हक्त । शुभाशुभ कर्मों की सत्ता वाले होने से **सत्त्व** कहलाते हक्त । पाँच रसों को जानते होने से **विण्णु–विज्ञ**(ज्ञाता) कहलाते हक्त । सुख–दु:ख का वेदन करते होने से **वेदक** कहे जाते हक्त अर्थात् वे अचित्त भोजी निर्ग्रंथ भी अन्य भव में जाने के बाद कोई भी स सारी जीवों के नाम से पहिचाने जाते हक्त । जो मडाई अणगार अपने भव-स सार का अ त कर देते हक्त, वे सिद्ध कहे जाते हक्त । इसी तरह बुद्ध, मुक्त, पारगत, पर परगत आदि भी कहे जाते हक्त ।

प्रश्न–४ : पिंगल नामक निर्ग्रंथ और वैशालिक श्रावक ऐसे दो शब्दप्रयोग से क्या अर्थ निकलता है ?

उत्तर– शतक–१२ में जय तिबाई श्रमणोपासिका के परिचय वर्णन में **'वेसालिय सावयाण पढम सेज्जायरी'** ऐसा कहा गया है । जिसका अर्थ है कि श्रमण भगवान महावीर के अनुयायी श्रमणों की मुख्य वह शय्यातरी थी । भगवान की माता त्रिशला की विशाला नगरी जन्मभूमि थी । इसलिये उसका एक नाम **'विशाला'** भी था । उनके पुत्र होने से भगवान का **वैशालिक** नाम भी प्रसिद्ध हुआ था। अन्य मतावल बी भी इस नाम से स बोधन करते थे ।

'सावयाण ' यह शब्द अनुयायी अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ होता है भगवान महावीर के वचन को श्रवण करने वाले, स्वीकार करने वाले, उनकी आज्ञा में विचरण करने वाले । इसलिये **वेसालिय सावयाण**=भगवान महावीर के अनुयायी श्रमणों की; **पढम सेज्जायरी**=श्रमणों को निवास स्थान देने में प्रसिद्ध– अग्रगण्य थी । जय ति श्रमणोपासिका के पास विशाल भवनों की जोगवाई=उपलब्धि थी । जिनमें वह श्रमणों को उतारा देने में प्रसिद्ध थी । इस प्रकार बारहवें शतक में जैन श्रमणों के लिये वैशालिक श्रावक–अनुयायी शब्दप्रयोग हुआ है यह स्पष्ट है । अत: प्रस्तुत शतक–२, उद्देशक–१ में कथित पिंगल नामक निर्ग्रंथ श्रमण, भगवान

महावीर का अनुयायी था ऐसा अर्थ होता है । उस समय पार्श्वनाथ भगवान के अनुयायी श्रमण या गोशालक के श्रमण भी विचरण करने वाले थे इसलिये स्पष्टीकरण के लिये 'वेसालिय सावए' विशेषण का प्रयोग आगम में भगवान महावीर के श्रमणों के लिये हुआ है । भगवान महावीर स्वामी के श्रावकों के लिये आगमों में प्राय: **समणोवासए**= श्रमणोपासक शब्द का प्रयोग हुआ है ।

धारणा पर परा में कहीं 'पि गल निर्ग्रंथ नाम का श्रमणोपासक' ऐसा भी स्वीकार किया जाता है, वैसी मानसिकता से हमने आगम सारा श में पिंगल का श्रमणोपासक होना स्वीकार किया है तो भी स देहशील होने से वहाँ **तत्त्व केवलिगम्य** होना कह दिया है । यहाँ प्रश्नोत्तर में पि गल नामक निर्ग्रंथ को हमने भगवान महावीर का अनुयायी श्रमण स्वीकार किया है । पाठक अपनी बुद्धि से पूर्वापर विचार कर सही समझने का प्रयत्न करेंगे । समझ में नहीं आने पर 'तत्त्व केवली गम्य ' ऐसा विचार कर कोई आग्रह में नहीं पडने का लक्ष्य रखेंगे ।'परिवसइ' क्रिया कदाचित् कारणवश अधिक निवास करते हुए श्रमणों के लिये भी हो सकती है, ऐसा स्वीकार कर लेने पर उलझन का समाधान हो सकता है ।

प्रश्न–५ : स्क धक स न्यासी कौन था और उसका अध्ययन कैसा था ?

उत्तर– श्रावस्तीनगरी के नजदीक में ही कृता गला नगरी थी ।श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए वहाँ पधारे और छत्रपलासक नामक उद्यान में विराजे । श्रावस्तीनगरी में गर्दभाल स न्यासी का शिष्य कात्यायन गोत्री स्क धक परिव्राजक रहता था। वह चारों वेदों का सा गोपा ग=अर्थ परमार्थ सहित ज्ञाता था । इसके सिवाय पाँचवाँ इतिहास और छट्ठा निघ टु इन सभी का रहस्य युक्त अध्येता अर्थात् पार गत था । सा ख्य मत के शास्त्र में निपुण था । व्याकरण, ज्योतिष, निढक्त, छ द और आचार शास्त्रों में भी निष्णात था । अन्य भी अनेक ब्राह्मण परिव्राजकों स ब धी ज्ञान, आचार, धारणाओं आदि का, उनके दर्शन शास्त्र का परिपूर्ण ज्ञाता था ।

अपने मत में पूर्ण निष्णात होते हुए भी उसने जैन धर्म के तत्त्वों का अध्ययन परिचय नहीं किया था जिस कारण एक दिन अचानक

पिंगल निर्ग्रंथ के आ जाने पर एव प्रश्न करने पर वह उत्तर नहीं दे सका अर्थात् निढत्तर होकर मौनपूर्वक रहा । दो–तीन बार पूछने पर भी उत्तर नहीं मिला तो पिंगलनिर्ग्रंथ चला गया ।

स्क धक स न्यासी अपने मत में निष्णात होते हुए भी सरल, शा त-स्वभावी होने से वाद-विवाद में नहीं पडा कि तु उज्जवल भावी के कारण समाधान पाने की जिज्ञासा युक्त रहने लगा ।

प्रश्न–६ : किसी भी मत–मजहब के प्रका ड विद्वान स त को अपने मत में शासन में दीक्षा दे देना अनुचित नहीं होता ?

उत्तर– प्रस्तुत वर्णन पाठ से ऐसा स्पष्ट होता है कि स्क धक स न्यासी के गुढ गर्दभाल स न्यासी थे कि तु वे उस समय मौजुद नहीं थे या वह स्क धक उनके सा निध्य में नहीं रह रहा था । कि तु खुद की मुख्यता से ही निवास कर रहा था । इसी कारण पि गल निर्ग्रंथ ने उसी से प्रश्न किये और प्रश्नों का उत्तर नहीं आने पर उसने गुढ का निर्देष भी नहीं किया और निढत्तर होकर रह गया ।

इस प्रकार खुद की प्रमुखता वाले स्वय अपने निर्णायिक होते हक्त वे किसी के आधीन नहीं होते हक्त । सत्य समझ में आ जाने पर वे सरलता के साथ सही मार्ग स्वीकार कर लेते हक्त तथा सामने भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग भगवान है । वे प्रस गवश फरसना देखकर जैसा व्यवहार ज्ञान से उचित समझे वैसा कर लेते हक्त । पर्षदा में भी सभी प्रकार के लोग होते ही हक्त । किसी की सम्मति आवश्यक हो तो सर्वज्ञ भगवान उस तरह भी कर लेते हक्त ।

स्क धक स न्यासी को भगवान के पास आने के लिये भी किसी की स्वीकृति लेनी नहीं पडी थी । अत: अपने जीवन के वे स्वय सर्वेसर्वा निर्णायिक थे ।

सामान्य साधु इस तरह का शीघ्र निर्णायिक व्यवहार नहीं करके अपनी स यम समाचारी तथा शास्त्राज्ञा अनुसार विवेकपूर्वक दीर्घदृष्टि रखकर निर्णय करे, वही हितावह होता है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान के आचरण विशिष्ट होते हैं, उन सब की नकल नहीं की जा सकती और उनकी टीका-टिप्पणी भी नहीं की जा सकती ।

प्रश्न–७ : क्या तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने के बाद

आहार नहीं करते या तपस्या नहीं करते ?

उत्तर– सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान को ऐसा कोई एका त आग्रह नहीं होता है । वे जैसी ज्ञान से स्पर्शना देखते जानते, वैसा ही आचरण कर लेते हक्त । स्क धक स न्यासी भगवान के पास आया उन दिनों भगवान नित्यभोजी थे, ऐसा यहाँ पर पाठ में कथन है । अतः अन्य समय में कभी नित्यभोजी नहीं भी होवे तब तपस्या करना भी स्पष्ट हो जाता है। भगवान महावीर स्वामी ने गौशालक के उपद्रव से अभिभूत होकर भी ६ महीने तक औषध ग्रहण नहीं किया और अ त में सि हा अणगार को भेजकर निर्दोष औषध म गाकर उसका सेवन भी किया था । इस प्रकार भगवतीसूत्र के इन दोनों वर्णन से भी यह स्पष्ट होता है कि भगवान आहार, उपवास, औषध आदि के स ब ध में अनाग्रही व्रती वाले थे ।

प्रश्न–८ : गौतम स्वामीने परिव्राजक वेश में आते हुए स्क धक का स्वागत क्यों किया ?

उत्तर– उन्होंने भगवान के द्वारा जान लिया था कि वह स यम स्वीकार करेगा। अपने पूर्व साथी का इतना सु दर भविष्य भगवान के द्वारा जानकर गीतार्थ बहुश्रुत गणधर प्रभू के द्वारा उनका सन्मान स्वागत करना यथार्थ ही था, ऐसा समझना चाहिये। यों भी अपने स्थान पर कोई भी स न्यासी या श्रमण आवे तो उसके साथ उचित शिष्टाचार व्यवहार तो किया जा सकता है । सामान्य श्रमण ऐसे अति परिचय से दूर रहे, यह योग्य होते हुए भी प्रमुख श्रमण बहुश्रुत गीतार्थ होकर ही विचरण करने वाला होने से वह आग तुक गृहत्यागी गुणवानों का उचित समादर अपनी मर्यादा में रहते हुए कर सकता है ।

प्रश्न–९ : भगवान महावीर ने स्क धक के मनोगत प्रश्नों का क्या समाधान फरमाया था ?

उत्तर– पिंगल निर्गंथ ने स्क धक स न्यासी को ५ प्रश्न पूछे थे जिनका उत्तर वे नहीं दे सके थे । उन्हीं प्रश्नों का समाधान पाने के स कल्प से वे भगवान के समीप आये थे । उन्हें प्रश्न पूछने की जरूरत भी नहीं पडी, क्यों कि सर्वज्ञ भगवान ने स्वय ही उसके मनोगत प्रश्नों का उच्चारण करके समाधान फरमाया था । भगवान के इस व्यवहार

और समाधान से स तुष्ट एव प्रभावित बने स्क धक ने अपना जीवन भगवान की सेवा में समर्पित कर दिया था अर्थात् दीक्षित बनकर अनेक वर्षों तक तप स यम की विशिष्ट आराधना की थी । उन पाँच प्रश्न और उत्तर का भाव इस प्रकार है– (१) लोक सा त भी है अन त भी है । द्रव्य से लोक एक है क्षेत्र से १४ राजु की मर्यादा वाला है अतः सा त है । काल से सदा है और रहेगा एव भाव से लोक की अन त पर्यायें है अतः अन त भी है । (२) इसी तरह जीव (३) सिद्ध और (४) सिद्धि(सिद्धस्थान) भी द्रव्य–क्षेत्र से सा त है और काल भाव(पर्याय) से अन त भी है । (५) बारह प्रकार के बालमरणों से मरता हुआ जीव अपने स सार भ्रमण की वृद्धि करता है और दो प्रकार के प डित मरण से मरता हुआ जीव अपने स सार भ्रमण को घटाता है । बालमरण के १२ नाम तथा प डितमरण का विशेष वर्णन स्थाना गसूत्र, स्थान–२, पृष्ट–३२ पर भाग–२ में तथा आचारा ग सूत्र पृष्ट–९८ भाग–१ में प्रश्नोत्तर रूप में किया गया है ।

प्रश्न–१० : दीक्षा लेकर स्क धक अणगार ने स यम तप में क्या पुढषार्थ किया था ?

उत्तर– स्क धक स न्यासी ने पूर्ववेश का त्याग कर श्रमण वेश धारण कर भगवान के पास समवसरण में स यम अ गीकार किया । सामायिक आदि से लेकर ११ अ गशास्त्रों का अध्ययन किया एव उसके बाद यथासमय भगवान की आज्ञा प्राप्त कर भिक्षु की १२ प्रतिमाएँ धारण कर उनका यथार्थ आराधन किया । जिसमें आठ महीने का समय लगा । उसके बाद 'गुणरत्न स वत्सर' नामक तप किया जिसमें १६ महीने लगे । प्रथम महीने में उपवास, दूसरे महीने में बेले, तीसरे महीने में तेले, यों १६ वें महीने में १६–१६ उपवास करना आदि इस तप की मुख्य विधि है । विशेष विधि अ तगडसूत्र में विस्तृत दर्शाई गई है । इसके बाद भी स्क धक अणगार ने उपवास से लेकर मासखमण तक की अनेक तपस्याएँ करके शरीर को सुखाकर हाडपिंजर जैसा बना दिया । जिससे उनके चलने, उठने, बैठने में भी हड्डियों की आवाज सुनाई देने लगी थी । उसके बाद भी समय रहते भगवान से आज्ञा लेकर, स्वय सावधानी पूर्वक पुनः महाव्रतारोपण करके, सभी श्रमण-श्रमणियों

से क्षमापना करके, विपुल पर्वत पर कडाई स्थविरों के साथ *[दृढ मनोबलि एव साधित शरीर वाले अर्थात् कडक, हिम्मती, दीर्घदीक्षा पर्याय वालों के साथ]* धीरे-धीरे चढकर, यथास्थान स लेखना स थारा=पादपोपगमन प डित मरण अ गीकार किया । एक महीने के स थारे से काल करके स्क धक अणगार का जीव १२वें देवलोक में गया और वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर यथासमय स यम तप के द्वारा स पूर्ण कर्मक्षय करके मुक्ति प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार अपने मत के महाज्ञानी होते हुए भी सरलता गुण के कारण निढत्तर होने पर भी अपमान अनुभव नहीं करके जिज्ञासा धारण कर भगवान की सेवा में पहुँचकर उन्होंने अपना कल्याण साध लिया ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-११ : देवों की परिचारणा के विषय में अन्यतीर्थिकों की खोटी मान्यता और उसका समाधान क्या है ?

उत्तर- निग्रंथ धर्म का आचरण करके जीव देवलोक में देव बनकर स्वय देवी की विकुर्वणा करके उसके साथ वह देव परिचारणा करता है और ऐसा करके वह जीव एक साथ दोनों वेदों का (स्त्री-पुढष का) एक साथ वेदन करता है । **ऐसा अन्यतीर्थिक कथन करते हक्त। जिन मतानुसार** भोगों का निदान करने वाला जीव इस प्रकार की भोगा-सक्ति युक्त आचरण करता है। निग्रंथ तो विरक्त भाव से सु दर आराधना के द्वारा उच्चतम देव बनता है । जहाँ इस प्रकार की भोगा-सक्ति होती भी नहीं है । निदानकृत देव भी अपनी पुढष वेद की मनो-वृत्ति के फल स्वरूप ही देवी रूप की विकुर्वणा करता है और उस परिचारणा से पुढषवेद की मानसिकता की ही तुष्ठि-स तुष्ठि करता है। स्त्रीवेद वेदन के स कल्पों से वह ऐसा करता भी नहीं है । निदानकृत देव होने से वह विभिन्न तरह से अपने पुढषवेद की ही परिपुष्टि करता है । अत: एक साथ दो वेद के वेदन की बात भी मिथ्या है और वह भी श्रमण निग्रंथ के नाम से कहना तो दूषित मनोवृत्ति का ही परिणाम है । इस प्रकार यहाँ देवों की परिचारणा स ब धी अन्यतीर्थिकों की दोनों मान्यताओं को दूषित ठहराया है और एक समय में एक ही वेद

का जीव वेदन करता है यह सिद्धा त पुष्ट किया गया है । यद्यपि एक भव में एक जीव तीनों वेदों का वेदन मोहोदय से कर सकता है कि तु एक समय में या एक साथ दो वेद का अनुभव करना कहना, सत्य सिद्धा त से विपरीत है ।

प्रश्न-१२ : गर्भ स ब धी जानकारियाँ इस दूसरे शतक में किस प्रकार दी गई है ?

उत्तर- गर्भ स ब धी कुछ तत्त्वों का कथन प्रथम शतक प्रश्न-३१ में भी किया गया है । यहाँ विशेष कथन इस प्रकार है-(१) उदक गर्भ उत्कृष्ट ६ महीना रहता है । तिर्यंच का गर्भ(गर्भगत जीव) उत्कृष्ट आठ वर्ष और मनुष्य का गर्भ उत्कृष्ट १२ वर्ष गर्भ रूप से रह सकता है । उसके बाद गर्भगत जीव मर जाता है या बाहर आ जाता है । मरने वाला जीव पुन: उसी गर्भ में आकर फिर से उत्कृष्ट १२ वर्ष रह सकता है । इस तरह एक जीव की निर तर एक ही गर्भस्थल में रहने की कायस्थिति २४ वर्ष की मनुष्य की अपेक्षा हो सकती है । (२) एक जीव एक भव में अनेक सौ व्यक्तियों के पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकता है अर्थात् उसकी माता की योनी में १२ मुहुर्त में इतने पुढषों का वीर्य प्रविष्ट हो सकता है । सन्नी जलचर तिर्यंचों में या नदी में स्नान करने वाली स्त्रियों की अपेक्षा ऐसा स भव हो सकता है अथवा एक स्त्री का सेकडों पुढषों के साथ स ब ध हो सकता है वे सभी उस स्त्री के पुत्र के पिता कहे जा सकते हक्त। (३) एक जीव के उत्कृष्ट लाखों पुत्र हो सकते हक्त यह भी करोड पूर्व की उम्र एव तिर्यंच प चेन्द्रिय की अपेक्षा ज्यादा स भव है । जलचर मादा एक साथ लाखों अ डे दे सकती है अथवा स्त्री योनी में एक साथ लाखों जीव उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हक्त वे भी पुत्र ही कहे जाते हक्त । (४) इसी कारण मैथुन सेवन में होने वाले अस यम को समझाने के लिये ढई से भरी नालिका में तप्त शलाका डालने का दृष्टा त उपमित किया गया है । मैथुन सेवन मोह परिणत आत्म विकार भाव है । यह स्वय चौथा पाप है तथा लाखों प चेन्द्रिय जीवों का विनाश हेतुक होने से प्रथम पाप से युक्त भी है । अत: अब्रह्म को दशवैकालिक अध्ययन-६ में अधर्म का मूल और महान दोषों का ढेर है, ऐसा बताया गया है ।

प्रश्न-१३ : तुंगिया नगरी के श्रमणोपासकों की ऐहिक ऋद्धि का एव श्रमणोपासक पर्याय के विशिष्ट गुणों का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- ऐहिक ऋद्धि- (१) वे श्रमणोपासक ऋद्धिस पन्न थे। (२) प्रभावशाली थे या सदा प्रसन्न रहने वाले थे । (३) उनके ल बे चौडे अनेक भवन थे । (४) आसन, शयन, वाहनों की उनके वहाँ प्रचुरता थी । (५) बहुत धन था और सोने-चा दी के भी भ डार भरे रहते थे। (६) लेन-देन एव व्याज का धंधा करने वाले थे। (७) खाने के बाद बहुत भोजन उनके घरों में बचता था, जो अनेक लोगों को एव काम करने वालों को दिया जाता था। (८) उनके घरों में काम करने वाले अनेक दास-दासी, नौकर, कर्मचारी आदि रहते थे, गायें-भसें, भेड-बकरे आदि अनेक पशु भी रहते थे ।(९) अनेक लोगों में ऋद्धि और प्रतिष्ठा की अपेक्षा वे अपराभूत थे अर्थात् अनेकों से वे अधिक ऋद्धि स पन्न थे ।

धार्मिक आत्मगुण- (१) अभिगय जीवाजीवे-जीव तथा अजीव तत्त्व के स्वरूप को समझकर आत्मसात् किया था । पुण्य-पाप तत्त्व के अर्थ-परमार्थ को समझकर हृदय गम किया था । आश्रव, स वर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, ब ध और मोक्ष के स्वरूप, साधन, आचरण को तथा ब धन और उससे मुक्ति के स्वरूप को समझे हुए थे । इस प्रकार वे ९ तत्त्व २५ क्रियाओं के तलस्पर्शी ज्ञाता थे । हेय, ज्ञेय, उपादेय तत्त्वों के ज्ञानी, तत्त्वज्ञ, तत्त्वाभ्यासी, तत्त्वानुभवी, तत्त्वस वेदक और तत्त्वदृष्टा विद्वान थे । (२) अपने सुख-दुःख को समभावपूर्वक सहन करते हुए कोई भी देवी-देवता से सहाय की आका क्षा-इच्छा वे नहीं करते थे । अपनी धर्म श्रद्धा में वे इतने दृढ मनोबली अनुभवी थे कि कोई भी देव-दानव उन्हें धर्मश्रद्धा से विचलित नहीं कर सकता था । (३) निर्ग्रंथ प्रवचन में अर्थात् जिनेश्वर भाषित किसी भी तत्त्व या आचार में स देह रहित स देहातीत थे, धर्म एव धर्मफल में उन्हें अ श मात्र भी श का नहीं थी। जिनधर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में या उनके प्रवक्ताओं में उनकी कोई आका क्षा या आकर्षण भी नहीं था । अत: वे अपने प्राप्त जिनधर्म में निष्ठा, ढचि से पूर्ण स तुष्ट थे । (४) उन्होंने जिनधर्म के सूक्ष्म या गहन अथवा सामान्य से लगने वाले, यों

सभी तत्त्वों का चि तन मनन कर, योग्य प्रश्न चर्चा से उनके परमार्थ को, रहस्य ज्ञान को प्राप्त किया था एव उसे आत्मा में विनिश्चित-दृढीभूत किया था । (५) धर्मप्रेम स ब धी अनुराग-आस्था-निष्ठा उनकी नश-नश में रग-रग में भरी हुई थी, उनके हाड-हाड में धर्मर ग उतर चुका था ।(६) **'अयमाउसो ! णिग्ग थे पावयणे अट्ठे...।'** उनके धर्म र ग की उत्कृष्टता इस प्रकार प्रमाणित थी कि वे जब जहाँ भी कुछ श्रावक इकट्ठे होते, धर्मचर्चा होती तो उनके अ तर के सहज शब्द निकलते थे कि इस जीवन में कुछ भी सारभूत तत्त्व है तो वह निर्ग्रंथ प्रवचन ही एक मात्र अर्थभूत है, परमार्थ स्वरूप है, प्रयोजन भूत है । शेष सभी स सार प्रप च असारभूत है, अनर्थभूत है, दुःखदायक या दुःखमूलक है ।(७) **उसिहफलिहा-अव गुयदुवारा-** वे उदार थे, दानी थे, उनके घर के द्वार सदा याचकों के लिये खुल्ले रहते थे अर्थात् कोई भी याचक वहाँ से कुछ न कुछ पा लेता था । सभी के लिये उनके भाव उदार थे, दिल दरियाव था । उन्हें किसी से किसी प्रकार का भय नहीं था, खुले द्वार वाले थे । (८) **चियत्त अ तेउर-घर-पवेसा-** किसी भी घर या राजा के रणवास में उनका प्रवेश चियत्त= प्रतीतकारी था अर्थात् उनका शील-समाचरण, जीवन-व्यवहार, समाज में लोगों में एव राज्य में पूर्ण विश्वस्त था। उनका चारित्र-स्वदार स तोषव्रत निर्मल था ख्याति प्राप्त था । (९) वे अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, अणुव्रत-गुणव्रत, सामायिक-पौषध आदि धारण करने में उत्साही आलस्य रहित थे। (१०) श्रमण निर्ग्रंथ को यथाप्रस ग उनकी अनुकूलता अनुसार आहारादि १४ प्रकार के निर्दोष तथा स यम सहायक पदार्थ का दान देते हुए स्वय भी यथाशक्ति तप स यम का आचरण करने वाले थे । आत्मा को उसी में भावित करने वाले थे ।

ये गुण प्रत्येक श्रावक में होने चाहिये, आगम में श्रेष्ठ आदर्श श्रमणोपासक के वर्णन में प्रायः ये विशेषण-गुण सर्वत्र विस्तृत या स क्षिप्त किसी न किसी रूप में प्राप्त होते हक्त । भौतिक जीवन की विशालता और धार्मिक जीवन की महानता दोनों के सुमेल युक्त श्रावक का जीवन श्रेष्ठ एव आदर्श गिना जाता है ।

प्रश्न-१४ : तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक स्थविर भगव तों की सेवा में किस प्रकार उपस्थित हुए ?

उत्तर- अनेक श्रावक अपने-अपने घरों से पैदल ही चलते हुए एक स्थान पर एकत्रित हुए। फिर जहाँ पुष्पवती बगीचे में स्थविर भगव त थे वहाँ उनके दर्शन पर्युपासना के लिये पैदल चल कर गये, बगीचे में स्थविरों के नजीक पहुँचकर ५ अभिगम-धर्मगुढ के समक्ष किये जाने वाले व्यवहार किये । यथा- विभूषित अल कृत होकर घर से चले थे । अतः (१) सचित्त श्रृ गार के पदार्थ अलग किये एक तरफ रख दिये (२) अचित्त जूता आदि पदार्थ भी निकाल कर अलग किया। (३) एक साटिक उत्तरास ग धारण किया । एकसाटिक=एक क धे पर रखा जाने वाला वस्त्र का, उत्तरास ग किया=मुख के सामने किया । (४) स्थविर भगव तों के दिखने पर हाथ जोडकर अ जली करी (५) मन को एकाग्र करके उनकी सेवा में पहुँच गये । इस प्रकार इन ५ नियमों की समाचारी का पालन किया । तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके प्रवचन सभा में मन वचन काया से एकाग्र होकर स्थविरों के समक्ष बैठ गये । स्थविर भगव त ५०० श्रमणों की स पदा से विचरण करते हुए वहाँ पधारे थे । वे पार्श्वनाथ भगवान की पर परा के श्रमण थे । श्रद्धाभक्ति पूर्वक स्थविरों का प्रवचन सुना।

पाँच अभिगमों की उपयोगिता- जैन श्रमणों की सेवा में जाने के लिये ये पाँच अभिगम धर्म श्रद्धालुओं की आचार प्रणाली है । इसका यथार्थ पालन करना सभी का प्रथम कर्तव्य है । (१) श्रमण सचित्त के त्यागी, सावद्ययोग के त्यागी होते हक्त, उनके समक्ष विराधना योग्य सभी पदार्थ त्याग कर जाना जरूरी होता है । (२) श्रमणों के सन्मान के लिये धर्म सभा में अनावश्यक अचित्त पदार्थ त्याग करके पूर्ण नम्र बनकर जाना चाहिये । (३) श्रमण सदा मुखवस्त्रिका धारण करते हक्त, खुले मुँह नहीं बोलते हक्त तदनुसार उनकी सेवा में जाने वाले को भी मुख के सामने वस्त्र अवश्य धारण करना चाहिये जिससे खुले मुँह बोलना नहीं होगा तथा थूक आदि से श्रमणों की आशातना नहीं होगी । (४) नम्रता युक्त शिष्टाचार के लिये अ जली करना मुख्य लक्षण है । (५) एकाग्र चित्त होकर रहने से स तो की वाणी और भावों का पूर्ण मूल्या कन

जीवन उन्नति में सहयोगी होता है । इसलिये ये पाँचों श्रावकाचार प्रयोजन पूर्ण है, ऐसा समझकर अप्रमाद भाव से श्रावक को इनका आचरण अवश्य करना चाहिये ।जो भी श्रावक आलस्य, अज्ञान से इनका आचरण नहीं करते हो तो उन्हें भी आलस्य त्याग कर, इन पाँचों नियमो का पालन स्थिर चित्त से करने का दृढ स कल्प करना चाहिये ।

प्रश्न-१५ : उन श्रावको ने व्याख्यान के बाद क्या तत्त्व चर्चा करी ?

उत्तर- व्याख्यान उपरा त व दन नमस्कार करके विनय भक्तिपूर्वक स त सा निध्य में बैठकर उन श्रावकों ने अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की अर्थात् अनेक श्रावकों की प्रमुखता करते हुए किसी एक श्रावक ने प्रश्न किया-

प्रश्न- हे भगवन् ! स यम का क्या फल है ? तप का क्या फल है?
उत्तर- स्थविरों ने अर्थात् किसी एक श्रमण ने उत्तर दिया कि स यम से कर्म आश्रव ढकता है और तप से पूर्व कर्मों की निर्जरा होती है ।
प्रतिप्रश्न- हे भ ते ! तो फिर स यम-तप के पालन से जीव देवलोक में क्यों जाता है ? **समाधान**- **पूर्व स यम** से वह देवलोक में जाता है अर्थात् सराग-स यम, पूर्व स यम है, प्रार भिक स्टेज है और वीतराग-स यम, पश्चात् स यम है । इस प्रकार प्रथम उत्तर हुआ **सराग-स यम** होने से श्रमण देवलोक में जाते हक्त, वीतराग स यम में स्थिर हो जाय तो उसी भव में मुक्ति हो जाती है । (२) दूसरे स्थविर ने उसी को पुष्ट करते हुए आगे उत्तर दिया कि पूर्व तप से अर्थात् सराग तप से । (३) तीसरे स्थविर ने आगे चलाते हुए कहा कि जीव की कर्मिता अवस्था अर्थात् सकर्मा अवस्था रह जाने से (४) चौथे स्थविर ने उस उत्तर को पूर्ण करते हुए कहा कि स गिता अवस्था से अर्थात् सराग अवस्था, छद्मस्थावस्था के कारण । सब मिलाकर पूर्ण उत्तर हुआ कि- इन चारों कारणों से जीव का स सार बाकी होने से देवायु का शुभ कर्म ब ध होता है । स यम-तप कोई कर्म ब ध के कारण नहीं है उसमें रही हुई कमी रूप सरागता, छद्मस्थता, सकर्मता आदि शुभ कर्म शुभायु का ब ध कराती है ।

श्रमणोपासकों की जिज्ञासा का समाधान हो गया उन्हें पूर्ण स तोष हुआ। अन्य लोग भी समाधान से लाभान्वित हुए।

गौतम स्वामी के पूछने पर महावीर प्रभु ने भी इसका समर्थन किया कि स्थविरों ने वह सही उत्तर दिया।

प्रश्न-१६ : श्रमणों की सेवा में जाने से, उनकी पर्युपासना करने से अर्थात् उनके सा निध्य में बैठने से, सत्स ग करने से क्या उपलब्धि होती है ?

उत्तर- श्रमणों की पर्युपासना से क्रमशः १० बोलों की उपलब्धि होती है। (१) धर्म वचन श्रवण करने मिलते है (२) व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान की प्रेरणा एव आत्म तत्त्व का ज्ञान मिलता है। (३) ज्ञानवृद्धि या चर्चा विचारणा से विशेष ज्ञान-विज्ञान प्राप्त होता है, सही तत्त्व की अनुभूति होती है (४) त्यागप्रत्याख्यान व्रत नियम की भावना पैदा होती है (५)आगे बढकर स यम और (६)अनाश्रव फिर (७) तप में पराक्रम होता है (८) जिससे पूर्व स चित कर्म क्षीण होते हक्त(९) क्रमशः जीव अक्रिय-योगनिरोध अवस्था प्राप्त करता है (१०) तदन तर सर्व कर्म क्षय होने से मुक्त अवस्था, सिद्ध अवस्था की उपलब्धि होती है। जीव सदा के लिये स सार प्रप च से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार एक बीज वपन करने से क्रमशः वृक्ष होकर श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है उसी तरह स तदर्शन, सत्स ग जीव को मुक्ति फल तक पहुँचाने वाला होता है।

प्रश्न-१७ : गर्म पानी का द्रह या झरना कहाँ पर होता है ?

उत्तर- यहाँ पाँचवें उद्देशक में दर्शाया गया है कि राजगृही नगरी के बाहर वैभारगिरि के नजदीक **महातपोपतीर-प्रभव** नाम का एक झरना है। ५०० धनुष प्रमाण उसका पानी का प्रवाह निर तर पड रहा है। उसमें उष्ण योनिक पुद्गलों का जल रूप में चय उपचय होता है और नष्ट भी होते रहते हक्त। उष्णयोनिक पानी के जीव भी जन्मते और मरते रहते हक्त। इस तरह वह उष्णयोनिक जल उष्णयोनिक अप्काय जीवों से युक्त होने से सचित्त होता है। क्यों कि पानी के लिये प्रज्ञापना सूत्र में शीत उष्ण और शीतोष्ण तीन योनी बताई है।

अन्यतीर्थिक लोग इस झरने की जगह **द्रह** कहते हक्त और उसे ५०० धनुष की जगह अनेक योजन का बताते हक्त। वह उनका समझभ्रम मात्र है ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-६, ७ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-१८ : दस भवनपति देव क्या जमीन के अ दर रहते हक्त ? वे हमारी समभूमि से नीचे कितनी दूरी पर रहते हैं ?

उत्तर- दक्षिण दिशा में अस ख्य योजन अर्थात् अस ख्य द्वीप-समुद्र पार करके जाने पर अढणवर समुद्र आता है। उसमें ४२००० योजन जाने पर चमरेन्द्र का उत्पात पर्वत आता है। वह १०२२ योजन चौडा है। उसके बाद फिर दक्षिण में ६,५५,३५,५०,००० छ अरब ५५ करोड ३५ लाख पचास हजार योजन जाने पर समुद्र के बीच से नीचे जाने का मार्ग आता है। उस मार्ग से ४०,००० चालीस हजार योजन नीचे जाने पर चमरेन्द्र की चमरच चा राजधानी है अर्थात् भवनपति के असुरकुमार जाति के देवों के भवनावास हक्त। मेढ पर्वत की सीध से दक्षिण दिशा में चमरेन्द्र के और मेढ से उत्तर दिशा में बलीन्द्र के भवनावास है।

तात्पर्य यह है कि असुरकुमार जाति के भवनपति देवों का देवालय समभूमि से चालीस हजार योजन नीचे प्रथम नरक के तीसरे पाथडे को पार करने के बाद तीसरे आँतरे के आधे करीब जाने पर आते हक्त। फिर क्रमशः प्रत्येक आँतरे में नागकुमार, सुवर्णकुमार आदि एक-एक भवनपति हक्त। इस प्रकार तीसरे आँतरे से बारहवें आँतरे तक के १० आँतरों में असुरकुमार आदि १० भवनपति के भवनावास आये हक्त।

इस तरह असुरकुमार प्रथम नरक के तीसरे आँतरे में, समभूमि से ४० हजार योजन नीचे हक्त और दसवें स्तनितकुमार के भवनावास बारहवें आँतरे में समभूमि से १,७०,००० एक लाख सित्तर हजार योजन करीब नीचे है। अढणवर समुद्र में जो नीचे जाने का मार्ग है वह भी एक लाख सित्तर हजार योजन नीचे तक है। जिसमें से दसों जाति के भवनपति अपने-अपने भवनावास से तिर्छालोक में आ जा सकते हक्त। यह मार्ग अ धकारमय गुफा सरीखा है कि तु देवों के शरीर आदि का प्रकाश होने से उन्हें जाने-आने में असुविधा नहीं होती है।

प्रथम नरक रत्नप्रभा का पृथ्वीपिंड १ लाख अस्सी हजार योजन का जाडा है इसमें प्रथम नरक के १३ पाथडे और १२ आँतरे है । पाथडे ३००० तीन हजार योजन के हक्त और आँतरे सभी ११ हजार साधिक योजन के हक्त । १३ पाथडों में नारकियों के नरकावास हक्त और १० आँतरों में भवनपतियों के भवनावास हक्त। उपर के दो आँतरों में भवनपति नहीं । १२-२=१० नीचे के आँतरों में १० भवनपति हक्त ।॥ उद्देशक-८ स पूर्ण ॥ उद्देशक-९ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-१९ : अस्तिकाय शब्द का क्या अर्थ है और प चास्तिकाय के विषय में यहाँ क्या समझाया है ?

उत्तर- काय=प्रदेशों का समूह, पिंड; अस्ति=तीनों काल अस्तित्व रूप में रहने वाले । इस प्रकार अस्तिकाय=त्रिकाल शाक्तत अनेक अस ख्य या अन त प्रदेशों का समूह ।

प्रस्तुत उद्देशक-१० में पाँच अस्तिकायों के विषय में समझाया गया है- (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) जीवास्तिकाय (५) पुद्‌गलास्तिकाय ।

(१) धर्मास्तिकाय- द्रव्य से स पूर्ण एक स्क ध रूप है, जो क्षेत्र से स पूर्ण लोकप्रमाण है। इसके कोई ख ड विभाजन नहीं होते हक्त । इनके देश और प्रदेश का जो भी अस्तित्व है वह स्क ध के साथ ही होता है । तीनों काल में धर्मास्तिकाय इसी रूप में था, है और रहेगा अत: शाक्तत है । भाव से धर्मास्तिकाय में वर्ण,ग ध,रस,स्पर्श नहीं है, यह अरूपी अजीव द्रव्य है । धर्मास्तिकाय का गुण **गतिसहाय** है अर्थात् यह जीव और पुद्‌गल द्रव्यों को लोक में गति करने में सहायक होता है । जैसे, मछली को गति करने में जल तथा ट्रेन को गति करने में पटरी मदद रूप बनते हक्त, उस जल और पटरी के बिना मछली और ट्रेन का चलना स भव नहीं है वैसे ही धर्मास्तिकाय समस्त लोक में होने से जीव और पुद्‌गलों का गतिमान होना स भव बनता है ।

धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण होने से अस ख्य प्रदेशात्मक एक स्क ध द्रव्य है । द्वीप, समुद्र, देवलोक, सिद्धसिला, सात नरक के पृथ्वीपिंड, घनोदधि, घनवात, तनुवात ये सभी धर्मास्तिकाय स्क ध के अस ख्यातवें

भाग रूप हक्त । सातों नरक के नीचे के प्रत्येक आकाशा तर अतिविशाल होने से धर्मास्तिकाय के स ख्यातवें भाग रूप कहे गये हक्त ।

अधोलोक धर्मास्तिकाय से साधिक अर्धभाग रूप है । ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय से देशोन अर्धभाग रूप है और तिरछा लोक धर्मास्तिकाय से अस ख्यातवें भाग प्रमाण है । उपर से नीचे १४ राजलोक प्रमाण में लोक का **मध्य** प्रथम नरक के आकाशा तर में होता है और अधोलोक तो मेढपर्वत की समभूमि से ९०० योजन नीचे जाने पर वहाँ से प्रार भ हो जाता है ।

(२) अधर्मास्तिकाय- इसका स पूर्ण वर्णन धर्मास्तिकाय के समान है कि तु **गुण** से 'स्थिति सहाय' गुण कहना । जिस तरह पथिक को मार्ग में वृक्ष की छाया ठहरने में मददरूप होती है उसी तरह जीव और पुद्‌गल को स्थित होने में अधर्मास्तिकाय सहायभूत बनती है ।

(३) आकाशास्तिकाय- यह भी धर्मास्तिकाय के समान एक द्रव्य रूप ही है विशेषता इसमें यह है कि क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण है, अन तप्रदेशी एक द्रव्य है । अपेक्षा मात्र से लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसा दो विभाग कल्पित किये गये हक्त कि तु लोक और अलोक दोनों का स लग्न आकाश एक ही है अत: वास्तव में आकाशास्तिकाय अन त प्रदेशी एक द्रव्य स्वीकार किया गया है ।

लोकाकाश में जीव, जीव का देश, जीव का प्रदेश, अजीव, अजीव देश, अजीव प्रदेश भी होते हक्त । एकेन्द्रिय आदि अनिन्द्रिय पर्यंत भी होते हक्त । अजीव में (१) पुद्‌गलद्रव्य के स्क ध, देश, प्रदेश, परमाणु भी होते हक्त । (२) धर्मास्तिकाय रूप अजीव अख ड द्रव्य और उसके प्रदेश होते हक्त । इसी तरह अधर्मास्तिकाय के दो भेद(अख ड द्रव्य और प्रदेश) एव काल द्रव्य लोकाकाश में होते हक्त। अलोकाकाश में ये उपरोक्त जीव या अजीव कुछ भी नहीं होते हक्त ।

(४) जीवास्तिकाय- **द्रव्य** से अन तजीव द्रव्य, **क्षेत्र** से लोकप्रमाण, काल से सदा शाक्तत है, भाव से वर्णादि रहित अरूपी है । एक जीव अस ख्यप्रदेशी है, अन त जीव द्रव्य मिलकर स पूर्ण जीवास्तिकाय अन त प्रदेशी है, स पूर्ण लोक में है, अलोक में नहीं है । जीव अपने उत्थान, कर्म,

बल, वीर्य, पराक्रम से, जीवत्व रूप से अपनी पहिचान कराने वाला है । अपने स्वरूप को, चेतना लक्षण को प्रदर्शित करता है तथा ५ ज्ञान ३ अज्ञान ४ दर्शन इन १२ उपयोग में, इनकी पर्यायों में उपयोग युक्त होता है । इस उपयोग गुण से भी जीव पहिचाना जाता है । अत: जीव को **गुण** से उपयोग गुण वाला एव चेतना लक्षण वाला कहा गया है । अजीव पुद्‌गल द्रव्य में ये लक्षण नहीं होते हक्त । जीवों के शरीर अजीव पुद्‌गल रूप हक्त । उनमें उपयोग गुण और चेतना गुण जो दिखता है वह अरूपी जीव उस पुद्‌गलों को ग्रहण करके स्वय उसमें स्थित रहता है तभी जीव के वे चेतनत्व और उपयोग गुण पुद्‌गल रूप शरीरों में दिखते हक्त । जब उनमें से जीव द्रव्य निकल जाता है, आयुष्य पूर्ण कर जीव अन्यत्र चला जाता है तो वह जीव रहित शरीर चेतनत्व गुण से रहित हो जाता है । अत: स सार में जीव और पुद्‌गल दो ही द्रव्य स्थूल रूप से दिखते हक्त ।

(५) पुद्‌गलास्तिकाय– द्रव्य से अन त पुद्‌गल द्रव्य है। जिसमें परमाणु, द्विप्रदेशी, तीन प्रदेशी यावत् अन तप्रदेशी पुद्‌गल भी अन त-अन त है । अत: स पूर्ण पुद्‌गलास्तिकाय भी अन त द्रव्य रूप है । **क्षेत्र** से यह भी लोकप्रमाण तथा **काल** से सदाकाल शाश्वत है । प्रदेश और स्क ध जुडते, बिखरते रहते हक्त तो भी वह पुद्‌गल द्रव्य रूप में शाश्वत रहता ही है । भाव से यह पुद्‌गल द्रव्य रूपी है; इसमें वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श होते हक्त, परमाणु से लेकर अन तप्रदेशी आदि सभी में हीनाधिक वर्णादि होते हक्त । जघन्य १ वर्ण १ ग ध १ रस और दो स्पर्श एक परमाणु में होते हक्त । उत्कृष्ट ५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस, ८ स्पर्श, ये २० बोल अन त प्रदेशी बादर स्क ध में होते हक्त । **गुण से** ये पुद्‌गल बनते–बिखरते हक्त, एक रूप में से नष्ट होकर अन्य रूप में बदलते रहते हक्त । रूपी होने से पुद्‌गल, जीवों द्वारा ग्रहण किये जाते हक्त और छोडे जाते हक्त । अत: पुद्‌गलास्तिकाय **ग्रहण गुण वाला** या बनने बिखरने के गुण वाला कहा जाता है । इसे समझने के लिये बादलों के बनने, बिखरने, मिलने का दृष्टा त दिया जाता है । ॥ उद्देशक–१० स पूर्ण ॥

शतक–३ : उद्देशक–१ से १०

प्रश्न–१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– इसमें दस उद्देशक हक्त । आठ उद्देशकों में अपना परिपूर्ण विषय है, अ तिम दो उद्देशकों में स क्षिप्त अतिदेशात्मक(भलावण वाला) पाठ है । शतक के प्रार भ में विषय सूचक या उद्देशक नाम सूचक एक गाथा है तदनुसार विषय इस प्रकार है–

(१) विकुर्वणा– प्रथम उद्देशक में देवों की ऋद्धि और वैक्रिय सामर्थ्य का वर्णन है ।

(२) चमर– दूसरे उद्देशक में चमरेन्द्र का विस्तृत वर्णन है ।

(३) क्रिया– इस उद्देशक में कायिकी आदि ५ क्रियाओं का स्वरूप, सक प=सयोगी, सकषायी, योग–कषाय जन्य आत्म स्प दन वालों की अमुक्ति, प्रमत्त-अप्रमत्त की स्थिति आदि के स ब ध में छट्ठे गणधर के म डितपुत्र प्रश्न एव प्रभू महावीर के उत्तर हक्त ।

(४) यान– इस उद्देशक में यान रूप से जाते हुए देव-देवियों को भावितात्मा अणगार का जानना–देखना एव वृक्ष के विभागों का जानना–देखना वर्णित है तथा वायुकाय की विक्रिया एव गमन, बादलों का परिणमन एव गमन, अणगार की विकुर्वणा इत्यादि विषयों का वर्णन है ।

(५) स्त्री– अणगार के द्वारा स्त्री आदि रूपों की विकुर्वणा वगैरह का वर्णन इस उद्देशक में है ।

(६) नगर– इस उद्देशक में अणगार द्वारा नगरी की विकुर्वणा ए व जानने–देखने का वर्णन है । भावितात्मा अणगार की विकुर्वणा, स्वरूप एव चमरेन्द्र के आत्मरक्षक २,५६,००० देवों का राजप्रश्नीय सूत्र की भलावण युक्त स क्षिप्त वर्णन है ।

(७) लोकपाल– इसमें प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र के ४ लोकपालों के अधिकार, कर्तव्य आदि स ब धी विस्तृत वर्णन है ।

(८) अधिपति– इस में देवों के अधिपतिओं का वर्णन है ।

(९) इन्द्रिय– इस उद्देशक में पाँच इन्द्रियों के विषयों का स क्षिप्त वर्णन जीवाभिगम सूत्र की भलावण(निर्देश) वाला है ।

(१०) परिषद– इस उद्देशक में इन्द्रों की परिषद स ब धी स क्षिप्त कथन है।

प्रश्न–२ : चमरेन्द्र की वैक्रिय शक्ति एव ऋद्धि कैसी होती है?

उत्तर– दस भवनपतियों में प्रथम असुरकुमार जाति के दक्षिण दिशा के इन्द्र चमरेन्द्र है । उसकी एक सागरोपम की स्थिति है । उसके ३४ लाख भवनावास उसकी मालिकी में हक्त । ६४ हजार सामानिक एव २,५६,००० उसके आत्मरक्षक देव हक्त । ५ अग्रमहिषी देवियाँ है और वह इन्द्र वैक्रिय के हजारों लाखों रूपों से पूरा ज बूद्वीप जितना क्षेत्र भर सकता है ।उसकी क्षमता तो अस ख्य ज बूद्वीप जितने क्षेत्र वैक्रिय रूपों से भरने की है पर तु ऐसा कभी क्रियान्वित नहीं होता है ।

बलीन्द्र उत्तर दिशा के असुरकुमार जाति के इन्द्र है । उसके ३० लाख भवनावास, ६० हजार सामानिक, २ लाख ४० हजार आत्मरक्षक देव और पाँच अग्रमहिषिया है । वैक्रिय शक्ति से वह साधिक ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र को वैक्रिय रूपों से भर सकता है और उसकी क्षमता चमरेन्द्र के सदृश अस ख्य द्वीप–समुद्र जितने क्षेत्र को भरने की है ।

इसीतरह नागकुमार आदि नवनिकाय के देवेन्द्रों की तथा १६ व्य तरेन्द्रों की और सूर्य–चन्द्र दो ज्योतिषेन्द्रों की वैक्रिय क्षमता होती है अर्थात् दक्षिण दिशा के इन्द्र एक ज बूद्वीप प्रमाण और उत्तर दिशा के इन्द्र साधिक ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र को वैक्रिय रूपों से भर सकते हक्त और इन नागकुमार आदि सभी की क्षमता **स ख्याता** ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र को वैक्रिय रूपों से भरने की होती है किन्तु वैसा कभी क्रियान्वित नहीं होता है ।

ज्योतिषेन्द्र में सूर्य को दक्षिणी इन्द्रों के समान और चन्द्र को उत्तरी इन्द्रों के समान समझना । यहाँ विशेष बात यह ध्यान रखने की है कि सागरोपम की स्थिति वालों की अस ख्यद्वीप समुद्र प्रमाण क्षेत्र भरने की क्षमता होती है और पल्योपम की स्थिति वालों के स ख्याता द्वीपसमुद्र प्रमाण क्षेत्र भरने की क्षमता होती है । इस नियम अनुसार

असुरकुमार के सामानिक, त्रायत्रिंशक देवों की स्थिति सागरोपम की होने से इनकी अस ख्य ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र को वैक्रिय रूपों से भरने की क्षमता होती है । अग्रमहिषी देवियों अ ौर आत्मरक्षक देवों की पल्योपम रूप स्थिति होने से स ख्यात ज बूद्वीप प्रमाण क्षमता कहना ।

नवनिकाय, व्य तर, ज्योतिषी में इन्द्र आदि सभी की पल्योपम रूप स्थिति होने से उनमें स ख्याता रूप भरने की क्षमता होती है ।

दूसरे गणधर अग्निभूति ने दक्षिण के इन्द्रों की और सूर्य की पृच्छा करी और तीसरे गणधर वायुभूति अणगार ने उत्तर दिशा के इन्द्रों की एव चन्द्र की पृच्छा करी है ।

वैमानिक देवो में– शक्रेन्द्र और उनके सामानिक, अग्रमहिषी लोकपाल और त्रायत्रिंशक के दो ज बूद्वीप भरना कहना, ईशानेन्द्र में साधिक दो ज बूद्वीप कहना। तीसरे देवलोक में चार ज बूद्वीप, चौथे में साधिक चार ज बूद्वीप, पाँचवें में आठ ज बूद्वीप और छट्ठे में साधिक आठ ज बूद्वीप, सातवें देवलोक में १६ ज बूद्वीप और आठवें में साधिक १६ ज बूद्वीप, नौवें दसवें देवलोक में ३२ ज बूद्वीप और ग्यारहवें बारहवें देवलोक में साधिक ३२ ज बूद्वीप भर सकने का कहना । इनमें क्षमता की अपेक्षा देवी और आत्म रक्षक के स ख्याता ज बूद्वीप भरने का कहना, शेष सभी के लिये अस ख्य ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र भरने की क्षमता समझना ।

लोकपाल सभी के ४–४ होते हक्त, त्रायत्रिंशक ३३ होते हक्त अग्रमहिषी दो देवलोक में है आगे नहीं है । सामानिक ८४,००० (चोरासी हजार) और आत्मरक्षक देव, सामानिक देवों से चार गुणे होने से ३ लाख ३६ हजार होते हक्त । ईशानेन्द्र के ८० हजार सामानिक और ३ लाख २० हजार आत्मरक्षक देव होते हक्त । तीसरे देवलोक से १२वें देवलोक तक लोकपालों की स्थिति सागरोपम में होने से अस ख्य ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र भरने की वैक्रिय क्षमता है ।

प्रश्न–३ : प्रस्तुत में तिष्यक अणगार और कुढदत्त अणगार का क्या वर्णन है ?

उत्तर– ये दोनों अणगार भगवान महावीर स्वामी के अ तेवासी शिष्य

थे । तिष्यक अणगार ने ८ वर्ष बेले-बेले पारणा किया, ३० दिन का स थारा किया । आयुष्य पूर्ण करके प्रथम देवलोक में सामानिक देव बने । इन्द्र के जैसी उसकी ऋद्धि है पर तु शक्रेन्द्र ३२ लाख विमानों का स्वामी है और सामानिक देव अपने एक विमान का स्वामी होता है । इसके भी ४००० सामानिक देव, ४ अग्रमहिषी सपरिवार, सात अनिका, सात अनिकाधिपति, १६ हजार आत्मरक्षक देव, तीन पर्षदा होती है । स्थिति और वैक्रिय शक्ति इन्द्र के समान होती है ।

कुढदत अणगार भी भगवान महावीर स्वामी का अ तेवासी शिष्य था। इसका स पूर्ण वर्णन तिष्यक अणगार के समान समझना । विशेषता यह है कि कुढदत्त अणगार अट्ठम के पारणे अट्ठम तथा पारणे में आय बिल तप करता था । वह कुल ६ महीने की दीक्षा पर्याय का पालन कर उसमें भी १५ दिन का स थारा ३० भक्त का अनशन पूर्ण करके ईशान देवलोक में सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुआ । देव की स पूर्ण ऋद्धि तिष्यक अणगार के समान समझना । वैक्रिय से साधिक दो ज बूद्वीप प्रमाण क्षेत्र भरना कहना ।

प्रथम, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, नौवाँ, दसवाँ देवलोक स ब धी पृच्छा द्वितीय गणधर ने और शेष देवलोक के स ब ध में पृच्छा तीसरे गणधर ने करी थी । यह पृच्छा मोका नामकी नगरी में की गई थी।

प्रश्न-४ : ईशानेन्द्र पूर्वभव में कौन था और उसने क्या साधना करी थी ?

उत्तर- दूसरे देवलोक का इन्द्र ईशानेन्द्र पूर्व भव में तामली तापस था । उसने तापसी दीक्षा ली थी । उसका कथानक इस प्रकार है-

ताम्रलिप्ति नगरी में मौर्यव श में उत्पन्न मौर्यपुत्र **तामली** नामक गाथापति शेठ रहता था । वह धनाढ्य एव ऋद्धि स पन्न था और अनेक मनुष्यों द्वारा सन्मानित था । एक बार रात्रि में उसे विचार हुआ कि पुण्य से प्राप्त इस सामग्री का एका त भोग करके एक मात्र क्षय करना ही उपयुक्त नहीं है । मुझे पुण्य रहते एव समय रहते कुछ आत्मसाधना करनी चाहिये । तदनुसार उसने **प्राणामा प्रव्रज्या** ग्रहण करने का निर्णय किया । लौकिक व्यवहार के पालने हेतु अनेक स्वजन-परिजनों को निम त्रित करके, भोजनोपरा त सब को स बोधित सूचित कर, सत्कारित

सन्मानित करके, पुत्रों को कुटु ब का भार सोंपकर, फिर सभी की सम्मति, स्वीकृति लेकर, प्राणामा प्रव्रज्या स्वीकार की । दीक्षा ली जब से बेले-बेले पारणा करने का जीवन भर का अभिग्रह- नियम किया । पारणे में तामली तापस काष्ट पात्र में शुद्ध भोजन भिक्षाचरी से प्राप्त कर उसे जल में २१ बार धोकर नीरस बनाकर आहार करते थे । इस प्रकार की चर्या का पालन तामली तापसने ६०,००० साठ हजार वर्ष पर्यंत निर तर किया फिर दो महीने का पादपोपगमन स थारा उसी ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर किया ।

प्राणामा प्रव्रज्या- इस प्रव्रज्या वाला देव मानव दानव पशुपक्षी जिस किसी को उपर, नीचे या तिरछे जहाँ देखे वहीं उनको अत्य त विनयपूर्वक प्रणाम करता है । जो भी सामने मिले उसे भी प्रणाम करता है ।

साठ हजार वर्ष तक इस प्रकार का विनय, बेले-बेले तप तथा पारणे में २१ बार जल से धोया हुआ आहार अर्थात् उच्चकोटि के आय बिल आहार से उसने अपने औदारिक शरीर को तथा कार्मण शरीर को अत्य त कृश कर दिया, हाडपि जर जैसा शरीर बन जाने पर भी समय रहते अनशन की आराधना प्रार भ कर दी ।

उस समय असुरकुमार जाति के भवनपति देवों की बलिच चा राजधानी, इन्द्र (बलीन्द्र)से खाली थी अर्थात् वहाँ के इन्द्र का च्यवन हो चुका था, नया इन्द्र जन्मा नहीं था । वहाँ के अनेक देव-देवियों ने उपयोग लगाकर तामली तापस को स थारे में देखा और अनेक देव-देवियों ने तामली तापस के पास आकर विनयपूर्वक निवेदन किया कि आप नियाणा करके हमारी राजधानी में इन्द्र रूप में उत्पन्न हो जाओ । अनेक प्रयत्न करने पर भी वह तापस उनके किसी प्रलोभन में नहीं आया और निष्काम नियाणा रहित साधना स थारा पूर्ण करके दूसरे देवलोक में ईशानेन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ ।

बलिच चा राजधानी के देव-देवियों ने जब तामली तापस को कालधर्म प्राप्त हुआ एव ईशानेन्द्र रूपमें उत्पन्न हुआ जाना-देखा तो अत्य त कुपित होकर मनुष्य लोक में आकर उसके शरीर की कदर्थना करी।मूँज की रस्सी बा ये पाँव में बा धकर घसीटते हुए, तिरस्कारात्मक

घोषणा करते हुए नगरी में घूमाया और अ त में गाँव के बाहर एक तरफ फेंक कर चले गये । इस हकीगत को अपने देवों द्वारा जानकर ईशानेन्द्र ने क्रोधित होकर अपने से नीचे एकदम सीध में रही बलिच चा राजधानी को अपनी तेजोलेश्या युक्त एकाग्र दृष्टि से देखा । जिससे वह बलिच चा राजधानी ईशानेन्द्र के दिव्य प्रभाव से अ गारा समान लाल होकर तपतपायमान होने लगी। वहाँ के देव-देवी हेरान परेशान होकर घबराने लगे, इधर उधर भागने लगे । आखिर असह्य स्थिति होने पर एव ईशानेन्द्र के क्रोध प्रभाव को समझकर नम्र बनकर अनुनय विनय करते हुए ईशानेन्द्र से क्षमायाचना करी एव आगे से ऐसा कभी नहीं करने का स कल्प लिया । तब ईशानेन्द्र ने अपने दिव्य प्रभाव से तेजोलेश्या को स हरित कर लिया ।

इसी प्रस ग से ईशानेन्द्र ने तिरछा लोक में अपनी साधना नगरी ताम्रलिप्ती को एव राजगृही नगरी में विराजित श्रमण भगवान महावीर स्वामी को देखा । ईशानेन्द्र प्रभु के अतिशय से प्रभावित होकर अपनी ऋद्धि सहित भगवान के दर्शन करने, पर्युपासना करने आया । भगवान के समवसरण में **सूर्याभदेव** के समान ३२ प्रकार के नाटक दिखा कर चला गया । तब गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर उत्तर में प्रभुने इस उपरोक्त घटना का दिगदर्शन किया ।

प्रश्न–५ : तेजोलेश्या लब्धि क्या है और इसका प्रयोग किस तरह किया जाता हे ?

उत्तर– यह सभी देवों को जन्मजात होती है । कई साधकों को तपस्या एव आतापना आदि साधना से उत्पन्न होती है । इस लब्धि का प्रयोग, दृष्टि से देखने मात्र से ही हो जाता है यथा– वेश्यायन बाल तपस्वी द्वारा गोशालक पर तेजो लब्धि का प्रयोग दृष्टि मात्र से किया गया था। गोशालक ने भी दो अणगारों को ऐसे ही दृष्टि प्रयोग से भगवान के समवसरण में परितापित एव भस्म किया था । कभी विधि सहित तेजस समुद्घात करके, सात–आठ कदम पीछे जाकर, पूरी शक्ति के साथ यह लेश्या छोडी जाती है। यथा– गोशालक ने भगवान महावीर पर इसी विधि से फेंकी थी ।

तेजोलेश्या नाम की यह एक लब्धि है, जिसका प्रयोग **तैजस**

समुद्घात के द्वारा होता है । इस **तेजोलेश्या लब्धि** को स क्षेप में **तेजोलब्धि** भी कह दिया जाता है ।

प्रश्न–६ : ईशानेन्द्र पूर्वभव में तामली तापस था तो वह भगवान महावीर के दर्शन करने राजगृही में कैसे आया ?

उत्तर– तापस के भव में बेले-बेले पारणा और पारणे में २१ बार आहार को धोकर खाना तथा दो महीने का पादपोपमगमन स थारा, उस में भी बलिच चा राजधानी के देव–देवीयों के प्रलोभन में नहीं आना एव नियाणा नहीं करना; ऐसी विकट तपमय आदर्श साधना के प्रभाव से वह अत्य त हलुकर्मी बन गया था । फिर देवगति स्वभाव से विशिष्ट अवधिज्ञान के कारण अपनी नगरी को तथा अपने शरीर को देखने में उपयोग लगाने पर महावीर स्वामी को भी देखा । उनके अतिशयों से तथा साधु स पदा, आचार स पदा आदि से प्रभावित मानस से वह शुभ चि तन, शुभ अध्यवसायों से देवगति में भी सम्यग्दृष्टि बन सकता है और सम्यग्दृष्टि हो जाने पर भगवान के दर्शन करने जाने का भाव सहज हो सकता है ।

पर परा में ऐसा भी माना जाता है कि पादपोपगमन स थारे के समय पिछले दिनों कभी उसने उधर से जाते-आते ईर्या समिति युक्त एकाग्र दृष्टि से चलते जैन श्रमणों को देखा था, तब अनुप्रेक्षा करते हुए उसे जैन आचार पर सम्यग्श्रद्धा उत्पन्न होने से (त्यागी तपस्वी हलुकर्मी तो था ही) सहज भावों से समकित की प्राप्ति हो गई थी और उसी परिणामों में स थारे को पूर्ण कर सम्यग्दृष्टि सहित ईशानेन्द्र बना था ।

सार यह है कि वह भगवान के पास भक्ति से दर्शन करने गया था और भगवान को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वीकार करते हुए गौतमादि को अपनी ऋद्धि ३२ नाटक द्वारा बताई और भक्ति पूर्वक व दन करके चला गया । इस वर्णन से भी उस इन्द्र का उस समय सम्यग्दृष्टि होना स्पष्ट होता है । ग्र थों में यह भी प्रसिद्ध है कि वर्तमान के ६४ ही इन्द्र सम्यग्दृष्टि हक्त तथा एक मनुष्य भव करके मोक्ष जाने वाले हक्त । अत: दानामा प्रव्रज्या की पालना करके इन्द्र बना हुआ वह चमरेन्द्र भी सम्यग्दृष्टि है तथा एक भव करके मोक्ष जाने वाला है । प्रत्येक जीव

ने ६४ इन्द्र रूप में अन त भव किये हक्त इस कथन अनुसार कोई भी इन्द्र कभी भी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकार के हो सकते हक्त । केवल वर्तमान के ६४ इन्द्रों को सम्यग्दृष्टि एव एक भवावशेषी मोक्षगामी मानने की पर परा है ।

प्रश्न-७ : पहले दूसरे और तीसरे देवलोक के इन्द्रों के आपसी व्यवहार आदि किस प्रकार होते हक्त ?

उत्तर- पहले दूसरे देवलोक की समभूमि-पृथ्वीपिंड एक ही है, विमानों की ऊँचाई भी समान कही गई है । तथापि जैसे अपने एक ही हाथ की हथेली की सतह ऊँची-नीची होती है उसी प्रकार दोनों देवलोकों की भूमि कुछ ऊँची-नीची हो सकती है एव विमान भी जिससे तनिक ऊँचे नीचे हो सकते हक्त ।

दोनों देवलोक के इन्द्रों का आपसी व्यवहार छोटे-बडे मित्र के परस्पर के व्यवहार समान होता है । शक्रेन्द्र छोटा और ईशानेन्द्र बडा गिना जाता है । क्यों कि स्थिति, वैक्रिय शक्ति भी कुछ ईशानेन्द्र की साधिक कही गई हक्त ।

दोनों आमने-सामने मिल सकते हक्त, देख सकते हक्त, आलाप-स लाप भी कर सकते हक्त । कोई प्रयोजन होने पर वे एक दूसरे के पास जाकर स बोधनपूर्वक वार्ता कर सकते हक्त । यथा- 'दक्षिणार्ध लोकाधिपति शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराज !' अथवा 'उत्तरार्ध लोकाधिपति ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराज !' यह स बोधन नाम होता है । कभी दोनों में विमान सत्ता आदि को लेकर विवाद भी हो सकता है एव स्वत: समाप्त भी हो जाता है। यदि विवाद समाप्त न हो तो शक्रेन्द्र, तीसरे देवलोक के इन्द्र को याद करता है, मन से ही बुलाता है तो शीघ्र ही वह आ जाता है ।वह जो भी फैसला देता है उसे दोनों स्वीकार कर लेते हक्त ।

तीसरे देवलोक के इन्द्र सनत्कुमारेन्द्र के परिचय में कहा गया है कि यह साधु-साध्वियों का परमभक्त परमहितैषी है, भवी, सम्यग्दृष्टि, परित्त स सारी, एक भवावशेषी है । महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म धारण कर स यम-तप द्वारा मुक्ति प्राप्त करेगा ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-८ : असुरकुमारेन्द्र की सामर्थ्य क्या बताया गया है ?

उत्तर- असुरकुमार देव नीचे सातवीं नरक तक जाने का सामर्थ्य धराते हक्त कि तु जाते है तीसरी नरक तक; अपने मित्र या शत्रु नारकी जीव को सुख या दु:ख पहुँचाने के लिये ।

तिरछे अस ख्य-द्वीपसमुद्र पर्यंत जाने की क्षमता है पर तु जाते न दीश्वर द्वीप पर्यंत तीनों दिशा में ।दक्षिण में तो खुद का तिरछेलोक में आवागमन का मार्ग अस ख्यातवें अढणवर समुद्र में ही है । वहाँ से होकर ढाई द्वीप में तीर्थंकरों के जन्मादि पर आते ही रहते हक्त ।

उपर प्रथम देवलोक तक गये हक्त जाते हक्त; क्षमता १२ वें देव लोक तक जाने की होती है । पहले देवलोक से इनका भव प्रत्ययिक जाति वैर होता है । शक्रेन्द्र के आत्मरक्षक देवों को त्रासित करते रहते हक्त । वहाँ से छोटे-मोटे सामान्य रत्न चुराकर ले आते हक्त । जब शक्रेन्द्र को इनकी हरकतों की जानकारी होती है तब वह इन्हें शारीरिक कष्ट देता है । कभी पहले देवलोक की देवियों को भी उठाकर ला सकते हक्त और यहाँ लाने के बाद देवी इच्छे तो उसके साथ परिचारणा भी कर सकते हक्त । बलात्कार नहीं कर सकते ।

कभी कोई असुरकुमारेन्द्र साक्षात् शक्रेन्द्र की आशातना-उपद्रव करने जाता है । तब वह अरिह त या अरिह त श्रमण की निश्रा आल बन लेकर जाता है । वह लोक आश्चर्यभूत घटना गिनी जाती है । वर्तमान चमरेंद्र असुरकुमार भगवान महावीर की निश्रा लेकर उपद्रवार्थ प्रथम देवलोक में गया था ।

जाति वैर के सिवाय भी जन्म समय और च्यवन समय के निकट असुरकुमार देव अपनी ऋद्धि शक्ति बताने और शक्रेन्द्र की ऋद्धि शक्ति देखने के लिये कुतूहल से जाते हक्त । सागरोपम के आसपास की स्थिति वाले देव का ही जाना समझना चाहिये । सामान्य लघु स्थिति वाला देव इतना उपर नहीं जा सकता है ।

प्रश्न-९ : चमरेन्द्र पूर्वभव में कौन था ? उसने क्या साधना की थी और प्रभु की भक्ति प्रदर्शित करने का क्या हेतु था?

उत्तर- भरत क्षेत्र के विंध्याचल पर्वत की तलेटी में 'बेभेल' नामक सन्निवेश था । वहाँ पूरण नामक गाथापति रहता था । उसने भी

'तामली' के समान समय पर साधना कर लेने का निर्णय करके **दानामा** प्रव्रज्या अ गीकार करी । चौमुखी काष्ट पात्र में भिक्षा ग्रहण करता था । पात्र के पहले खाने में आया आहार पथिकों को, दूसरे खाने का आहार कौवे-कुत्ते आदि को, तीसरे खाने में प्राप्त आहार जलचर मच्छ-कच्छ को देकर चौथे खाने में प्राप्त आहार से बेले-बेले निर तर पारणा करता था । १२ वर्ष तक इस प्रकार तपस्या करके शरीर के अत्यधिक कृश हो जाने पर उसी नगर के बाहर पादपोपगमन स थारा धारण किया । एक महीने के स थारे से काल करके चमरच चा राजधानी में चमरेंद्र रूप में उत्पन्न हुआ ।

पर्याप्त होते ही स्वाभाविक अवधिज्ञान के उपयोग से उपर सीध में शक्रेन्द्र को देखा, अज्ञानवश कोपायमान हुआ और सामानिक देवों को स बोधन कर पूछा- यह मेरे उपर कौन बैठा है ? सामानिक देवों ने उसे जय-विजय के शब्दों से वधाया और कहा कि यह महान ऋद्धिस पन्न प्रथम देवलोक का इन्द्र है । ऐसा सुनकर वह क्रोध मे अत्यधिक लाल-पीला हो गया । स्वयं ही शक्रेन्द्र की आशातना करने जाने का निर्णय किया । अवधिज्ञान से प्रभू महावीर को ध्यानस्थ देखा और सोचा कि भगवान की शरण लेकर जाना ही उचित होगा । अपनी शय्या से उठकर खडा हुआ देवदूष्य वस्त्र का परिधान करके शस्त्रागार से **परिघरत्न** नामक शस्त्र लेकर अकेला ही चमरच चा राजधानी से निकला, निकलकर तिरछालोक में अपने उत्पात पर्वत पर आकर वैक्रिय रूप बनाकर सु सुमार नगर के बाहर उद्यान में जहाँ पर भगवान अट्ठम भक्त युक्त १२वीं भिक्षुपडिमा धारण किये हुए ध्यानस्थ खडे थे वहाँ पर आया और भगवान को व दन नमस्कार करके इस प्रकार बोला कि हे भगवन्! मक्त आपकी निश्रा लेकर शक्रेन्द्र की आशातना करने जा रहा हूँ । ऐसा बोलकर वहाँ से उत्तरपूर्व में कुछ दूर जाकर आकाश में एक लाख योजन का विकराल शरीर बनाया और ज्योतिषी विमानों को इधर उधर हटाता हुआ, आत क मचाता हुआ प्रथम देवलोक की सुधर्मा सभा तक पहुँच गया । देवलोक की इन्द्र कील को अपने **परिघरत्न** शस्त्र से प्रताडित करके इस प्रकार बोला- कहाँ है शक्रेन्द्र ? कहाँ है उसके सामानिक देव ? कहाँ है उसके आत्मरक्षक देव और कहाँ है उसकी

अप्सराएँ ? आज में शक्रेन्द्र का हनन कढ गा और सब को मेरे वश में अधीनस्थ कढ गा, ऐसा बोलते हुए वह शक्रेन्द्र को अत्य त अनिष्ट, अका त, अप्रिय, अमनोज्ञ, अशुभ शब्दों से तिरस्कृत करने लगा । तब शक्रेन्द्र ने कोपित होकर चमरेन्द्र को स बोधन करके अपमान सूचक शब्द प्रयोग करके सि हासन पर बैठे-बैठे ही अपने **वज्र** शस्त्र को ग्रहण कर चमरेन्द्र को मारने के लिये फेंक दिया । उस वज्र से हजारों चिनगारियाँ ज्वालाएँ निकल रही थी । जिससे वह वज्र आँखों को भी चकाचौंध कर दे वैसा महाभय कर, त्रासजनक दिखता था ।

उसे देखते ही चमरेन्द्र का घम ड-गुस्सा नष्ट हो गया वह तो डरकर उलटा शिर करके भागा अर्थात् नीचे शिर उपर पाँव करके तत्काल भगवान की शरण में पहुँच गया और **'भगवान आप का शरणा'** ऐसा बोल कर भगवान के दोनों पाँवों के बीच में छोटा रूप बनाकर छुप गया । नीचे आने में उसका स्वस्थान होने से उसकी तीव्र गति होना स्वाभाविक है । शक्रेन्द्र और उसका शस्त्र उसे पहुँच नहीं सका । भगवान महावीर की शरण लेकर आया ऐसा मालुम पडने पर शक्रेन्द्र भी शस्त्र को पकडने के लिये तत्काल चला और भगवान के मस्तक से चार अ गुल दूर रहे वज्र को शक्रेन्द्र ने पकड लिया । तब शक्रेन्द्र की मुट्ठी की हवा से भगवान के मस्तक के बाल मात्र प्रक पित हुए ।

शक्रेन्द्र ने विनयपूर्वक भगवान से हकीगत निवेदन कर क्षमा मा गी फिर कुछ दूर जाकर भूमि को तीनबार बाये पाँव से आस्फालन करके, चमरेन्द्र को स बोधन करके कहा कि 'भगवान के प्रभाव से तुम्हें छोडता हूँ, अब तुम्हें मुझ से कोई भय नहीं है' ऐसा कहकर शक्रेन्द्र चला गया और चमरेन्द्र भी शक्रेन्द्र से महान अपमानित बना हुआ चुपचाप चला गया । फिर अपनी रिद्धि सहित पुनः उसी स्थान पर आया और भगवान को भक्तिपूर्वक व दन नमस्कार किया । अपनी कृतज्ञता प्रगट करी, क्षमा याचना करी तथा ३२ प्रकार के नाटक दिखाकर चला गया ।

यह हकीगत-घटना भगवान ने गौतम स्वामी के पूछने पर निढपित की है और पूछने का कारण भी यही था कि उस समय भी

राजगृही नगरी में चमरेंद्र भगवान के दर्शन करने के लिये आया था एव गौतमादि अणगारों को अपनी ऋद्धि तथा ३२ प्रकार के नाटक दिखाकर चला गया था । इसी कारण से उसके जाने के बाद गौतम स्वामी ने उसका भूतकाल जानने की जिज्ञासा से प्रश्न किया था ।

उपर जाने में शक्रेन्द्र की गति तेज होती है चमरेन्द्र की कम। नीचे जाने में चमरेन्द्र की गति तेज और शक्रेन्द्र की कम होती है। वज्र की गति दोनों इन्द्रों से कम होती है नीचे-उपर जाने में ।

प्रश्न-१० : चमरेन्द्र के उपर देवलोक में जाने की घटना में अरिह त और भावितात्मा अणगार के शरण की बात कही है तो क्या म दिर मूर्ति की शरण भी ली जा सकती है ?

उत्तर- (१) कोई प्रति में **अरिह त चेइयाइ** पाठ भी है कि तु प्राचीन प्रतियों में वैसा पाठ नहीं है । (२) अरिह त और अणगार के लिये एक वचन का प्रयोग है तो अरिह त चैत्य के पाठ में बहुवचन का प्रयोग भी स देहोत्पत्ति का कारण है । (३) शरण अपने से बलवान की ली जाती है, म दिर मूर्ति तो अपना भी रक्षण नहीं कर सकती, वहाँ चोर चोरी कर जाते हक्त कभी सरकार भी जप्त कर लेती है।(४) कहीं कोई मूर्ति देवाधिष्ठित हो तो भी वे देव भूत या यक्ष, चमरेन्द्र के सामने तुच्छ होते हक्त और अरिह त सिद्ध तो उस मूर्ति में कभी वापिस आते ही नहीं है । अत: चमरेन्द्र को शक्रेन्द्र की आशातना करने में शरण तो शक्रेन्द्र से भी बलवान की चाहिये, वह मूर्ति में कभी भी स भव नहीं है । अत: अरिह त और भावितात्मा अणगार दो की शरण का पाठ ही उपयुक्त है । (५) शक्रेन्द्र ने वज्र फेंकने के बाद चि तन किया कि किसी की शरण बिना चमरेन्द्र नहीं आवे तो इस चि तन के पाठ में अरिह त और भावितात्मा अणगार दो ही शब्द सभी प्रतियों में है । तो चमरेन्द्र के शरण लेने के चि तन में मूर्ति का पाठ होना और शक्रेन्द्र के शरण के चि तन में बिना मूर्तिका पाठ होना भी स देह को प्रकट करता है । एक ही प्रकरण में दो प्रकार का पाठ उपयुक्त नहीं कहा जा सकता । **अरिह त चैत्य** शब्द जो भी प्रति में आये हक्त वे उचित नहीं है ऐसा मानना ही समाधानकारक है । अत: दो की शरण का पाठ ही स देह रहित और योग्य होने से स्वीकार्य है ॥ उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-११ : कायिकी आदि क्रियाओं का क्या स्वरूप हक्त ?

उत्तर- कर्मब ध के कारणभूत मन, वचन, काया की एव कषायों की प्रत्येक प्रवृत्ति को क्रिया कहा गया है । प्रस्तुत में ५ क्रियाओं का निरूपण भेद-प्रभेद करके किया गया है ।

(१) कायिकी क्रिया- काया-शरीर के निमित्त से होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया है । उसके दो प्रकार है- (१) अनुपरत कायिकी- यह कायास ब धी क्रिया के अत्याग से अविरति से जीवों को लगती है । (२) दुष्प्रयुक्त कायिकी- असावधानी, अविवेक से एव सावद्य प्रवृत्ति से शरीर द्वारा लगने वाली क्रिया ।

(२) अधिकरणिकी क्रिया- शरीर के अतिरिक्त अन्य साधन, उपकरण या शस्त्र आदि के निमित्त से होने वाली क्रिया अधिकरणिकी क्रिया है । इसके भी दो प्रकार है- (१) शस्त्र, उपकरण आदि के स योजन-प्रयोग से एव (२) उनके निष्पादन से होने वाली क्रिया ।

(३) प्राद्वेषिकी क्रिया- प्रद्वेष से अर्थात् कषाय के निमित्त से होने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी क्रिया है। इसके भी दो भेद है- (१) जीव पर द्वेष-कषाय करने से एव (२) अजीव पदार्थों पर कषाय करने से ।

(४) पारितापनिकी क्रिया- जीवों को कष्ट दु:ख पहुँचाने से लगने वाली क्रिया । इसके दो भेद-(१) स्वहस्तिकी- खुद किसी को कष्ट पहुँचाने से या (२) अन्य के द्वारा कष्ट पहुँचाने से लगने वाली क्रिया ।

(५) प्राणातिपातिकी क्रिया- प्राणियों के प्राण का नाश होने से लगने वाली क्रिया । यह भी स्वय के द्वारा या अन्य के द्वारा हिंसा करने रूप दो प्रकार की है ।

यह स्थूल दृष्टि से कही गई परिभाषा है । सूक्ष्म सिद्धा त से कायिकी आदि तीन क्रिया स सार के समस्त जीवों को अन्य सभी जीवों से निर तर लगती है । उस अपेक्षा से-(१) शरीर के सद्भाव से लगने वाली क्रिया **कायिकी क्रिया है । (२)** शरीर के अतिरिक्त मन वचन कर्म उपधि उपकरण जीव के साधनों के सद्भाव से लगने वाली क्रिया **अधिकरणिकी क्रिया** है । (३) कषायों के सद्भाव से लगने वाली क्रिया **प्राद्वेषिकी क्रिया** है । ये तीनों क्रियाएँ दसवें

गुणस्थान तक के जीवों को सदा निर तर लगती रहती है । चौथी पाँचवी क्रिया स्थूल रूप से परिताप और प्राणातिपात होने से ही लगती है ।

प्रश्न-१२ : श्रमण निर्ग्रंथ को भी ये क्रियाएँ लगती है?

उत्तर- प्रमाद, कषाय एव योग के सद्‌भाव से श्रमण निर्ग्रंथ को भी ये पाँचों क्रियाएँ लगती है । प्रमाद रहित अप्रमत्त श्रमण निर्ग्रंथ को कषाय और योग के सद्‌भाव से ये क्रियाएँ लगती है । प्रमाद और कषाय के अभाव में मात्र योग से भी ये क्रियाएँ नहीं लगती है । ऐसे कषाय रहित वीतराग निर्ग्रंथ को ११ से १३ गुणस्थान में ये पाँचों क्रियाएँ नहीं लगती है । इन पाँच से भिन्न ईर्यावहि क्रिया लगती है । योग रहित अयोगी केवली को १४वें गुणस्थान में कोई भी क्रिया नहीं लगती है ।

जब तक स सार में जीवों के एजन-वेजन अर्थात् शरीर की हलन-चलन क्रिया एव मन-वचन के प्रवर्तन रूप क्रिया चालू रहती है तब तक अणगार भी मुक्त नहीं हो सकता है । क्यों कि किसी(कषाय रहित) हलन-चलन से ईर्यावहि क्रिया और किसी(कषाय सहित) हलन चलन में कायिकी आदि पाँचों क्रियाएँ होती है । क्रियाओं से यथायोग्य कर्मब ध होता है और कर्मब ध ही स सार है, स सार वृद्धि का कारण है । क्रियाओं से रहित, प्रवृत्तियों से रहित जीव क्रमशः पाँच क्रियाओं से या अनेक क्रियाओं से और उनके स ब धी कर्मब ध से मुक्त होता है, आगे बढकर योग निरोध कर, एजन-वेजन मिटाकर क्रियाओं से सर्वथा मुक्त हो जाता है फिर अल्प समय में ही कर्मों से मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न-१३ : प्रमत्त और अप्रमत्त स यत की स्थिति किस प्रकार बनती है ?

उत्तर- तीन प्रकार से यह स्थिति कही जा सकती है- (१) एक जीव की जघन्य-उत्कृष्ट (२) अनेक(सर्व)जीवों की जघन्य-उत्कृष्ट (३) एक जीव की जीवनभर की जघन्य-उत्कृष्ट । प्रस्तुत में- **सव्वा वि य ण पमत्तद्धा ।** और **सव्वा वि य ण अपमत्तद्धा** शब्द से पृच्छा है वह तीसरे प्रकार की स्थिति है ।

पूरे जीवन में एक जीव का **"प्रमत्त स यत काल"** जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व है । तदनुसार जीव प्रथम बार में ही जघन्य एक समय छट्ठा गुणस्थान में प्रमत्तस यत रहकर काल कर सकता है । पूरे जीवन में एक जीव का **"अप्रमत्त काल"** जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व है । तदनुसार जीव को प्रथम बार सातवाँ गुणस्थान आने पर कम से कम अ तर्मुहूर्त रहता है, वह एक समय में नहीं छूटता है और प्रथम बार के एक समय में मृत्यु भी नहीं होती है । उत्कृष्ट अप्रमत्तकाल देशोन क्रोड पूर्व का है, वह तेरहवें गुणस्थान की अपेक्षा है । शेष सातवाँ आदि अप्रमत्त गुणस्थानों में जीव लगातार अ तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहता है । दूसरी तीसरी बार कभी भी छट्ठे गुणस्थान से या आठवें गुणस्थान से सातवाँ गुणस्थान आवे तब उसमें जघन्य एक समय भी रह सकता है ।

स यम में प्रवेश के प्रथम बार में सातवाँ गुणस्थान ही आता है और उस समय वह कम से कम अ तर्मुहूर्त रहता ही है, उसके पहले वह छट्ठे गुणस्थान में या आठवें गुणस्थान में नहीं जाता है और अ तर्मुहूर्त के पहले मृत्यु भी नहीं होती है । उसके बाद जीवन में कभी भी दूसरी तीसरी बार सातवाँ गुणस्थान आवे तब वह जघन्य एक समय भी रह सकता है । इसलिये सातवें गुणस्थान की कायस्थिति जघन्य एक समय की कही गई है । किंतु प्रस्तुत सूत्र में कायस्थिति की पृच्छा न होकर **सव्वा वि य ण अपमत्तद्धा** = जीवन के स पूर्ण अप्रमत्तकाल की पृच्छा है ।

अनेक जीवों की अपेक्षा प्रमत्त स यत(छट्ठा गुणस्थान) शाश्वत है और अप्रमत्त स यत भी तेरहवें गुणस्थान की अपेक्षा शाश्वत है। ७ से १२ तक के अप्रमत्त गुणस्थान अशाश्वत है । ***[इस स पूर्ण उद्देशक में छट्ठे गणधर म डितपुत्र अणगार के प्रश्नों के उत्तर हक्त ॥]*** ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१४ : भावितात्मा अणगार को लेकर यहाँ क्या निरूपण किया गया है?

उत्तर- स यम-तप में दत्तचित्त होकर, तल्लीन होकर अपनी आत्मा को उसी में लगाये रखने वाले को अर्थात् उच्चकोटि के स यम आराधक

को **'भावितात्मा अणगार'** कहा जाता है । ये अणगार सामान्य-विशेष अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, पूर्वधर या विशिष्ट ज्ञानी भी हो सकते हक्त एव वैक्रिय आदि लब्धि से स पन्न या अस पन्न कैसे भी हो सक्तेहक्त ।

अतः कोई भी देव-देवी, यान-विमान की विकुर्वणा करके कहीं जा रहे हों तो भावितात्मा अणगारों को उनको जानने नहीं जानने स ब धी कथन में वे यान को जाने देखे या देव-देवी को जाने देखे या दोनों को जाने देखें अथवा दोनों को भी नहीं जाने देखें ऐसा स भव है । अवधिज्ञान की भजना से या विविधता से ऐसे चारों भ ग स्वीकारे जा सकते हक्त ।

इसी तरह वृक्ष के १० विभाग में से दो-दो विभागों को लेकर भी ऐसी ही पृच्छा की गई है- (१) अणगार, वृक्ष के अ दर देखता या बाहर (२) मूल देखता या क द देखता (३) मूल देखता या स्क ध देखता है । इस तरह मूल के साथ ९ भ गों में चौभ गी कहना । इसी तरह क द-स्क ध यों क द के साथ ८ भ गो में चौभ गी । फिर स्क ध-शाखा आदि यों स्क ध के साथ ७ भ ग; यों कुल-४५ भ गों के साथ देखने स ब धी चौभ गी होती है । भावितात्मा अणगार के ज्ञान क्षयोपशम की विविधता के कारण वृक्ष एव उसके विभागों को देखने स ब धी ४५ चौभ गी स्वीकार की गई है ।

तात्पर्य यह है कि भावितात्मा अणगार स यम-तप में श्रेष्टता उच्चता रखने वाला होता है तथापि ज्ञान में या लब्धि में सामान्य विशेष अनेक विकल्प भावितात्मा अणगार में हो सकते हक्त । अतः यहाँ के सभी वैकल्पिक प्रश्नों के उत्तर में जानने की अपेक्षा चौभ गी कही है ।

प्रश्न-१५ : वायुकाय के विकुर्वणा स ब ध में क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर- वायुकाय का वैक्रिय शरीर भवप्रत्ययिक नहीं है क्यों कि वायु में जन्मने मात्र से सभी को यह शरीर नहीं होता है । यह क्षयोपशमजन्य है, समस्त वायु जीवों के अस ख्यातवें भाग वाले बादर पर्याप्त वायु

जीवों को वैक्रिय लब्धि होती है । सभी सूक्ष्म जीवों को और बादर में अपर्याप्त जीवों को नहीं होती है, बादर पर्याप्त में भी अस ख्यातवें भाग के जीवों को होती है ।

वायुकाय, स्त्री पुढष आदि के कोई रूप नहीं बना सकते । एकमात्र एक दिशा में ध्वजापताका के आकार में रूप बना सकते हक्त वह ध्वजा गिरी हुई या उपर उठी हुई दोनों आकार की हो सकती है । ऐसे ढप की विकुर्वणा करके वायुकाय जीव स्व-रिद्धि से अनेक योजन तक जा सकते हक्त । वह विकुर्वणा प्रत्येक वायु जीव के जघन्य-उत्कृष्ट अ गुल के अस ख्यातवें भाग की ही होती है ।

बादल स्वतः स्त्री आदि अनेक रूपों में परिणत हो सकते हक्त और पर प्रयोग से हवा आदि से प्रेरित होकर अनेक योजन गमन कर सकते हक्त । स्वतः गमन की शक्ति बादलों में नहीं होती है ।

वायुकाय वैक्रिय से पताका का आकार बनावे तो भी वे वायु जीव कहे जाते हक्त पताका नहीं कहे जाते । बादल भी स्त्री आदि रूपों में परिणत दिखाई दे तो भी वे बादल ही कहे जाते हक्त स्त्री आदि नहीं होते हक्त(मात्र आकार कल्पित होता है) ।

प्रश्न-१६ : विकुर्वणा का माई-अमाई से किस प्रकार स ब ध बताया गया है ?

उत्तर- यहाँ मायी शब्द प्रमादी के लिये प्रयुक्त है । जिससे समझाया गया है कि प्रमादी व्यक्ति(अणगार)ही अच्छा-अच्छा गरिष्ट आहार करके वमन आदि करता है । अप्रमादी व्यक्ति(अणगार) ढक्ष आहार करके प्रमाद नहीं बढाता है । अतः विक्रिया भी प्रमादी अणगार ही करता है अप्रमादी में कुतूहल आदि नहीं होते । अतः वे विकुर्वणा नहीं करते हक्त ।

विकुर्वणा करने वाले प्रमादी अणगार में भी जो अमाई याने सरल आत्मार्थी होते हक्त वे आलोचना प्रायश्चित्त कर लेते हक्त किन्तु जो माई-अनात्मार्थी असरल होते हक्त वे आलोचना-प्रायश्चित्त की उपेक्षा करते हक्त । इस प्रकार माई-अमाई शब्दों का सापेक्ष अर्थों में प्रयोग किया गया है ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

भावितात्मा अणगार का सामर्थ्य जम्बूद्वीप जितने क्षेत्र को वैक्रिय रूपों से भरने का होता है पर तु ऐसा कभी किया नहीं जाता । वे अणगार आभियोगिक प्रवृत्ति रूप में खुद के विविध रूप बना कर गमनागमन कर सकते हक्त ।

आभियोगिक क्रिया में म त्र, त त्र, विद्या आदि से अश्वादि रूप बना कर उसमें प्रविष्ट किया जाता है । विक्रिया में वैक्रिय लब्धि से वैसे रूप बनाये जाते हक्त । और अनेक योजन गमन किया जाता है । इन दोनों प्रकार की क्रिया माई-प्रमादी साधु करता है, अप्रमादी साधु नहीं करता है ।

यह प्रक्रिया करने के बाद जो मायी-असरल अनात्मार्थी अणगार आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करता है वह विराधक होता है और काल करके आभियोगिक(नौकर) देवों में उत्पन्न होता है । जो अमायी-सरल आत्मार्थी अणगार आलोचना प्रायश्चित्त कर लेता है वह आभियोगिक देवों के सिवाय किसी भी प्रकार का देव बनता है । ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१७ : मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि के वैक्रिय प्रयोग में और जानने देखने समझने में क्या अ तर होता है ?

उत्तर- यहाँ मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकार के भावितात्मा अणगार कहे गये हक्त । अपने मत की ग्रहण की हुई साधना में तल्लीन अन्यमत के स न्यासी को मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अणगार समझना चाहिये और स्वमत के जैन श्रमण को सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अणगार समझना ।

वैक्रिय लब्धि दोनों को हो सकती है और दोनों राजगृही या वाराणसी किसी भी नगरी का रूप बना सकते हक्त । सम्यग्दृष्टि जैसा रूप बनाता है, वैसा ही जानता-समझता है । मिथ्यादृष्टि अयथार्थ (उल्टा-सुलटा) जानता-समझता है । वह खुद के वैक्रिय से बने हुए नगर को वास्तविक मान लेता है और वास्तविक को वैक्रिय द्वारा बनाया हुआ मान लेता है इस प्रकार उसके ज्ञान में भ्रम होता है और दर्शन में भी भ्रम या विरोधाभाष होता है । ऐसा मिथ्यात्व के प्रभाव से और अज्ञान के कारण से होता है ।

प्रश्न-१८ : शक्रेन्द्र के लोकपालों का स क्षिप्त परिचय क्या है ?

उत्तर- भवनपति और वैमानिक इन्द्रों के प्रत्येक के ४-४ लोकपाल होते हक्त । शक्रेन्द्र के चार लोकपाल- सोम, यम, वढण, वैश्रमण । इनके क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में अपने मालिकी के विमान होते हक्त । उनके नाम क्रमशः (१) स ध्याप्रभ (२) वरशिष्ट (३) स्वय ज्वल (४) वल्गु । ये चारों विमान शक्रेन्द्र के सौधर्मावत शक विमान से अस ख्य योजन दूर उपरोक्त क्रम से चारों दिशाओं में होते हक्त । सौधर्मावत शक विमान प्रथम देवलोक के मध्य में होता है । इन विमानों का विस्तार साडे बारह लाख योजन का होता है । विमान वर्णन सौधर्मावत शक विमान के समान है । इन चारों लोकपालों की राजधानियाँ इनके विमानों की सीध में नीचे तिरछालोक में है । वे एक लाख योजन की ल बी-चौडी गोल है । उनका कोट वगैरह शक्रेन्द्र की राजधानी से आधा है, उपकारिकालेन सोलह हजार योजन विस्तार वाला हक्त । उनमें चार प्रासादों की प क्तियाँ है । शेष उपपात सभा आदि वहाँ नहीं है।

प्रश्न-१९ : शक्रेन्द्र के चारों लोकपालों का विषय एव आधिपत्य किस प्रकार होता है ?

उत्तर- मेढ पर्वत से दक्षिण तरफ का स पूर्ण लोक दक्षिणार्ध लोक है इस पर शक्रेन्द्र का आधिपत्य होता है । यह अर्ध चन्द्राकार होता है । इसी स पूर्ण क्षेत्र में शक्रेन्द्र के चारों लोकपालों का विषय एव आधिपत्य होता है ।

(१) सोम लोकपाल- स्वय के विमानवासी देव-देवी एव भवनपति में विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार जाति के देव-देवी, चन्द्र-सूर्य आदि सर्व ज्योतिषी देव-देवी **सोम लोकपाल** के आधीन होते हक्त । मेढ पर्वत से दक्षिण विभाग में ग्रहों की अनेक प्रकार की स्थितियाँ, अभ्र विकार, गर्जना, बिजली, उल्कापात, ग धर्व नगर, स ध्या, दिग्दाह, यक्षोदीप्त, धूँअर, महिका, रजउद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, जलकु डादि, प्रतिच द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, सभी प्रकार की हवाएँ, ग्रामदाह आदि, प्राणक्षय, धनक्षय, कुलक्षय आदि, सोम लोकपाल की जानकारी में होते हक्त । अ गारक(म गल), विकोलिक, लोहिताक्ष, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, राहु ये **ज्योतिषी देव** सोम लोकपाल के

पुत्रस्थानीय माने गये हक्त। सोम लोकपाल की **स्थिति** पल्योपम का तीसरा भाग अधिक एक पल्योपम की है और पुत्रस्थानीय देवों की एक पल्योपम की स्थिति है ।

यम लोकपाल– स्वय के विमानवासी देव-देवी तथा प्रेतकायिक व्य तर देव, असुरकुमार जाति के भवनपति देव-देवी, परमाधामी देव, कन्दर्पिक, आभियोगिक देव, यम लोकपाल की अधीनता में होते हक्त । मेढ से दक्षिण विभाग में होने वाले छोटे-बडे कलह, युद्ध, स ग्राम, विविध रोग, यक्षभूत आदि के उपद्रव, महामारी आदि एव उनसे होने वाले कुल क्षय, ग्राम क्षय, धन क्षय आदि इस लोकपाल की जानकारी से होते हक्त । प द्रह **परमाधामी** देव इनके **पुत्रस्थानीय** माने गये हक्त । स्थिति सोम लोकपाल के समान होती है ।

वढण लोकपाल– स्वय के विमानवासी देव-देवी तथा नागकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार जाति के भवनपति देव-देवी, वढण लोकपाल के आधीन होते हक्त । मेढ से दक्षिण में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, कुवृष्टि, झरना, तालाब आदि और इससे होनेवाले जनक्षय, धनक्षय आदि वढण लोकपाल की जानकारी में होते हक्त । कर्कोटक, कर्दमक, अ जन, श ख, पालक, पु ड, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अय पुल, कातरिक ये इनके पुत्रस्थानीय देव माने गये हक्त । वढण लोकपाल की स्थिति देशोन दो पल्योपम की है, इसके **पुत्रस्थानीय** देवों की **एक पल्योपम** की स्थिति है ।

वैश्रमण लोकपाल– स्वय के विमानवासी देव-देवी तथा सुवर्णकुमार, द्वीपकुमार, दिशाकुमार, जाति के भवनपति देव-देवी, वाणव्य तर देव-देवी आदि ये वैश्रमण लोकपाल के आधीन होते हक्त। मेढ से दक्षिण में सोने चा दी आदि अनेक प्रकार की खानें, गडा-पडा धन, मालिक रहित धन, धनवृष्टि, सोनैया आदि की वृष्टि, पुष्प आदि की वृष्टि; ग धमाला चूर्ण आदि सुग धी पदार्थ की वृष्टि, वस्त्र, भाजन(पात्र)एव क्षीर की वृष्टि, सुकाल-दुष्काल, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, सस्ताई-मह गाई एव निधान, स्मशान, पर्वत, गुफा, भवन आदि में रखे हुए धन, मणि, रत्न इत्यादि ये वैश्रमण लोकपाल की जानकारी में होते हक्त । पूर्णभद्र माणिभद्र, शालिभद्र, सुमन भद्र, चक्र, रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान, सर्वजश, सर्वकाम, समृद्धि, अमोघ,

अस ग ये उसके **पुत्रस्थानीय** देव माने गये हक्त । वैश्रमण लोकपाल की स्थिति दो पल्योपम की होती है । इसके पुत्रस्थानीय देवों की स्थिति एक पल्योपम की होती है । ॥ उद्देशक–७ स पूर्ण ॥

प्रश्न–२० : चारों जाति के देवों में अधिपति देव कितने होते हक्त ?

उत्तर– इन्द्र और लोकपालों को अधिपति देव गिना गया है । सोम, यम आदि को सूत्र में 'महाराजा' कहा गया है यथा– **सक्कस्स देवि दस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो स जप्पभे णाम महाविमाणे पण्णत्ते ।** अत: एक-एक इन्द्रस्थान में कुल ५–५ अधिपति देव होते हक्त । व्य तर और ज्योतिषी में लोकपाल नहीं होने से मात्र इन्द्र ही अधिपति देव होते हक्त । भवनपति+वैमानिक के इन्द्र २०+१० = ३० X ५ = १५० अधिपति देव + व्य तरेन्द्र–१६ +२ ज्योतिषेन्द्र=१६८ अधिपति देव । इस प्रकार चारों जाति के देवों में ६४ इन्द्र सहित कुल १६८ अधिपति देव हक्त ।

लोकपालों के नाम वैमानिक में एक सरीखे होते हक्त– सोम, यम, वढण और वैश्रमण । तीसरे चौथे लोकपाल के नाम का क्रम व्यत्यय होता है यथा– दूसरे देवलोक में– सोम, यम, वैश्रमण और वढण । इसीतरह तीसरे, पाँचवें, सातवें और नवमें-दसवें देवलोक के इन्द्र के लोकपालों के नाम पहले देवलोक के लोकपाल समान है । शेष के नाम दूसरे देवलोक के समान है । दस भवनपति में लोकपालों के नाम अलग अलग है कि तु उत्तर-दक्षिण के दोनों इन्द्रों के लोकपालों के नाम समान है । असुरकुमार के लोकपाल– सोम, यम, वढण, वैश्रमण । नागकुमार के– कालपाल, कोलपाल, शैलपाल, श खपाल । सुवर्णकुमार के– चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष । विद्युतकुमार के– प्रभ, सुप्रभ, प्रभका त, सुप्रभका त । अग्निकुमार के– तेजस, तेजससि ह, तेजका त, तेजप्रभ । द्वीपकुमार के– रूप, रूपाश, रूपका त, रूपप्रभ । उदधिकुमार के– जल, जलरूप, जलका त, जलप्रभ । दिशाकुमार के– त्वरितगति, क्षिप्रगति, सि हगति, सि हविक्रमगति । पवनकुमार के– काल, महाकाल, अ जन, अरिष्ट । स्तनितकुमार के– आवर्त, व्यावर्त, न दिकावर्त, महान दिकावर्त ।

व्यक्तिगत अपेक्षा से ज्योतिषी के अस ख्य अधिपति देव होते

हक्त । क्यों कि प्रत्येक सूर्यचन्द्र के अपने ज्योतिष म डल का स्वत त्र आधिपत्य होता है । तिरछालोक में अस ख्य सूर्य-चन्द्र-स्वय इन्द्र है । जातिवाचक अपेक्षा से ६४ इन्द्रों में इनके २ की गिनती होती है । ॥ उद्देशक-८ स पूर्ण ॥ उद्देशक-९, १० स क्षिप्त ॥

शतक-४ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : ईशानेन्द्र के लोकपालों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- दूसरे देवलोक का अधिपति ईशानेन्द्र उत्तरार्ध लोकाधिपति है । उसके चारों लोकपालों का विषय एव आधिपत्य शक्रेन्द्र के लोकपालों के समान है । शक्रेन्द्र के लोकपालों का विषय और आधिपत्य में आने वाले देव तथा पुत्रस्थानीय देव ये सभी दक्षिण दिशावर्ती होते हक्त और ईशानेन्द्र के ये सभी उत्तर दिशावर्ती अर्धलोक में होते हक्त। भवनपति और व्य तर सभी जाति विभाग के देव दक्षिण और उत्तर दोनों दिशाओं में होते हक्त । तिरछा लोक में मेढ से दक्षिण का भरत क्षेत्र आदि शक्रेन्द्र के लोकपालों का विषय बनता है और उत्तर दिशा का एरवत क्षेत्र आदि ईशानेन्द्र के लोकपालों का विषय बनता है ।

ईशानेन्द्र के चारों लोकपालों के विमान ईशानावत सक विमान के चारों तरफ चारों दिशाओं में अस ख्य योजन दूरी पर है वे क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में हक्त । उनके नाम क्रमशः सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सुवल्गु है । इसीतरह चारों लोकपालों के नाम क्रमशः सोम, यम, वैश्रमण और वढण है। ॥ उद्देशक-१ से ४ स पूर्ण ॥

इनकी राजधानियाँ अपने-अपने विमान की सीध में नीचे तिरछा लोक में है । वे एक-एक लाख योजन की ज बूद्वीप प्रमाण वगैरह वर्णन शक्रेन्द्र के लोकपालों की राजधानी के समान है । ईशानेन्द्र के लोकपालों की स्थिति-सोम, यम लोकपाल की पल्योपम का तीसरा भाग कम दो पल्योपम की, वैश्रमण की दो पल्योपम की और वढण की पल्योपम का तीसरा भाग अधिक दो पल्योपम की है । चारों लोकपालों के पुत्रस्थानीय देवों की स्थिति एक पल्योपम की है ।

[यहाँ चार लोकपालों के वर्णन के चार उद्देशक हक्त और चारों की राजधानियों के वर्णन स ब धी चार उद्देशक हक्त ।अ तिम दो उद्देशक में प्रज्ञापना पद-१७, उद्देशक-३, ४ की भलावण(स सूचन)है ।]

॥ उद्देशक-५ से ८ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-९, १० स क्षिप्त ॥

शतक-५ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशक हक्त जिनमें अनेक विषय वर्णित है । शतक के प्रार भ में विषय सूचक एक गाथा है तदनुसार उद्देशक नाम और विषय इस प्रकार है-

(१) च प-रवि- प्रथम उद्देशक में च पानगरी में सूर्य, सूर्योदय एव सूर्यास्त स ब धी निरूपण है । ढाईद्वीप में चारों दिशाओं से कालमान का कथन है ।

(२) अनिल- इस उद्देशक में वायु स ब धी एव अचित्त पदार्थ मुक्केलग स ब धी वर्णन है ।

(३) ग्र थी-(ग्रथित)- तीसरे उद्देशक में ग्रथित आयुष्य कथन का ख डन तथा आयु स ब धी सही निरूपण है ।

(४) शब्द- चौथे उद्देशक में छद्मस्थ और केवली का शब्द सुनना, जानना; ह सना, निद्रा लेना आदि; हरिणैगमेषी की गर्भ स हरण शक्ति, एव ताकुमार, देवों को मनोवर्गणा लब्धि वगेरे अनेक विषयों का प्रतिपादन है ।

(५) छद्मस्थ- इस उद्देशक में छद्मस्थ की अमुक्ति और एव भूत तथा अनेव भूत वेदना का वर्णन है एव कुलकर आदि के वर्णन के लिये समवाया ग की भलावण(अतिदेश) से स क्षिप्त पाठ है ।

(६) आयुष्य- इस उद्देशक में अल्पायु-दीर्घायु ब ध, खोई वस्तु, क्रेता-विक्रेता तथा धनुष्य के स ब ध से आर भिकी आदि पाँच क्रिया इत्यादि विषयों का कथन है। ४००-५०० योजन नैरयिकों से ठसाठस भरा

नरकक्षेत्र, अग्नि जलने–बुझने के स ब ध में अल्पक्रिया-महाक्रिया, आधाकर्म सेवन की आलोचना, आचार्य उपाध्याय की गति एव आक्षेप लगाने का फल इत्यादि विषय वर्णित है ।

(७) एजन– इस उद्देशक में पुद्गल के क पन्न, देशक प, सर्वक प, परमाणु आदि के विभाजन, उनकी परस्पर स्पर्शना के भ ग विकल्प उनकी स्थिति, अ तर, अल्पबहुत्व आदि वर्णन है । अ त में २४ द डक में आर भ परिग्रह का और पाँच हेतु अहेतु का निरूपण है।

(८) निग्रंथ– इस उद्देशक में दो निग्रंथों की आपस में पुद्गल द्रव्य स ब धी चर्चा, २४ द डक के जीवों में हानि-वृद्धि अवस्थिति, सोपचय-निढपचय आदि वर्णन है ।

(९) राजगृह– इस उद्देशक में राजगृही नगर, प्रकाश-अ धकार, समय का ज्ञान, पार्श्वापत्य स्थविरों का भगवान महावीर की सेवा में समर्पण इत्यादि वर्णन है ।

(१०) च प–च द्र– इस उद्देशक में च पानगरी में चन्द्र स ब धी स क्षिप्त कथन है ।

प्रश्न–२ : ज बूद्वीप के चार विभाग की अपेक्षा सूर्योदय-सूर्यास्त का, दिन-रात का एव वर्ष आदि का प्रार भ कब, कहाँ, किस प्रकार होता है ?

उत्तर– (१) उदय–अस्त– ज बूद्वीप में चार कोण–खुणे हक्त– ईशानकोण, आग्नेयकोण, नैऋत्यकोण, वायव्यकोण । ज बूद्वीप के चार विभाग है– पूर्वमहाविदेह, भरतक्षेत्र, पश्चिम महाविदेह, एरवतक्षेत्र ।सूर्य प्रथम विभाग की अपेक्षा ईशानकोण में उदय होकर आग्नेयकोण में अस्त होता है, दूसरे विभाग की अपेक्षा आग्नेयकोण में उदय होकर नैऋत्य कोण में अस्त होता है, तीसरे विभाग की अपेक्षा नैऋत्यकोण में उदय होकर वायव्यकोण में अस्त होता है, चौथे विभाग की अपेक्षा सूर्य वायव्यकोण में उदय होकर ईशानकोण में अस्त होता है । इस प्रकार पूर्व विभाग की अपेक्षा जहाँ सूर्य अस्त होता है वहाँ अगले विभाग की अपेक्षा सूर्य उदय होता है । यह **चार विभागों की अपेक्षा** कथन है । **दूसरी अपेक्षा** से सूर्य प्रतिक्षण एक क्षेत्र में अस्त होता है और

दूसरे अगले क्षेत्र में उदय होता है । **तीसरी अपेक्षा** से वास्तव में सूर्य स्वय तो सदा एक सरीखा उदीयमान ही रहता है । अस्त-उदय तो अपने-अपने क्षेत्रों की अपेक्षा कल्पना की जाती है । अमुक दूरी के कारण ही सूर्य उदय-अस्त होता दिखाई देता है । सूर्य हमेशा एक सरीखा प्रकाश फैलाता हुआ गतिमान रहता है ।

(२) दिन–रात– ज बूद्वीप में दो सूर्य हक्त । अत: उपर कहे चार विभाग में से दो विभाग में दो सूर्य दिवस करते हक्त तब दो विभाग में सूर्य के अभाव में रात्रि होती है । जब एक सूर्य एक विभाग में १८ मुहूर्त का दिन करता है तब दूसरा सूर्य उसके सामने के विभाग में १८ मुहूर्त का दिन करता है । तब अन्य दो विभागों में १२–१२ मुहूर्त की रात्रि होती है। यह आभ्य तर प्रथम म डल में सूर्य के भ्रमण समय की अपेक्षा कथन है । फिर ज्यों ज्यों दोनों सूर्य क्रमश: बाहर के म डलों में आगे बढते रहते हक्त तब दिन १८ मुहूर्त में कम होते रहते हक्त और रात्रि १२ मुहूर्त में बढती रहती है अर्थात् जब १७ मुहूर्त के दिन दो विभाग में होते हैं तो शेष दो विभाग में १३ मुहूर्त की रात्रि हो जाती है । जब जिस म डल में सूर्य १६ मुहूर्त के दिन दो विभाग में करते हक्त तब अन्य दो विभाग में रात्रि १४ मुहूर्त की होती है । रात्रि दिवस का योग सदा–सर्वत्र ३० मुहूर्त ही होता है । अ तिम बाहर के म डल में सूर्य दो विभाग में १२ मुहूर्त का दिन करते हक्त तब अन्य दोनों विभाग में १८ मुहूर्त की रात्रि होती है ।

एक म डल का आधाम डल चलकर एक सूर्य दो विभाग में दिन करता है तभी दूसरा सूर्य उसी म डल के सामने का आधा म डल चलकर दो विभागों में दिन कर देता है । इस तरह दोनों सूर्य मिलकर आधा-आधा करके एक म डल से दूसरे म डल में प्रविष्ट होकर फिर वहाँ से गति प्रार भ करते हक्त ।

(३) वर्ष आदि का प्रार भ– पूर्व पश्चिम विभाग में जब वर्ष का प्रार भ(प्रथम समय) होता है उसके अन तर समय में उत्तर दक्षिण विभाग में वर्ष का प्रार भ(प्रथम समय) होता है । पूर्व पश्चिम में साथ में ही होता है अर्थात् पूर्व पश्चिम विभाग के अ तिम किनारे में जब वर्ष का प्रार भ होता है उसके अन तर समय में उत्तर दक्षिण विभाग के प्राथमिक

किनारे में वर्ष का प्रार भ होता है ऐसा समझना चाहिये । वर्ष के प्रार भ के समान वर्षाकाल, ग्रीष्मकाल, हेम तकाल का प्रथम समय समझ लेना चाहिये । वैसे ही प्रथम समय के समान ही प्रथम आवलिका, दिन, पक्ष, मास, ऋतु आदि सागरोपम तक समझना । **पूर्व-पश्चिम** विभाग में उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी नहीं होती है ।

ज बूद्वीप के समान ही लवण समुद्र के चार विभागों का उक्त वर्णन समझ लेना चाहिये । वहाँ भी पूर्व पश्चिम विभाग में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी नहीं होती है । विशेषता यह है कि लवण समुद्र में मेढ पर्वत नहीं कर कर दिशा के विभाग से ही कथन किया जाता है।

घातकी ख ड द्वीप का कथन ज बूद्वीप के समान और कालोदधि समुद्र का कथन लवणसमुद्र के समान है । घातकी ख ड के समान आभ्य तर पुष्कर द्वीप का कथन है । ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३ : वायुकाय के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- पुरोवात- परवायु अर्थात् स्निग्धता युक्त वायु । **पथ्यवायु**- वनस्पति आदि के लिये पथ्यकारी वायु । **मन्दवायु**- धीरे धीरे चलने वाली वायु । **महावायु**- प्रच ड तूफानी हवा । ये चारों प्रकार की हवा सभी दिशा विदिशा में द्वीप में समुद्र में चल सकती है । एक साथ एक समय में दो विरोधी दिशाओं में नहीं चलती है । ये सभी वायुकाय (१) स्वाभादिक भी हो सकती है, (२) वायुकाय के उत्तर वैक्रिय रूप से भी हो सकती है, एव (३) वायुकुमार आदि देवकृत भी होती है । लवण समुद्र में चलने वाली वायु 'वैला' से बाधित हो जाती है, उसके आगे नहीं जाती किंतु वहीं रूक जाती है । चाहे म द वायु हो या प्रच ड । लवण समुद्र के बीच में जो १६ हजार योजन ऊँचा पानी उठा हुआ है उसे 'वैला' कहा जाता है।

प्रश्न-४ : कोई भी अचित्त बना पदार्थ किसका त्यक्त (मुक्केलग) शरीर कहा जाता है

उत्तर- पृथ्वी, पानी, नमक, वनस्पति के फूल-पत्ते आदि सचित्त पदार्थ अग्नि पर चढे बिना सूर्य के ताप से या अन्य तीक्ष्ण क्षार-अम्ल पदार्थों से अचित्त हो जाय तो वे अपने मूलभूत-पृथ्वी, पानी के या

वनस्पति के शरीर (मुक्तशरीर) कहलाते हक्त । जब कोई भी नमक, पानी या वनस्पति के पदार्थ आदि अग्नि से तप्त होकर अचित्त बनते हक्त तो वे अग्नि के मुक्त शरीर कहलाते हक्त । पूर्वभाव की अपेक्षा से उन्हें पृथ्वी, पानी या वनस्पति के शरीर कह सकते हक्त । पर तु अन तर तो वे पदार्थ अग्नि परिणामित हो जाने से अग्नि के परित्यक्त शरीर कहे जाते हक्त । इसका कारण यह है कि कोई भी पदार्थ अग्नि से परितप्त होता है अमुक मात्रा में गर्म होने पर वह पूरा अग्नि जीवों से ग्रहित हो जाता है वह पूरा पदार्थ अग्नि जीव पि ड बन जाता है और अग्नि पर से हटा लेने के बाद तुर त अचित्त हो जाता है । जैसे कि दीपक ट्यूबलाइट बल्ब बुझते ही पूर्ण अचित्त हो जाते हक्त । अग्नि जीवों का ऐसा ही स्वभाव होता है कि अग्नि जलते ही जीव आकर जन्म जाते हक्त और अग्नि बुझते ही सभी अग्नि जीव मर जाते हक्त । ठीक वैसे ही अग्नि पर तप्त होने वाले पदार्थ अमुक डिग्री के ताप में अग्निकाय जीवमय बन जाते है और अग्नि से अलग कर दिये जाने पर तत्काल अचित्त हो जाते हक्त । यथा- गर्म दूध अग्नि से उतारते ही अन तर अग्निजीव शरीर है और पर परा से वह दूध प चेन्द्रिय त्यक्त शरीर है । ॥ उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-५ : कोई एक साथ हजारों आयुष्य ब ध होने का मानते है क्या ?

उत्तर- यहाँ तीसरे उद्देशक में ऐसी मान्यता का जिक्र है कि एक जीव के हजारों आयुष्य की सा कल ब धी हुई होती है । दृष्टा त रूप में वे जाल का कथन करते हक्त । जाल में अनेक गा ठे होती है उसी तरह अनेक आयुष्य भी ग्र थी रूप में ब धे रहते हक्त ।

इस प्रकार का कथन मिथ्या एव मन कल्पित मात्र है । परभव का आयुष्य जीव इस भवमें बा धता है । उस आयुब ध योग्य आचरण भी जीव इस भव में करता है । एक समय में दो आयुष्य ए क साथ नहीं भोगे जाते हक्त । एक भव का आयुष्य पूर्ण होता है तब दूसरे भव का आयुष्य प्रार भ होता है । दूसरे भव का आयुष्य समाप्त होने के पहले जीव अवश्य तीसरे भव का आयुष्य बा ध लेता है फिर दूसरे भव का आयु समाप्त होता है तभी तीसरे भव का आयु उदय

प्रार भ होता है । इस प्रकार आयुब ध और आयु उदय की श्रृ खला अनादि काल से चलती है पर तु हजारों आयु अनेक जीवों के आपस में उलझे हुए अर्थात् ग्र थी रूप में ब धे हुए नहीं होते हक्त । एक भव में जीव के एक ही आयुष्य का वेदन होता है, दो आयुष्य का वेदन नहीं होता है तथा आगे के भव का जो आयुब ध हो गया होता है उसका प्रदेशोदय होता है । प्रदेशोदय को वेदन रूप में नहीं गिना जाता है । ॥ उद्देशक–३ स पूर्ण ॥

प्रश्न–६ : छद्मस्थ और केवली के शब्द श्रवण करना, हँसना, निद्रा लेना आदि विषयों में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर– छद्मस्थ मनुष्य वाजि त्र आदि कोई भी शब्दों को मर्यादित क्षेत्र सीमा से अपने क्षयोपशम अनुसार सुनता है तथा वे शब्द भी उसकी श्रोतेन्द्रिय में, आत्मप्रदेशों में स्पृष्ट होने पर ही उसके विषयभूत बनतेक्त । मर्यादित सीमा से बाहर या श्रोतेन्द्रिय में अस्पृष्ट शब्दों को वह नहीं सुन सकता । **केवली** को क्षायिक एव स पूर्ण अन त ज्ञान दर्शन होने से नजीक या दूर सभी शब्दों को जानते, देखते हक्त । उनके लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि की कोई सीमा नहीं होती है।

छद्मस्थ मनुष्य हँसते हक्त, उत्सुक होते हक्त, कुतूहल को प्राप्त होते हक्त; क्यों कि उनके उस तरह के हास्य मोहनीय रूप चारित्र मोहनीय कर्म उदय में आते रहते हक्त । **केवली** के मोहनीय कर्म नष्ट हो गया होता है अत: उनके हँसने आदि की प्रवृत्ति नहीं होती है । हँसता हुआ जीव प्रमादी होने से सात या आठ कर्म का ब ध करता है । ऐसा कर्मब ध २४ ही द डक में होता रहता है ।

हँसने के समान निद्रा लेने स ब धी कथन भी छद्मस्थ और केवली के विषय में समझ लेना चाहिये । छद्मस्थ के निद्रा लेने में दर्शनावरणीय कर्मोदय का कारण होता है । केवली के वह कर्म क्षय हो चुका होता है । निद्रा लेता हुआ जीव भी प्रमादी होने से सात या आठ कर्म का ब ध करता है, ऐसा २४ द डक में समझ लेना। क्यों कि सभी द डक में दर्शन मोहनीय कर्म का उदय है । केवली के हास्य, निद्रा आदि का अस्तित्व ही नहीं होने से उनके लिये तत्स ब धी कर्मब ध की कोई विचारणा नहीं की जाती है ।

प्रश्न–७ : हरिणैगमेषी देव का सहीनाम, कार्य एव परिचय क्या है ?

उत्तर– इसके लिये यहाँ उद्देशक–४ में पाठ इस प्रकार है– **हरी ण हरिणेगमेसी सक्कदूए इत्थि गब्भ स हरमाणे..।** 'हरी' यह व्यक्तिगत विशेष नाम है, **हरिणैगमेषी** यह स स्कृत छाया बनती है । इसमें तीन शब्द का पदच्छेद होता है– हरि = इन्द्र; नैगम = निर्देश वचन, आदेश वचन; ऐषी = अपेक्षा रखने वाला, स्वीकारने वाला । प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र के आदेश को स्वीकारने वाला आज्ञाकारी देव । सक्कदूए– दूत कर्म करने वाला, स देशवाहक । अपना विश्वस्त व्यक्ति दूतकर्म योग्य होता है– (१) यह शक्रेन्द्र की सात सेना में से पैदल सेना का अधिपति–मुखिया और सेनापति देव भी है, ऐसा अन्यत्र वर्णन में आता है (२) यहाँ के शब्द प्रयोग अनुसार यह शक्रेन्द्र का विश्वस्त सेवक–दूत भी है (३) गुणस पन्न व्युत्पत्ति अर्थ वाला प्रसिद्ध नाम है हरिणैगमेषी देव । (४) व्यक्तिगत नामकरण से यह 'हरी' नाम वाला हरिणैगमेषी देव है ।

प्रस्तुत में इस देव की अपनी विशेष कार्य कुशलता दर्शाई गई है । पैदल सैना का अधिपति और शक्रेन्द्र का दूत होते हुए भी यह देव गर्भ स हरण की कला में सिद्धहस्त (स्पेश्यालिस्ट) होता है । किसी भी गर्भ को अन्यत्र लेजाने के लिये वह योनिद्वार से ही गर्भ को निकालता है तथापि वह नख से या शरीर के रोम से भी गर्भ को निकाल सकता है और निकालते हुए भी गर्भ को कि चित् भी कष्ट नहीं होने देता है इतनी सूक्ष्मता से गर्भ स हरण का कार्य करने में यह देव दक्ष होता है ।

इसीलिये गर्भ स हरण के प्रस ग वाले आगम कथानकों में इसी देव का नामोल्लेख है । अ तगड में कृष्ण वासुदेव के पौषध समय में यही देव उपस्थित हुआ था, उसके सूचन अनुसार गजसुकुमाल का जन्म और दीक्षा हुई थी । कृष्ण के छ बडे भाइयों का भी स हरण स्थाना तरण इसी देव ने किया था । भगवान महावीर को देवान दा के गर्भ से हटाकर त्रिशला माता के गर्भ में शक्रेन्द्र की आज्ञा से इसी देव ने रखा था ।

इस देव के नाम से अन्य भी अर्थ की कल्पना पर परा में चलती है कि हरिण के जैसा रूप धारण करके गमनागमन या कार्य करने वाला देव । इस अर्थ को लेकर चित्र की कल्पना में लोग हिरण के जैसी ल बे सि ग युक्त हिरणमुखाकृति सहित देव के आकार का चित्र कल्पित करते हक्त ।

स हरण करने वाला, हरण करने वाला होने से लिखने या उच्चारण करने में कवचित् 'हरणगमैषी देव' ऐसा भी चलता है । सत्य आगम सम्मत व्युत्पति परक शब्द रचना उपर स्पष्ट की गई है ।

प्रश्न-८ : बालदीक्षित एव ता मुनिवर का वर्णन अ तगड सूत्र में है तो यहाँ क्या है ?

उत्तर- अ तगड सूत्र में एव तामुनि का दीक्षा के पहले माता से दीक्षा की आज्ञा लेने आदि का विस्तृत वर्णन है पर तु उस वर्णन के बाद दीक्षा का तथा अध्ययन एव स यम-तप से मुक्ति तक का स क्षिप्त वर्णन है । उनके बाल जीवन की अर्थात् दीक्षा समय के प्रार भ काल की एक घटना यहाँ इस चौथे उद्देशक में निरूपित है, वह इस प्रकार है-

एक समय वर्षा होने के बाद एव ताकुमार श्रमण बडे स तो के साथ नगर के बाहर स्थ डिल(बडीनीत) के लिये गये । एव तामुनि को नजीक में बिठाकर बडे स त उनसे थोडे दूर चले गये। वे शौच निवृत्त होकर आये उसके पहले एव तामुनि शौच से निवृत्त होकर आ गये एव स्थविर स तों की प्रतिक्षा करने लगे । पास में ही वर्षा का पानी छोटी सी नाली रूप में बहता हुआ दिखा । वहाँ एव ता बालमुनि ने मिट्टी की पाल बा ध कर पानी को आगे जाते रोक दिया अथवा तो पात्री आगे न चली जाय उसके लिये मिट्टी की पाल कर दी । फिर उस रूके पानी में अपने पास की पात्री छोडकर धक्का दे देकर तिराने लगे । इस तरह मेरी नावा-मेरी नावा ऐसा बोलते हुए पात्र को पानी में बहाते हुए खेलने लगे । दूर से आते हुए श्रमणों ने इस प्रकार करते हुए एव ता मुनि को देख लिया । फिर एव ता की नजर स तों पर पडी तो उन्होंने तत्काल अपनी पात्री झोली में डाल कर स तों के साथ होकर चलने लगे । स तों ने बालमुनि को कुछ भी नहीं कहा ।

स्थविर श्रमणों ने भगवान महावीर की सेवा में पहुँचकर व दन नमस्कार पूर्वक अपना मनोगत प्रश्न निवेदन किया कि- भ ते! आप देवानुप्रिय का अ तेवासी अतिमुक्तकुमार बालश्रमण कितने भव करके मोक्ष जायेगा ? भगवान ने स्थविरों से कहा- "हे आर्यों! मेरा अ तेवासी अतिमुक्त कुमार श्रमण इसी भव में स पूर्ण कर्म क्षय करके मुक्त होगा, सब कर्मों का अ त करेगा ।आप लोग एव ताकुमार श्रमण के प्रति हीलना निंदा आदि व्यवहार नहीं करके उस बालमुनि को पूरा स रक्षण देकर सब प्रकार से सुशिक्षित करो । मन में कोई प्रकार का हीनभाव न लाते हुए उसकी ठीक से देखरेख जवाबदारी के कर्तव्य का पालन करो । आहार पानी आदि से भी उसकी यथायोग्य सार स भाल रखो अर्थात् बालदीक्षित मुनि के प्रति पूर्ण अहोभाव के साथ, उसकी त्रुटियों को शिक्षा-स भाल से सुधारते हुए, वह स यम-तप में प्रगतिशील बने वैसा ध्यान रखो । यह अतिमुक्तकुमार श्रमण चरम शरीरी मोक्षगामी जीव है ।"

तात्पर्य यह है कि बालमुनि या नवदीक्षित मुनि के प्रति बडे स तो की जिम्मेदारी होती है कि तु उसकी नासमझी की निंदा हीलना करना कतई योग्य नहीं होता है । प्रस्तुत में कच्चे पानी सचित्त पानी में पात्री तिराने के लिये एव ता मुनि को उपाल भ की बात भगवान ने या श्रमणों ने किसी ने भी नहीं की । बुजुर्ग स तो की मानसिकता कुछ स देहशील बनी थी कि तु भगवान से प्रश्न पूछने पर उनको विस्तृत उत्तर के द्वारा सही मार्गदर्शन मिल गया था कि ये बालमुनि हलुकर्मी जीव है, उसके प्रति हमें ही अपना कर्तव्य पालन करते हुए, इन्हें शिक्षित एव स यम समाचारी से अभ्यस्त कराना चाहिये । इस प्रकार इस घटना वर्णन में जिनशासन की एक बाल मुनि के प्रति, नव दीक्षित के प्रति परम उदारवृत्ति का दर्शन होता है । उपाल भ मारपीट या द ड प्रायश्चित्त की यहाँ कोई चर्चा नहीं है । भगवान के आदेश को श्रमणों ने स्वीकार किया और एव तामुनि की भलीभा ति सेवा-स भाल करने लगे ।

एव ता मुनि की अत्य त बाल उम्र थी । उस जमाने के अनुरूप अभी उसका सा सारिक अध्ययन भी चालू नहीं हुआ था, ऐसा अ तगड सूत्र के वर्णन से प्रतीत होता है । एव ता राजकुमार थे और उस समय

राजकुमार को आठ वर्ष की उम्र के आसपास ही विद्यागुढ के पास अध्ययनार्थ भेजा जाता था । वर्तमान आगमों में बाल दीक्षा का यह एक आदर्श उदाहरण अनेका गी पहलुओं को लिये हुए है । एका तवादी मानसिकता वालों को इस दृष्टा त से सही मार्गदर्शन मिलता है और सुझाया जा सकता है । ऐसे अनेका तदृष्टि के आगम प्रमाणों के होते हुए भी कई लोग इसकी उपेक्षा कर अपनी छाद्मस्थिक मानसिकता को आगे करके समय समय पर समाज में दीक्षा का विरोध खड़ा करते हक्त । उन्हें इस आगम वर्णन से सही सबक लेना अत्य त आवश्यक होता है ।

प्रश्न-९ : देवों को किसी के मन को जानने की क्षमता होती है क्या ? उन्हें मन:पर्यव ज्ञान होता है क्या ?

उत्तर- मन:पर्यव ज्ञान मुनियों को, श्रमणों को ही हो सकता है । देवों को विशिष्ट अवधिज्ञान हो तो वे मन में मनन किये गये रूपी द्रव्यों को जान देख सकते हक्त । रूपी द्रव्यों को जानना अवधिज्ञान का विषय है । मन-वचन भी रूपी ही है अरूपी नहीं है । इस विषय को दर्शाने वाली एक घटना यहाँ चौथे उद्देशक में वर्णित है । वह इस प्रकार है- एक बार दो देव भगवान की सेवा में आये मन से ही व दन नमस्कार किया, मन से ही प्रश्न पूछा, भगवान ने भी मन से उत्तर दिया । देव स तुष्ट हुए । व दन नमस्कार कर यथास्थान बैठकर पर्युपासना करने लगे । गौतम स्वामी को जिज्ञासा हुई कि ये देव किस देवलोक से आये ? गौतम स्वामी उठकर भगवान के समीप गये, व दन करके पूछना चाहते ही थे कि स्वत: ही भगवान ने स्पष्टीकरण कर दिया कि तुम्हें यह जिज्ञासा हुई है । ये देव ही तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान कर देंगे । गौतम स्वामी ने पुन: भगवान को व दन नमस्कार किया और देवों के निकट जाने के लिये तत्पर हुए । देवों ने अपनी तरफ आते हुए गौतम स्वामी को देखकर स्वय प्रसन्न वदन गौतम स्वामी के निकट गये व दन नमस्कार किया और कहा- हम आठवें सहस्रार देवलोक के देव हक्त । हमने मन से ही व दन नमस्कार करके प्रश्न पूछा समाधान भी मन से ही पाया और पर्युपासना कर रहे हक्त । हमारा प्रश्न था भगवान के शासन में भगवान के जीवन काल में कितने जीव

मोक्ष जायेंगे ? उत्तर मिला कि ७०० श्रमण इस भव में मोक्ष जायेंगे । ***[इस पाठ के अनुसार गौतम स्वामी के १५०० केवली को लेकर भगवान के समवशरण में आने की बात बराबर नहीं है । क्यों कि उस समय भगवान का शासन ही चल रहा था ।]***

यहाँ देवो स ब धी वर्णन करते हुए यह भी समझाया गया है कि भले यह स्पष्ट है कि देव अस यत होते हक्त, उनमें ४ गुणस्थान ही होते हक्त । फिर भी भगवान ने गौतम स्वामी के पूछने पर यही समझाया कि देवों को अर्थात् उनके समक्ष उन्हें असय त नहीं कहना क्यों कि वह निष्ठुर वचन है । पुण्यवान पुढषों को उनके समक्ष निष्ठुर वचन कहना अविवेक एव असभ्यता का द्योतक है । उसी सत्य भाव को अन्य शब्दों में, भाषा में कहा जा सकता है अर्थात देव को **नोस यत** कहा जा सकता है । स यत और स यतास यत ये दोनों भी देवता के लिये नहीं कहे जा सकते हक्त । क्यों कि ऐसा कहने में असत्य वचन का दोष लगता है ।

देवों की भाषा अर्धमागधी है । जिस तरह स स्कृत, प्राकृत, अपभ्र श आदि भाषा कोई देश विशेष से स ब धित नहीं है किसी भी क्षेत्र से अप्रतिबद्ध स्वत त्र भाषा है वैसे ही अर्धमागधी देवों की भाषा **मनुष्य लोक के किसी क्षेत्र** से प्रतिबद्ध न होकर स्वत त्र अनादि शाश्वत भाषा है ।

व्युत्पत्ति अर्थ करते हुए इसे मागध देश की मुख्यता वाली मिश्रित भाषा भी माना जाता है । तथापि सभी तीर्थंकरों एव देवों की अनादि भाषा होने की दृष्टि से किसी देश विशेष से स ब धित नहीं करना ही उचित होता है ।

केवली का मन एव वचन प्रकृष्ट अर्थात् स्पष्ट होता है जिसे वैमानिक सम्यग्दृष्टि देव पर्याप्त एव उपयोगव त होवे तो अवधिज्ञान से जान सकते हैं । मिथ्यादृष्टि आदि नहीं जान सकते हैं ।

अनुत्तरविमान के देवों को भी अवधिज्ञान विशिष्ट होता है। जिससे उन्हें मनोद्रव्यवर्गणा लब्ध होती है । इसलिये वे देव वहाँ पर रहे हुए ही मनुष्य लोक में विचरने वाले केवलज्ञानी से वार्तालाप

प्रश्नोत्तर कर सकते हक्त, समझ सकते हक्त । अनुत्तर विमान के देवों के **मोहकर्म** अत्य त उपशा त होता है । पूर्व भव की सम्यग् आराधना का यह प्रभाव है ।

प्रश्न-१० : केवली के स ब धी यहाँ क्या-क्या विशेषताएँ कही गई है ?

उत्तर- यह जीव चरम शरीरी है, इसी भव में मोक्ष जायेगा, ऐसा केवलज्ञानी जानते हैं । छद्मस्थ स्वय के ज्ञान से नहीं जान सकता। किसी के पास से सुनकर पर परा से जान सकता है । चरम निर्जरा पुद्गलों को केवली जान सकते हक्त, छद्मस्थ नहीं जान सकते । केवली अप्रत्यक्ष देवों को मन से उत्तर दे सकते हक्त, वचन से वार्तालाप भी कर सकते हक्त । प्रत्यक्ष में उपस्थित देव से मन ही मन सवाल जवाब कर सकते हक्त । केवलियों का ज्ञान निरावरण होता है, इन्द्रियातीत होता है और सीमातीत होता है । उनके जानने-देखने की कोई क्षेत्र मर्यादा नहीं होती है । जानने-देखने में उन्हें इन्द्रियों के सहयोग की भी जरूरत नहीं होती है । वे केवलज्ञान-केवलदर्शन से सर्व भावों को जानते-देखते हक्त ।

केवली के भी काययोग की च चलता-अस्थिरता स्ववश नहीं होती है । छद्मस्थ के समान वे भी एक स्थान से हाथ उठाकर पुन: उन्हीं प्रदेशों पर नहीं रख सकते हक्त । पुन: उन्हीं आकाश प्रदेशों पर खडे होना, अवगाहन करना, उनके लिये भी शक्य नहीं है; यह काययोग की च चलता नामकर्म से होती है ।

प्रश्न-११ : 'उत्करिका भेद' लब्धि क्या है ?

उत्तर- इस लब्धि वाला एक घडे में से हजार घडे, एक वस्त्र में से हजार वस्त्र, एक चट्टाई में से हजार चट्टाई बना सकता है । वैसे ही एक-एक रथ, छत्र, द ड आदि से भी हजार हजार नग बना सकता है । तात्पर्य यह है कि उन्हीं लगे हुए पुद्गलों को उत्कीर्ण करके सघन को विरल कर-करके अनेक बना सकता है । यह लब्धि चौदपूर्वी श्रुतज्ञानी मुनिराज को होती है। अन्य किसी को होती है या नहीं इसका उल्लेख यहाँ पर नहीं है । ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥ उद्देशक-५ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-१२ : आर भिकी आदि पाँच क्रियाओं का क्या स्वरूप है और खोई हुई वस्तु की खोज करने वाले को तथा वस्तु को बेचने-खरीदने वाले को उन पाँच क्रियाओं में से कितनी क्रियाएँ लगती है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक -६ में कायिकी आदि से भिन्न पाँच क्रिया का निरूपण है । वे क्रियाएँ इस प्रकार हक्त- **(१) आर भिकी क्रिया-** जीव हिंसा के परिणामों से तथा अविवेक वृत्ति या उपेक्षा वृत्ति से जीव हिंसा हो या न भी हो तो यह आर भिकी क्रिया लगती है । यह क्रिया छट्ठे प्रमत्त गुणस्थान तक के जीवों को लगती है । सातवें आदि अप्रमत्त गुणस्थानों में जीव के इस क्रिया स ब धी कोई लक्षण नहीं होते हक्त।

(२) परिग्रहिकी क्रिया- मूर्च्छा और आसक्ति के परिणामों से, स यम के आवश्यक उपकरणों के अतिरिक्त अतिस ग्रह वृत्ति से जीव को परिग्रहिकी क्रिया लगती है । पाँचवें गुणस्थान तक के जीवों को यह क्रिया लगती है । छट्ठे गुणस्थान वाले किसी भी प्रकार के बहाव में स यम मर्यादातिरिक्त पदार्थों की स ग्रहवृत्ति में लग जाय अथवा क्षेत्र, शिष्य, समुदाय, श्रावक, खाद्य आदि पदार्थों में ममत्व-आसक्ति भावों की परिणति हो जाय तो उन्हें भी यह परिग्रहिकी क्रिया लगती है । तब वे छट्ठे गुणस्थान से हटकर पाँचवें गुणस्थान में प्रविष्ट हो जाते हक्त । क्यों कि परिग्रहिकी क्रिया योग्य लक्षण पाँचवें गुणस्थान तक ही शक्य है । छट्ठे गुणस्थान में वैसे परिणाम, वैसी वृत्ति और यह क्रिया नहीं होती है । अत: ऐसे आसक्ति, ममता, परिग्रह के लक्षण से जीव का छट्ठा गुणस्थान छूट जाता है ।

(३) मायाप्रत्ययिकी क्रिया- यह क्रिया चार कषाय में से किसी भी कषाय की विद्यमानता-अस्तित्व में लगती रहती है । इसलिये इस क्रिया का अस्तित्व १० वें गुणस्थान तक होता है । स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम क्रोधादि कोई भी कषाय में यह क्रिया चालु रहती है ।

(४) अप्रत्याख्यान क्रिया- व्रतप्रत्याख्यान के भावों के अभाव में चौथे गुणस्थान तक यह क्रिया लगती है । पाँचवें गुणस्थान में व्रत-

प्रत्याख्यान के भाव एव प्रवृत्ति चालु हो जाने से यह क्रिया ढक जाती है । पाँचवें गुणस्थान वाला जिन पदार्थों का त्याग नहीं करता है उनसे भी यह क्रिया नहीं लगकर परिग्रहिकी, आर भिकी आदि क्रिया लगती है । इस क्रिया का ऐसा ही स्वरूप है कि सर्वथा व्रताभाव में यह क्रिया जीव को चौथे गुणस्थान तक ही लगती है ।

(५) मिथ्यात्व क्रिया(मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया)- यह क्रिया मिथ्यात्व की मौजूदगी में जीव को प्रथम गुणस्थान में ही मुख्य रूप से लगती है। मिथ्यात्व के अभिमुख जीव को भी सूक्ष्म दृष्टि से यह क्रिया लगती है । खासकर सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थान से लेकर आगे के गुणस्थानों में जीव को यह क्रिया नहीं लगती है । मिथ्यात्व गुणस्थान के लक्षण, जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तरी भाग-२, पृष्ट-२४२ में विस्तार से दिये गयेहक्त ।

(१) खोई हुई वस्तु की खोज करने वाले अव्रती व्यक्ति के प्रयत्नों में उसे आर भिकी आदि चारों क्रियाएँ विशेष लगती है यदि वह मिथ्यात्वी है तो पाँचों क्रियाएँ लगती है । खोई वस्तु मिल जाने पर वह व्यक्ति सहज अवस्था में आ जाता है तब ये सभी (४ या ५) क्रियाएँ सूक्ष्म रूप से लगती है ।(२) बेची हुई वस्तु जब तक विक्रेता के पास पडी है तो विक्रेता को ४ या ५ विशेष क्रिया चालू रहती है, क्रेता को सूक्ष्म रूप से लगती है । खरीदने वाला वस्तु ले जाय तो उसे ४ या ५ क्रिया लगती है । विक्रेता को सूक्ष्म रूप से ४ या ५ क्रिया लगती है । यदि कीमत नहीं चुकाई तो उस धन से क्रेता को विशेष क्रिया और विक्रेता को सूक्ष्म ४ या ५ क्रियाएँ लगती है । कीमत मिल जाने पर धन निमित्तक ४ या ५ क्रियाएँ विक्रेता को लगती है । वस्तु से अब उसका कोई स ब ध नहीं होने से क्रिया नहीं लगती है ।

(३) प्रज्वलित होते हुए अग्निकाय के जीव विशेष विराधना करने वाले होने से महाआश्रव महाक्रिया वाले होते हक्त और जब अग्नि बुझने लगती है तब वे अग्निकायिक जीव अल्पक्रिया अल्प आश्रव वाले होते हक्त ।

(४) धनुष, बाण आदि जिन जीवों के शरीर से बने हक्त उन

जीवों को भी हि सक के जितनी ही **कायिकी आदि पाँच** क्रियाओं में से तीन, चार या पाँच क्रियाएँ लगती है । जब फेंका हुआ बाण अपने भार से नीचे गिरता हुआ हिंसा करे तो बाण के पूर्व जीवों को पाँच क्रिया और हि सक और धनुष के जीवों को ४ क्रिया लगती है ।

प्रश्न-१३ : नारकी जीव परस्पर दूर-दूर होते हैं या नजीक ?

उत्तर- जिस तरह गलियों में कुत्ते दूर-दूर रहते हक्त वैसे ही नारकी जीव अकेले अकेले स्वत त्र दूर-दूर रहते हक्त । आपस में मिलते रहते हक्त और झगडते रहते हक्त । फिर भी नारकी में (पहली में)एक स्थल ४००-५०० योजन के लगभग का ऐसा भी है जहाँ मेले में खचाखच भरे हुए लोगों की भीड के समान नैरयिक जीव भी खचाखच भरे रहते हक्त । इसी बात को ज्ञान के विभ्रम से अन्य मत वाले ऐसा मानते है कि मनुष्य लोक का ४००-५०० योजन का एक क्षेत्र ऐसा है जहाँ मनुष्य खचाखच भरे हुए रहते हक्त । पर तु उनका वह कथन भ्रमपूर्ण है, मिथ्या है ।

प्रश्न-१४ : आचार्य उपाध्याय को अपने गच्छ की जिम्मेदारी स भालने से क्या मिलता है ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-६ के अ त में बताया गया है कि जो आचार्य-उपाध्याय ढचिपूर्वक, उत्साहपूर्वक, खेद बिना अपनी जिम्मेदारी का यथार्थ पालन करते हक्त; अपना स यम उन्नत करते हुए सभी निश्रागत श्रमण-श्रमणियों का स यम भी उन्नत होने का ध्यान रखते हक्त; इस प्रकार के कर्तव्य पालन एव अपना स यम पालन करते हुए वे आचार्य-उपाध्याय सर्व कर्म क्षय करे तो उसी भव में मुक्त होवे, इतना लाभ प्राप्त करते हक्त; कर्म अवशेष रहे तो दूसरे या तीसरे मनुष्य भव से अवश्य मुक्त हो जाते हक्त । बीच के दो भव देव के गिनने से उत्कृष्ट पाँच भव करके अवश्य मुक्त होते हक्त । यदि आचार्य आदि कोई भी किसी पर झूठा आक्षेप लगाते हक्तो उन्हें भी उसी प्रकार के आक्षेप लगने का फल शीघ्र मिलता है ।

प्रश्न-१५ : आधाकर्मी आदि आहार के दोषों की उपेक्षा करने से क्या होता है ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक-६ में यह समझाया गया है कि गवेषणा के मुख्य दोष– आधाकर्म, क्रीत, स्थापना, रचित दोष एव क तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, बद्दलियाभक्त, ग्लानभक्त, शय्यातरपिंड, राजपिंड; इन दोषों के विषय में जो श्रमण (१) इसमें कुछ भी दोष नहीं है ऐसा मन में सोचे (२) ऐसा सोचकर खावे (३) ऐसा सोचकर अन्य को देवे (४) अनेक लोगों में ऐसी प्ररूपणा करे; इस प्रकार के प्रवर्तनों में यदि वह काल कर जाय तो विराधक होता है । कि तु अपनी भूल स्वीकार करके आलोचना प्रायश्चित्त कर लेवे तो वह आराधक होता है । ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न–१६ : परमाणु द्विप्रदेशी आदि के विषय में यहाँ पर क्या समझाया गया है ?

उत्तर– (१) सक प अक प– परमाणु द्विप्रदेशी स्क ध आदि जिस आकाश प्रदेशों पर स्थित है वहाँ से देश या सर्व चलित होने को देशक प और सर्वक प कहा गया है ।

परमाणु एक ही आकाश प्रदेश पर रहता है अत: उसमें सर्व सक प और सर्व अक प ऐसे **दो भ ग** ही होते हक्त ।

द्विप्रदेशी स्क ध जब दो आकाश प्रदेश पर स्थित हो तब एक आकाश प्रदेश पर स्थिर रहकर दूसरे आकाश प्रदेश को छोडकर अन्य आकाश प्रदेश को अवगाहन कर ले तो उसका **देश अक प** और **देश सक प** होता है । जब द्विप्रदेशी यथास्थान स्थित रहे तो **सर्व अक प** होता है और जब पूर्ण रूप से अपने स्थान से चलित हो जाय तो **सर्व सक प** होता है । इस तरह द्विप्रदेशी में **तीन विकल्प** होते हक्त ।

तीन प्रदेशी स्क ध में उपरोक्त तीनों विकल्प तो होते ही है उसके उपरा त **चौथा विकल्प** एक देश अक प और अनेक देश सक प का तथा **पाँचवाँ भ ग** अनेक देश अक प और एक देश सक प का भी होता है यों कुल **पाँच** विकल्प तीन प्रदेशी में होते हक्त । इस प्रकार तीनप्रदेशी उत्कृष्ट तीन आकाश प्रदेश पर स्थित हो सकता है तब उसका कोई एक प्रदेश स्थित रहे और एक या अनेक प्रदेश चलित होवे अथवा सभी प्रदेश चलित होकर स्थाना तरित होवे या सभी प्रदेश स्थित रहे यों कुल मिलकर **पाँच** विकल्प हो सकते हक्त ।

चार प्रदेशी से अन तप्रदेशी तक उपरोक्त ५ विकल्प तो होवे ही और **छट्ठा** विकल्प अनेकप्रदेश सक प और अनेक प्रदेश अक प का भी होता है तब चार में दो प्रदेश चलित और दो प्रदेश स्थित रहते हक्त ।

इस प्रकार सक प–अक प के **कुल–६ विकल्प** में से परमाणु में–२, द्विप्रदेशी में–३ तीन प्रदेशी में–५ और चार प्रदेशी से अन त प्रदेशी स्क ध तक सभी में ६ विकल्प सक प-अक प के होते हक्त । ६ विकल्प का खुलासा इस प्रकार है–

(१) सर्व सक प– परमाणु से अन तप्रदेशी तक सभी में ।
(२) सर्व अक प– परमाणु से अन तप्रदेशी तक सभी में ।
(३) देशसक प–देशअक प– द्विप्रदेशी से अन तप्रदेशी तक सभी में ।
(४) देशसक प–अनेक देश अक प– तीन प्रदेशी से आगे सभी में ।
(५) अनेक देश सक प, एक देश अक प–तीन प्रदेशी से आगे सभी में।
(६) अनेक देश सक प अनेक देश अक प–चार प्रदेशी से आगे सभी में।

विशेष– परमाणु से लेकर अन तप्रदेशी तक के सभी प्रकार के स्क ध एक आकाश प्रदेश पर स्थित हो सकते हक्त । तात्पर्य यह है कि द्विप्रदेशी आदि कोई भी स्क ध अपने प्रदेश स ख्या से कम आकाश प्रदेश पर (जघन्य एक आकाशप्रदेश पर भी) स्थित हो सकते हक्त किन्तु वे अपने प्रदेश स ख्या से ज्यादा आकाश प्रदेश का अवगाहन नहीं करते ।

(२) छेदन-भेदन-विभाग– परमाणु से लेकर अस ख्यप्रदेशी स्क ध तक का तलवार आदि शस्त्र से छेदन-भेदन नहीं होता । अन तप्रदेशी में सूक्ष्म और बादर दो प्रकार के स्क ध होते हक्त जिसमें सूक्ष्म अन तप्रदेशी का छेदन-भेदन नहीं होता, बादर स्क धों का शस्त्र से छेदन-भेदन आदि हो सकता है । अग्नि में जलना, पानी से भीगना आदि भी बादर अन त प्रदेशी स्क धों का होता है, सूक्ष्म अन तप्रदेशी स्क धों का एव परमाणु आदि का नहीं होता है ।

परमाणु तथा तीन, पाँच, सात आदि एकी स ख्या वाले प्रदेशमय स्क धों के दो सम, अर्ध विभाग नहीं होते हक्त अर्थात् आधा-आधा, डेढ

-डेढ, ढाई-ढाई, साडेतीन-साडेतीन ऐसे विभाग नहीं होते हैक्त कि तु बेकी स ख्या वाले दोप्रदेशी, चार प्रदेशी यों छ, आठ, दस, बारह प्रदेशी स्क धों के आधे-आधे दो विभाग हो सकते हक्त । स ख्यात, अस ख्यात और अन तप्रदेशी स्क धों में भी एकी स ख्या वालों में आधे-आधे दो विभाग नहीं होते और बेकी स ख्या वालों में आधे-आधे दो विभाग होते हक्त ।

समध्य– एकी स ख्या वाले परमाणु से अन तप्रदेशी तक के स्क ध समध्य होते हक्त और बेकी स ख्या में द्विप्रदेशी से लेकर अन तप्रदेशी तक के स्क ध समध्य नहीं होते हक्त ।

(३) पुद्‌गलों की परस्पर स्पर्शना– एक परमाणु दूसरे परमाणु को, द्विप्रदेशी स्क ध को यावत् अन तप्रदेशी स्क ध को स्पर्श कर सकता है । इसी तरह द्विप्रदेशी तीनप्रदेशी आदि स्क ध भी परमाणु से लेकर अन त प्रदेशी तक के स्क धों को स्पर्श कर सकते हक्त । यह स्पर्शना कोई किसी से देश से करता है, कोई कभी सर्व से करता है । अपना या अन्य का देश सर्व यों कुल ९ विकल्पों में से ये परमाणु आदि अलग-अलग स ख्या में विकल्पों से एक दूसरे को स्पर्श करते हक्त । नव विकल्प–भ ग इस प्रकार है– (१) देश से देश (२) देश से अनेकदेश (३) देश से सर्व (४) अनेक देश से देश (५) अनेक देश से अनेक देश (६) अनेक देश से सर्व (७) सर्व से देश (८) सर्व से अनेक देश (९) सर्व से सर्व ।

परमाणु में सर्व ही होता है, एक देश या अनेक देश नहीं होते । द्विप्रदेशी में **सर्व** और **एक** देश होता है अनेक देश नहीं होता क्यों कि उसमें अनेक देश से स्पर्शना होने का मतलब सर्व से ही स्पर्शना होना है उसको दो प्रदेश ही सर्व है । तीनप्रदेशी आदि में सर्व, एक देश और अनेक देश तीनों होते हक्त । इसलिये परमाणु में स्पर्शना के उत्कृष्ट सर्व के तीन भ ग होते हक्त । द्विप्रदेशी में उत्कृष्ट ६ भ ग होते हक्त– तीन सर्व के, तीन देश के । तीन प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक स्पर्शना के ९ ही भ ग होते हक्त । यथा–

परमाणु–परमाणु से– ९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
परमाणु–द्विप्रदेशी से– ७ वाँ ९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है।

परमाणु–तीनप्रदेशी से– ७वाँ, ८वाँ, ९वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
द्विप्रदेशी–परमाणु से– ३ रा और ९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
द्विप्रदेशी–द्विप्रदेशी से– १,३,७,९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
द्विप्रदेशी–तीनप्रदेशी से–१,२,३,७,८,९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
तीनप्रदेशी–परमाणु से– ३,६,९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है ।
तीनप्रदेशी–द्विप्रदेशी से–१,३,४,६,७,९ वाँ भ ग से स्पर्श करता है।
तीनप्रदेशी–तीनप्रदेशी से– सभी (९) भ गों द्वारा स्पर्श करता है ।

(४) पुद्‌गल स्क धों की कायस्थिति और अ तर–

(१) परमाणु की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्य काल । **अ तर**–जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल । द्विप्रदेशी आदि की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल । **अ तर**–जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन तकाल ।

(२) एक प्रदेशावगाढ स्वस्थान, परस्थान सक पमान की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग । अक पमान (स्थिर) की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्य काल । एक प्रदेशावगाढ के समान ही अस ख्य प्रदेशावगाढ तक सभी का कथन है । जो सक प की कायस्थिति है, वही अक प का अ तर है और जो अक प की कायस्थिति है, वही सक प का अ तर है ।

(३) एक गुण काला यावत् अन तगुण काला की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल। इसी तरह वर्णादि २० बोल समझना । कायस्थिति के समान ही इनका अ तर है ।

(४) सूक्ष्म परिणत पुद्‌गल और बादर परिणत पुद्‌गल की कायस्थिति एव अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल है ।

(५) शब्दपरिणत पुद्‌गल की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग । अशब्द परिणत की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल । **अ तर–** एक की कायस्थिति ही दूसरे का अ तर है ।

(६) सबसे अल्प कायस्थिति क्षेत्र पुद्‌गल की, उससे अवगाहन प्रदेश

स ख्या स्थान में स्थित पुद्गल की उत्कृष्ट कायस्थिति अस ख्यगुणी, उससे परमाणु आदि द्रव्यरूप में स्थित पुद्गल की उत्कृष्ट कायस्थिति अस ख्यगुणी, उससे एक गुण काला वर्ण आदि की उत्कृष्ट कायस्थिति अस ख्यगुणी है ।

तात्पर्य यह है कि कोई भी पुद्गल स्क ध का **स्थान परिवर्तन** जल्दी होता है, उससे उस स्क ध प्रदेशों की **अवगाहना का परिवर्तन** अधिक समय से होता है, उससे भी स्क धगत **प्रदेशों का परिवर्तन** अधिक समय से होता है, उससे भी स्क धगत **वर्णादि का परिवर्तन** अधिक समय से होता है । **जैसे कि–** कोई चार प्रदेशावगाढी २० प्रदेशी स्क ध तिरछे लोक के किसी स्थान पर है तो उसके उस स्थान में रहने की उत्कृष्ट कायस्थिति सब से कम होती है, फिर उसका स्थान परिवर्तन हो भी जाय तो चार आकाश प्रदेश की अवगाहना में अधिक समय रह सकता है, फिर उसकी ४ प्रदेश की अवगाहना में घट-वध हो भी जाय तो वह स्क ध २० प्रदेशी के रूप में अधिक समय रह सकता है । फिर उसकी प्रदेश स ख्या में घट-वध हो जाने पर भी एक गुण काला वर्णादि ज्यादा समय तक रह सकते हक्त । इस प्रकार क्रमशः क्षेत्र, अवगाहना, द्रव्य(प्रदेश) और भाव(गुण)की स्थिति अधिक-अधिक बन जाती है ।

प्रश्न–१७ : चौवीस द डक में आर भ और परिग्रह किस प्रकार बताया गया है ?

उत्तर– आर भ– कोई द डक में अव्रत की अपेक्षा जीव आर भ युक्त है और कोई साक्षात् छ काय जीवों की हिंसा करने से आर भ युक्त है । कुल मिलाकर २४ ही द डक के जीव आर भी है, अनार भी नहीं । मात्र मनुष्य में आर भी भी है और अनार भी भी है । अप्रमत्त स यत आदि उपर के गुणस्थानवर्ती मनुष्य अनार भी होते हक्त । छट्ठे गुणस्थान के मनुष्य आर भी-अनार भी दोनों होते हक्त । एक से पाँच गुणस्थान के सभी जीव आर भी है, अनार भी नहीं । अपेक्षा से पाँचवें गुणस्थान वाले प्रतिपूर्ण पौषध में और आजीवन अनशन में अनार भी हो सकते हक्त, उसे यहाँ गौण समझना तथा श्रावक के कुछ करण–योग पौषध में खुले होते हक्त एव स थारे में गृहस्थ सेवा परिचर्या करते हक्त जिससे

सूक्ष्म-अनुमोदन रूप आर भ चालु रहने से वे अनार भी नहीं होते हक्त ।

परिग्रह– नारकी और एकेन्द्रिय में– शरीर, कर्म एव सचित्त, अचित्त, मिश्र द्रव्यों का परिग्रह होता है । देवताओं में– शरीर, कर्म, भवन, विमान, देव-देवी, मनुष्य-मनुष्याणी, तिर्यंच-तिर्यंचाणी, आसन, शयन, भ डोपगरण एव अन्य सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्यों का परिग्रह होता है ।

विकलेन्द्रियों में– शरीर, कर्म और सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य तथा बाह्य भ डोपकरण, स्थान आदि का परिग्रह हो सकता है ।

तिर्यंच प चेंद्रियों में– शरीर, कर्म, सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य, जलीय स्थान–तालाब, नदी आदि । स्थलीय स्थान– पर्वत, ग्रामादि, वन उपवन आदि, घर मकान, दुकान आदि, खड्डे खाई कोट आदि, तिराहे चौराहे आदि, वाहन बर्तन आदि, देव देवी, मनुष्य मनुष्याणी, तिर्यंच तिर्यंचाणी, आसन, शयन, भ डोपकरण ।

मनुष्य में– तिर्यंच प चेन्द्रिय के समान है । विशेषता– धन स पत्ति, सोना, चाँदी आदि, खाद्यसामग्री, व्यापार, कारखाने आदि सभी प्रकार का परिग्रह तिर्यंच प चेन्द्रिय से विशेष एव स्पष्ट रूप से होता है । यों २४ ही द डक में परिग्रह स ज्ञा मानी गई है किसी में स्थूल दृष्टि से ए व किसी में सूक्ष्म–सूक्ष्मतम दृष्टि से परिग्रह स ज्ञा समझी जा सकती है । ॥ उद्देशक–७ स पूर्ण ॥

नोंध– हेतु–अहेतु स बधी विषय जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तरी भाग–२, पृष्ट–१४६ में देखें ।

प्रश्न–१८ : सप्रदेशी–अप्रदेशी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव से क्या है?

उत्तर– द्रव्य से– परमाणु अप्रदेशी है शेष सभी स्क ध सप्रदेशी है। क्षेत्र से एक आकाश प्रदेशावगाढ सभी स्क ध अप्रदेशी है और अनेक आकाश प्रदेश अवगाढ सभी स्क ध सप्रदेशी है । काल से– एक समय की स्थिति के पुद्गल अप्रदेशी है और शेष सभी स्थिति के पुद्गल सप्रदेशी है । भाव से– एक गुण काला, नीला आदि २० बोल अप्रदेशी है । द्विगुण काला आदि सभी वर्णादि सप्रदेशी है।

सप्रदेश–अप्रदेश परस्पर– (१) द्रव्य अप्रदेश=परमाणु– वह क्षेत्र से अप्रदेश होता है, काल से सप्रदेश–अप्रदेश दोनों होता है और भाव से

भी दोनों प्रकार का होता है । (२) क्षेत्र अप्रदेश=एक प्रदेशावगाढ– द्रव्य से दोनों, काल से दोनों, भाव से दोनों (३) काल अप्रदेश=एक समय स्थितिक– द्रव्य से दोनों, क्षेत्र से दोनों, भाव से दोनों (४) भाव से अप्रदेश= एक गुण काला आदि– द्रव्य से दोनों, क्षेत्र से दोनों, काल से दोनों, भाव से खुद में अप्रदेश, शेष १९ में दोनों । (५) द्रव्यसप्रदेश= द्विप्रदेशी आदि– क्षेत्र से दोनों, काल से दोनों, भाव से दोनों (६) क्षेत्र सप्रदेश=अनेक प्रदेशावगाढ– द्रव्य से सप्रदेश, काल से दोनों, भाव से दोनों (७) काल से सप्रदेश– द्रव्य से दोनों, क्षेत्र से दोनों और भाव से दोनों (८) भाव से सप्रदेश– द्रव्य से दोनों, क्षेत्र से दोनों, काल से दोनों और भाव से खुद में सप्रदेश अन्य १९ में सप्रदेशी अप्रदेशी दोनों ।

अल्पबहुत्व– १. सबसे थोडा भाव अप्रदेश २. कालअप्रदेश अस ख्य गुणा ३. द्रव्य अप्रदेश अस ख्यगुणा ४. क्षेत्र अप्रदेश अस ख्यगुणा ५. क्षेत्रसप्रदेश अस ख्यगुणा ६. द्रव्यसप्रदेश विशेषाधिक ७. कालसप्रदेश विशेषाधिक ८. भावसप्रदेश विशेषाधिक ।

प्रश्न–१९ : वर्धमान–हायमान जीव किस तरह समझना ?

उत्तर– द डकों में जीव बढे तो **वर्धमान** और जीव घटे तो **हायमान** तथा घट-वध नहीं होवे तो **अवस्थित** जीव कहलाते हक्त । नये जीव जन्मे तो बढते हक्त, जीव मरकर अन्यत्र जावे तो घटते हक्त, नहीं जन्मे और नहीं मरे तो अवस्थित स ख्या रहती है ।२४ द डक में जीव घटते भी हक्त, बढते भी हैं और विरहकाल में अवस्थित भी रहते हक्त । सिद्ध बढते हक्त और अवस्थित रहते हक्त; घटते नहीं । समुच्चय जीव है जितने ही रहते हक्त घट-वध नहीं होती ।

स्थिति– २४ द डक में वर्धमान एव हायमान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग की है, इतने समय तक जीव घटते या बढते रह सकते हैक्त । सिद्धों में वर्धमान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आठ समय । इतने समय तक निर तर सिद्ध हो सकते हक्त फिर विरह पड जाता है ।

अवस्थान काल– समुच्चय जीव में सर्वद्धा(सदाकाल), सिद्धों में अवस्थान काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट ६ महीना, सिद्ध होने के विरह पडने की

अपेक्षा । १९ द डक में अवस्थान काल अपने-अपने विरह काल से दुगुना । कारण कि एक बार उत्कृष्ट विरह पडे फिर जितने जन्मे उतने ही मर जाय, उसके बाद फिर उत्कृष्ट विरह पड जाय तो जीवों का उत्कृष्ट अवस्थान काल विरहकाल से दुगुना हो जाता है । एकेन्द्रिय में– वर्धमान, हायमान और अवस्थित तीनों काल उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग है, उसके बाद परिवर्तन हो जाता है ।

प्रश्न–२० : सोवचय–सावचय जीव किस तरह समझना ?

उत्तर– इन्हें चार विकल्प से समझाया गया हक्त– (१) सोवचय– जीव आवे, जन्मे । (२) सावचय– जीव निकले, मरे । (३) सोवचय-सावचय– जीव जन्मे भी मरे भी(आवे भी जावे भी) । (४) निढवचय-निरवचय– जीव न जन्में न मरे(न आवे न जावे) है जितने ही रहें ।

२४ द डक में– पाँच स्थावर में जन्म–मरण निर तर चालु होता है अत: सोवचय–सावचय का तीसरा भ ग मात्र ही होता है । शेष १९ द डक में चारों विकल्प होते हक्त । सिद्धों में पहला सोवचय और चौथा निढवचय-निरवचय ये दो विकल्प होते हक्त ।

स्थिति– एकेन्द्रियों में तीसरे भ ग की स्थिति सर्वद्धा–सदाकाल की होती है । सिद्धों में पहले भ ग की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आठ समय और चौथे भ ग की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट छ महीने की होती है । समुच्चय जीव में चौथे भ ग की स्थिति सर्वकाल की होती है । शेष १९ द डकों में तीन भ गों की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग । चौथे भ ग की स्थिति विरहकाल के समान होती है अथवा उपरोक्त अवस्थान काल से आधी होती है । जघन्य स्थिति सभी विकल्पों में एक समय की होती हक्त । ॥ उद्देशक–८ स पूर्ण ॥

प्रश्न–२१ : राजगृह नगर किसे कहा जा सकता है ?

उत्तर– राजगृह नगर में रहे पृथ्वी, पानी, पर्वत, उद्यान, अग्नि, हवा, वनस्पति, स्मशान, मनुष्य, पशु आदि सभी सचित्त अचित्त मिश्र पदार्थ राजगृह नगर है अर्थात् सभी पदार्थ मिलकर ही राजगृह नगर का अस्तित्व है । इनके अभाव में स्वत त्र राजगृह कोई वस्तु नहीं है ।

अतः उपरोक्त राजगृह की सभी वस्तुओं को एक अपेक्षा से राजगृह नगर कहा जा सकता है ।

प्रश्न-२२ : अ धकार-उद्योत का चोवीस द डक में किस प्रकार निरूपण है ?

उत्तर- शुभ पुद्‌गलों से और शुभ पुद्‌गल परिणमन से दिन में प्रकाश होता है और अशुभ पुद्‌गल के परिणमन से रात्रि में अ धकार होता है ।

नारकी, एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय के अशुभ पुद्‌गल परिणमन होने से उनके अ धकार ही कहा गया है । उन्हें अ धकार की ही अनुभूति होती है । नारकी में चक्षु है पर तु प्रगाढ अ धकार होता है अतः प्रकाश का अनुभव नहीं है, एकेन्द्रियादि में आँख नहीं होने से शुभाशुभ पुद्‌गल परिणमन होने पर भी अ धकार का ही अनुभव होता है ।

चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय और मनुष्य में शुभाशुभ दोनों प्रकार के पुद्‌गल परिणमन है और आँखे भी है अतः उनके अ धकार-उद्योत दोनों की अनुभूति होती है ।

देवों के शुभ पुद्‌गल परिणमन होने से एव केवल प्रकाश का अनुभव होने से एक मात्र प्रकाश ही माना गया है ।

इस प्रकार प्रकाश की अनुभूति के लिये आँख और शुभ पुद्‌गल स योग दोनों जरूरी होते ह्क्त ।

प्रश्न-२३ : दिन, रात, वर्ष आदि की अनुभूति किन-किन जीवों को होती है ?

उत्तर- समय आदि अर्थात् दिवस-रात्रि वगैरह की अभिव्यक्ति सूर्य की गति से होती है । सूर्य भ्रमण केवल मनुष्य लोक में ही होता है । अतः मनुष्य क्षेत्र में ही कालज्ञान है । जिससे मनुष्य को ही समय, आवलिका, मुहूर्त, रात-दिन, वर्ष आदि बीतने का ज्ञान एव अनुभव होता है । शेष सभी द डकों में काल का वर्तन है कि तु जीवों को उसका ज्ञान-अनुभव नहीं है । देवों को भी मुहूर्त, दिन, महीना, वर्ष आदि का ज्ञान एव उपयोग नहीं है । अवधिज्ञान में उपयोग लगाने

पर वे मनुष्य लोक में होने वाले रातदिन, महीना आदि जान सकते ह्क्त और वे मनुष्य लोक में आते है तब भी यहाँ के दिन रात आदि कालमान को जानते ह्क्त, समझते ह्क्त कि तु उनको देवलोक में इस कालमान की कोई गिनती नहीं है एव उपयोगिता भी नहीं है । दिन से भी ज्यादा उजाला वहाँ निर तर रहता है ।

मनुष्य लोक में जो तिर्यंच प चेंद्रिय है, वे दिन, रात को देखते जानते ह्क्त तथापि क्षयोपशम की म दता से उन्हें भी मुहूर्त दिन महीने वर्ष आदि की गिनती का ज्ञान नहीं होता और कोई प्रयोजन भी उन्हें नहीं होता ।

इस प्रकार काल का वास्तविक सहज ज्ञान मनुष्यलोक में मनुष्यों को होता है । देवों-तिर्यंचों को अपेक्षा से अल्पतम होता है । शेष द डकों में कालज्ञान का अभाव है । फिर भी काल का वर्तन-बीतना तो सर्वत्र होता है ।

प्रश्न-२४ : भगवान महावीर स्वामी ने २३ वें तीर्थंकर पार्श्व प्रभू के नाम से क्या निरूपण किया था और क्यों ?

उत्तर- घटना उस समय की है जब गौशालक भी २४ वें तीर्थंकर के नाम से विचरण कर रहा था । पार्श्व प्रभु के शासन के कुछ स्थविर अपने यथायोग्य स घाडे से विचरण कर रहे थे । उन्होंने दो-दो २४वें तीर्थंकर के विचरने की बात जानी । एक बार कोई नगरी में भगवान महावीर स्वामी के विराजने की जानकारी हुई । उन्हें स देह था कि कौन तीर्थंकर सही है ? वे किसी समय भगवान के समीप में पहुँच कर व दन व्यवहार किये बिना ही खडे होकर सीधे ही भगवान से प्रश्न करने लगे । भगवान तो सर्वज्ञ थे उन्हें तो ऐसे व्यवहार से कोई नवाई नहीं होती थी । प्रश्न भी परीक्षात्मक था, जिज्ञासा से नहीं था इसलिये सरल बात भी चक्कर देकर पूछी थी- भ ते ! क्या, अस ख्य लोक में अन त रात-दिन बीते ह्क्त बीतेंगे, हुए ह्क्त होंगे और परित्त रात-दिन भी बीते ह्क्त बीतेंगे ?

स्थविरों के अ तर आशय को समझकर प्रभू ने लोक का स्वरूप पार्श्वनाथ भगवान के नाम से निरूपित किया कि- पार्श्वनाथ

पुढषादानीय अर्हंत भगव त ने शाक्तत अनादि अनवदग्र लोक कहा है । क्षेत्र से परिमित गोलाकार लोक कहा है, जो नीचे विस्तीर्ण, मध्य में स क्षिप्त और उपर विशाल है, नीचे पल्य क स स्थान, मध्य में श्रेष्ठ वज्राकार, उपर खडी मृद गाकार है । उसमें अन त जीव भी उत्पन्न होते हक्त, मरते हक्त; परित्त जीव भी उन्पन्न होते हक्त, मरते हक्त । जीवों, अजीवों से पहचाना जाता यह लोक है। अन त जीवों पर दिनरात बीतते हक्त और परित्त जीवों पर भी दिन–रात बीतते हक्त और लोक अस ख्यप्रदेशात्मक ही है । अत: अस ख्यप्रदेशी इस लोक में अन त जीवों की अपेक्षा अन त रात–दिन और परित्त जीवों की अपेक्षा परित्त रात–दिन हुए हैक्त, होते हक्त, बीते हक्त, बीतते हक्त, नष्ट हुए है और नष्ट होवेंगे ।

इस प्रकार बिना किसी असम जस के सहज सरलता युक्त उत्तर और अपने भगवान पार्श्व प्रभू के सन्मान से भरा उत्तर सुनकर स्थविर स तुष्ट हुए और अपने मतिश्रुत की निर्मलता से निर्णय भी कर पाये कि ये ही २४वें तीर्थंकर है । ऐसा निर्णय हो जाने पर व दन नमस्कार करके वे प्रभु महावीर के शासन में पुन: महाव्रतारोपण कर दीक्षित हो गये । छेदोपस्थानीय चारित्र की मर्यादा में उपस्थित होकर तप–स यम का आराधन कर, कितने ही श्रमण उसी भव में मोक्षगामी हुए और कई देवलोक में उत्पन्न हुए ।

ऐसा भव्य जीवों के समाधान और उद्धार का प्रस ग केवलज्ञान से जानकर तीर्थंकर भी पूर्व तीर्थंकर के नाम से निरूपण कर सकते हक्त । कभी ऐसे प्रस ग पर सामने अन्य मतावल बी हो तो उनके मान्य शास्त्रों के स्थलनिर्देश पूर्वक भी तत्त्व निरूपण और श का का समाधान किया जा सकता है । उद्देश्य सही होने से सामने वाले पर सही प्रभाव होता है और उसका भला ही होता है, उद्धार हो जाता है । ॥ उद्देशक–९ स पूर्ण॥ ॥ उद्देशक–१० स क्षिप्त ॥

शतक–६ : उद्देशक–१ से १०

प्रश्न–१ : इस छट्ठे शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस शतक में भी १० उद्देशकों के विभाजन से अनेक छोटे–बडे विषयों को लेकर निरूपण किया गया है । मात्र दूसरे उद्देशक में प्रज्ञापना सूत्र की भलावण पूर्वक आहार वर्णन का स क्षिप्त सूचन है । शतक के प्रार भ में १० उद्देशकों के नाम या विषयों की सूचना देने वाली एक स ग्रहणी गाथा दी गई है तदनुसार उद्देशकों के नाम एव विषय इस प्रकार है–

(१) **वेदना–** इस उद्देशक में महावेदना, महानिर्जरा एव प्रशस्त निर्जरा स ब धी निरूपण है ।

(२) **आहार–** स क्षिप्त सूचन है ।

(३) **महाश्रव–** इस उद्देशक में महाकर्म–अल्पकर्म के विषय को समझाया है एव कर्म स ब धी अन्य विषय भी स्पष्ट किये हक्त ।

(४) **सप्रदेश–** इस उद्देशक में जीव के परिणाम रूप १४ बोल(द्वार) में स्थिति की अपेक्षा सप्रदेशी–अप्रदेशी का निरूपण, समुच्चय जीव और २४ द डक के जीव एव सिद्धों के आधार से किया गया है ।

(५) **तमस्काय–** इस उद्देशक में तमस्काय, कृष्णराजि और लोका तिक विमान स ब धी तथा लोका तिक देव परिवार स ब धी वर्णन है ।

(६) **भविक–** इस उद्देशक में जीवों के आवास का तथा मारणा तिक समुद्धात में आहार स ब धी वर्णन है ।

(७) **शाली–** शाली आदि धान्यों की योनि के सचित्त रहने का काल तथा गणना काल और उपमाकाल का स्वरूप वगेरे वर्णन है एव प्रथम आरे के भावों का स क्षिप्त कथन है ।

(८) **पृथ्वी–** नरकपृथ्वी एव देवलोक में घर, गाँव, बादल आदि की पृच्छा, आयुब ध के १२ आलापक, अस ख्य द्वीप–समुद्र का वर्णन है ।

(९) **कर्म–** एक कर्मब ध में अन्य कर्मब ध की नियमा भजना, अवधिज्ञान सामर्थ्य, विकुर्वणा सामर्थ्य आदि विषय निरूपित है ।

(१०) अन्यतीर्थिक– अन्यतीर्थिकों की मान्यता का निराकरण किया गया है । जीव स्वरूप, सुख-दु:ख का वेदन, केवली के प्रत्यक्ष ज्ञान की विशेषता वगेरे वर्णन निरूपित है ।

प्रश्न-२ : वेदना और निर्जरा का परस्पर साम जस्य किस प्रकार किया है ?

उत्तर– नैरयिकों की वेदना और श्रमणों के भी कष्ट-उपसर्ग के समय वेदना तीव्र तीव्रतम होती है । तब उदय में आये अशाता वेदनीय कर्मों की निर्जरा भी महान होती है पर तु महावेदना अल्प वेदना, महानिर्जरा अल्प निर्जरा में जो प्रशस्त निर्जरा होती है, वही श्रेष्ठ होती है ।

यदि नारकी की महावेदना-निर्जरा और अणगार की अल्प वेदना-निर्जरा में तुलना की जाय तो अणगार की प्रशस्त निर्जरा है वह श्रेष्ठ है और उसी की महत्ता है । नारकी में कर्म वेदन से उन कर्मों की निर्जरा होती है सत्ता नष्ट होती है तथापि जिस तरह एरण पर जोर-जोर से चोट करने पर भी कम पुद्‌गल क्षीण होते हक्त, वैसे ही नारकी की आत्मा से कर्मनिर्जरा अल्प होती है, क्यों कि उनके कर्म चिकने एव गाढ होते हक्त ।

जैसे अग्नि में घास, गर्म तवे पर पानी तत्काल नष्ट हो जाता है वेसे ही अणगार के तपस यम से महान कर्म शीघ्र क्षय होते हक्त ।

करण-वेदना– मन, वचन और काया और कर्म ये ४ करण है । इन चारों के अशुभ होने से नारकी जीव अशाता वेदना वेदते हक्त । देव शुभ करणों से शाता वेदना वेदते हक्त और तिर्यंच, मनुष्य शुभाशुभ करणों से शाता-अशाता दोनों वेदना वेदते हक्त ।

वेदना-निर्जरा की चौभ गी– (१) कई जीव महावेदना महानिर्जरा वाले होते हक्त, यथा- पडिमाधारी साधु । पडिमा स ब धी नियम ही कष्ट साध्य होते हक्त अत: वेदना भी बहुत होती है तथा वे सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यग् सहन करते हक्त अत: प्रशस्त निर्जरा होती है ।(२) कई जीव महावेदना अल्प निर्जरा वाले होते हक्त, यथा-नारकी जीव । (३) कई जीव अल्पवेदना महानिर्जरा वाले होते हक्त, यथा- शैलेशी प्रतिपन्न अणगार । (४) अल्पवेदना अल्पनिर्जरा वाले कई जीव होते हक्त,

यथा- अणुत्तर विमान के देव । ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण॥ उद्देशक-२ स क्षिप्त है ॥

प्रश्न-३ : कर्मोपचय आदि में वस्त्र के साथ तुलना किस प्रकार की गई है ?

उत्तर– जिस प्रकार नया वस्त्र उपयोग में आते मैल का स ग्रह कर एक दिन **मसोता** (मैला चीथडा)सरीखा हो जाता है और वही क्षार में भिगो देने से और जल से धोने से धीरे-धीरे मैलरहित हल्का हो जाता है । वैसे महाश्रव महाक्रिया वालों को कर्मस ग्रह निर तर होता है और अल्पक्रिया अल्पाश्रव वाले निर्ग्रंथों के कर्म निर तर क्षीण होते रहने से आत्मा हलुकर्मी पवित्र बन जाती है ।

वस्त्र में पुद्‌गलोपचय विश्रसा-स्वाभाविक और प्रयोगसा-प्रयत्न से यों दोनों प्रकार से होता है कि तु जीवों के कर्मोपचय केवल प्रयोग सा ही होता है, विश्रसा-स्वाभाविक अर्थात् प्रयत्न बिना कर्मोपचय नहीं होता है ।

वस्त्र का पुद्‌गलोपचय, स्थिति की अपेक्षा सादि सा त होता है कि तु जीव के कर्मोपचय तीन प्रकार का होता है-(१) अनादि अन त- अभवी की पर परा से (२) अनादि सा त- भवी की पर परा से (३) सादिसा त- ईर्यावहि ब ध अथवा प्रत्येक कर्मब ध की अपेक्षा सभी कर्म सादि सा त ब धते हक्त । पर परा की अपेक्षा **दो भ ग** होतेहक्त- १. अनादि सा त भवी की अपेक्षा २. अनादि अन त अभवी की अपेक्षा । सादि अन त का भ ग कर्मब ध में होता ही नहीं है क्यों कि आदि है तो अ त होगा ही । वस्त्र स्वय सादि सा त ही होता है । जीव भी गति द डक की अपेक्षा सादिसा त होते हक्त सिद्ध सादि अन त है । भवी जीव लब्धि की अपेक्षा अनादि सा त है और अभवी जीव स सारी की अपेक्षा अनादि अन त है । इस तरह वस्त्र में **एक** भ ग और जीव के **चार** भ ग होतेहक्त ।

प्रश्न-४ : कर्मों की ब धस्थिति के साथ 'अबाहा, अबाहुणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो' इन शब्दों का क्या आशय है ?

उत्तर– आठों कर्मों का यहाँ तीसरे उद्देशक में जघन्य उत्कृष्ट ब धकाल

बताया गया है । उत्कृष्ट स्थिति के साथ प्रश्नोक्त वाक्य है यथा– ज्ञानावरणीय कर्म ब ध में– उक्कोसेण तीस सागरोवम कोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइ अबाहा, अबाहुणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो । अर्थ– ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट ब ध ३० कोडाकोडी सागरोपम का होता है उसमें से तीन हजार वर्ष का अबाधाकाल होता है । इस अबाधाकाल जितना छोडकर शेष कर्म स्थिति में कर्म पुद्‌गलों की निषेक रचना होती है । तात्पर्य यह है कि अबाधाकाल जितनी तीन हजार वर्ष की स्थिति में कर्मप्रदेश ब ध न होकर शेष ३० कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में कर्मप्रदेशों की निषेक रचना युक्त ब ध होता है । इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि ३००० वर्ष की स्थिति तक प्रदेशब ध भी नहीं होने से प्रदेशोदय या विपाकोदय कुछ भी नहीं होता है । सात कर्मों के लिये उपरोक्त स्पष्ट पाठ है अत: उन सातों कर्मों के उत्कृष्ट स्थिति ब ध में अबाधाकाल जितना समय न्यून समय की ही कर्म पुद्‌गलों के ब ध की निषेक रचना होती है और उस अबाधा-काल के समय के बीतने के बाद ही प्रदेशोदय या विपाकोदय का जैसा भी स योग होता है, वह कर्म उदय में आता है ।

आयुष्य कर्म के अबाधाकाल का हिसाब सात कर्मों से भिन्न तरह का है । सात कर्मों में उत्कृष्ट जितने क्रोडाक्रोडी सागरोपम होते हक्त उसके अनुपात में अबाधाकाल एक निश्चित्त हिसाब से होता हक्त, यथा– ७० क्रोडाक्रोड सागर ब ध का ७००० वर्ष, २० क्रोडाक्रोड सागर ब ध का २००० वर्ष, १५ क्रोडाक्रोड सागरब ध का १५०० वर्ष, १० क्रोडाक्रोड सागर ब ध का १००० वर्ष का अबाधाकाल होता है । यह एक निश्चित्त गणित हिसाब वाला अबाधाकाल हक्त ।

आयुष्य कर्म में ऐसा कुछ नहीं है । उसमें तो जीव अपने चालु भव का जितना समय बाकी रहने पर आयुष्य बा धेगा उतना ही अबाधाकाल होगा । यथा– उम्र का अ तर्मुहूर्त शेष रहने पर तेतीस सागरोपम का आयुष्य ब ध किया तो अबाधाकाल अ तर्मुहूर्त का ही होगा । १० वर्ष मनुष्य उम्र का बाकी रहने पर ३३ सागरोपम का आयुष्य ब ध किया तो १० वर्ष का अबाधाकाल होगा । एक क्रोड पूर्व का तीसरा भाग शेष रहने पर कोई १०००० वर्ष देवायु का ब ध

करे तो अबाधाकाल क्रोडपूर्व का तीसरा भाग रहेगा । किसी जीवने ५००००(पचास हजार) वर्ष की उम्र बाकी रहने पर १० हजार वर्ष के देवायु का ब ध किया तो ५०००० वर्ष का अबाधाकाल रहेगा अर्थात् अगले भव के आयुब ध से उसका अबाधाकाल ही ज्यादा हो जाता है । कभी अत्य त अल्प ही अबाधाकाल होता है । इसलिये शास्त्रकार ने आयुष्य कर्म में उक्त पाठ में भिन्नता रखी है उसमें **‘अबाहुणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो’** ऐसा नहीं कहकर **‘कम्मठिई कम्मणिसेगो’** कहा है अर्थात् स पूर्ण कर्म स्थिति में कर्मप्रदेशों की निषेक रचना होती है । अत: आयुकर्म में अबाधाकाल को छोडकर निषेक रचना नहीं होकर अबाधाकाल सहित स पूर्ण स्थिति में कर्म प्रदेशों की निषेक रचना होती है ।

वास्तव में तो आयुष्य कर्म में अबाधाकाल कहने की पर परा मात्र बन गई है । शास्त्र में तो आयुष्य कर्म का अबाधाकाल कहा ही नहीं है केवल उत्कृष्ट स्थितिब ध ही कहा है और उस स्थितिब ध में सर्वत्र निषेक रचना होती है । उस आयुष्य कर्म के उदय योग्य स योग नहीं होने से और पूर्व का आयुष्यकर्म क्षय नहीं होने से अगले आयुष्य का विपाकोदय चालु नहीं होता है, प्रदेशोदय तो आयुष्य कर्मब ध के बाद तुर त चालु हो जाता है ।

स्त्रीवेद का ब ध करने वाला तीसरे आदि देवलोक में चला जाता है तो उसका अबाधाकाल नहीं रहने पर भी अनेक सागरोपम तक स्त्रीवेद का विपाकोदय नहीं होकर प्रदेशोदय ही होता है । उसी तरह आयुष्य कर्म का कोई अबाधाकाल ही शास्त्रकार ने कहा नहीं है । अत: स योगाभाव और पुराने आयुकर्म के सद्‌भाव में अगले आयुष्य का प्रदेशोदय होता है । आयुष्य कर्म का अबाधाकाल मानने की जरूरत ही नहीं है । मूलपाठ देखने से ही यह वास्तविकता समझी जा सकती है । किसी भी प्रत में आयुकर्म का अबाधाकाल कहा ही नहीं है मात्र उत्कृष्ट स्थिति ब ध कहकर **‘कम्मठिई कम्मणिसेगो’** कह दिया है ।

इसलिये आगे के भव का आयुष्य कर्म ब धने के तुर त बाद उसका प्रदेशोदय चालु होता है विपाकोदय मृत्यु होने पर ही अगले

भव का प्रार भ होता है, तभी कर्म का वेदन कहलाता है- **'उदओ विवाग वेयणो'**-विपाक से कर्मवेदन ही उदय की गिनती में गिना जाता है ।

अन्य सातकर्मों के जो भी नये ब ध होते हक्त उनके अबाधाकाल के समय के बीतने के बाद ही प्रदेशोदय चालु होता है । विपाकोदय प्रस ग स योग होने पर ही होता है। यथा- अशाता वेदनीय कर्म का किसी ने ३० क्रोडाक्रोड सागरोपम का ब ध किया काला तर से स यम का आराधक होकर और मरकर अनुत्तर विमान में देव बना तो ३००० वर्ष तक प्रदेशोदय भी नहीं होगा उसके बाद उस देव के प्रदेशोदय अशाता वेदनीय का होता रहेगा कि तु अशाता का विपाक उदय ३३ सागर की उम्र पूर्ण करने के बाद मनुष्य बनने के बाद ही होगा । अनुत्तर देवों के अशाता का प्रस ग स योग नहीं होने से विपाकोदय पूरे भव तक नहीं होता है । प्रदेशोदय से वे कर्म पुद्गल क्षीण हो जाते हक्त । उस ३३ सागर के प्रदेशोदय को अबाधाकाल नहीं कहा जाता ।

प्रश्न-५ : '५० बोल की ब धी' इस का क्या मतलब है ?

उत्तर- तीसरे उद्देशक में १५ द्वारों के ५० बोलों पर आठ कर्मब ध की नियमा-भजना अथवा अब ध का निरूपण किया गया है। ऐसा समुच्चय जीव का कथन करके फिर २४ द डक में भी ५० बोल में से जितने बोल पावे उन बोलों पर आठ कर्मब ध की नियमा-भजना अथवा अब ध का निरूपण किया गया है । इसलिये इस प्रकरण को **५० बोल की ब धी** कहा जाता है । वे १५ द्वार और ५० बोल इस प्रकार है-

(१)	वेद-	तीन वेद और अवेदी ।	४
(२)	स यत-	स यत, अस यत, स यतास यत, नोस यतादि	४
(३)	दृष्टि-	सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि मिश्रदृष्टि	३
(४)	स ज्ञी-	सन्नी, असन्नी, नोसन्नी आदि	३
(५)	भवी-	भवी, अभवी, नोभवी नोअभवी	३
(६)	दर्शन-	चक्षु आदि चार दर्शन	४
(७)	पर्याप्त-	पर्याप्त, अपर्याप्त, नोपर्याप्तादि	३
(८)	भाषक-	भाषक, अभाषक	२

(९)	परित्त-	परित्त, अपरित्त, नोपरित्तादि	३
(१०)	ज्ञान-	पाँच ज्ञान, ३ अज्ञान	८
(११)	योग-	मन, वचन, काया, अयोगी	४
(१२)	उपयोग-	साकारोपयोग, अणागारोपयोग	२
(१३)	आहारक-	आहारक, अनाहारक	२
(१४)	सूक्ष्म-	सूक्ष्म, बादर, नोसूक्ष्मादि	३
(१५)	चरम-	चरम, अचरम	२
		समुच्चय जीव में बोल	**५०**

पचास बोल में से नारकी आदि में- पहली नारकी में-३४ । शेष ६ नरक में-३३, भवनपति व्य तर में-३५ । ज्योतिषि और दो देवलोक में-३४, तीसरे देवलोक से ग्रेवेयक तक-३३ । अनुत्तर देवों में-२५ । पाँच स्थावर में-२३ । असन्नि मनुष्य में-२२ । बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय में-२७ । चौरेन्द्रिय, असन्नि तिर्यंच प चेंद्रिय में-२८ । सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय में-३६ । सन्नी मनुष्य में-४३ । समुच्चय जीवों में-५० । सिद्धों में-१६ ।

समुच्चय जीव में ५० बोलो में से प्रत्येक बोल में आठ कर्मों में से कितने कर्म का ब ध नियमा से होता है, कितने कर्म का ब ध भजना से होता है या अब ध-ब ध होता ही नहीं इत्यादि विवरण इस प्रकरण में स्पष्ट किया गया है । यथा- तीन वेद में समुच्चय जीव के आयुष्य कर्मब ध की भजना(क्यों कि जीवनभर में एकबार ही होवे) सातकर्म ब ध की नियमा । अवेदी में- सात कर्म की भजना, आयुष्य का अब ध ।

इस तरह जिस जीव में जितने बोल पावे उन सभी बोलों में आठ कर्म के ब ध की भजना-नियमा यहाँ बताई गई है ।॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : कालादेश से सप्रदेशी अप्रदेशी का क्या स्वरूप है ?

उत्तर- जिस जीव को अपने स्थान में, द डक में प्रथम समय है तो वह कालादेश से **अप्रदेशी** है । एक समय से अधिक समय से है तो वह कालादेश से **सप्रदेशी** है । एकवचन की पृच्छा में अर्थात् एक जीव

के प्रश्न में सर्वत्र वह सप्रदेशी या अप्रदेशी कोई एक होता है और बहुवचन की पृच्छा में एकेन्द्रिय में अनेक सप्रदेशी और अनेक अप्रदेशी सदा मिलने से यह एक भ ग, अनेकभ ग-विकल्प नहीं होने से अभ ग कहलाता है । क्यों कि एकेन्द्रिय में अन त या अस ख्य जीवों का जन्मना मरना निर तर चालु होता है, विरह भी नहीं पडता है ।

शेष सभी(१९) द डकों में जन्म-मरण का विरह होने से अप्रदेशी अर्थात् एक समय वाले कभी नहीं होवे, कभी एक होवे, कभी अनेक होवे । सप्रदेशी अर्थात् अनेक समय वाले पुराने जीव तो सभी(१९) द डकों में होते ही हैं क्यों कि वे सभी द डक शाश्वत है । अतः उन द डकों में तीन भ ग होते है- (१) सभी सप्रदेशी (२) सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी एक (३) सप्रदेशी और अप्रदेशी दोनों अनेक ।

२४ द डकों में जो बोल **अशाक्तत** हो उसमें सप्रदेशी के होने, नहीं होने के तीन भ ग और मिल जाने से कुल ६ भ ग होते हक्त । **यथा-** १९ द डक में अनाहारक; पृथ्वी, पानी, वनस्पति में तेजोलेश्या; नारकी, देवता, मनुष्य में असन्नि; पाँच प्रकार के अपर्याप्त; ये अशाक्तत है अर्थात् कभी होते है, कभी ये बोल नहीं होते हक्त । अतः इनमें अप्रदेशी स ब धी ३ भ ग और सप्रदेशी स ब धी ३ भ ग, यों कुल ६ भ ग होते हक्त ।

प्रस्तुत चौथे उद्देशक में १४ द्वारों के ९६ बोलों पर कालदेश से अर्थात् कालकी अपेक्षा से सप्रदेशी-अप्रदेशी का निरूपण है । वे द्वार एव बोल इस प्रकार है-

(१)	जीव-	२४ द डक, समुच्चय जीव, सिद्ध	२६
(२)	आहारक-	आहारक, अनाहारक	२
(३)	भवी-	भवी, अभवी, नोभवी नोअभवी	३
(४)	सन्नी-	सन्नी, असन्नि, नोसन्नी नोअसन्नि	३
(५)	लेश्या-	६ लेश्या, अलेशी, सलेशी	८
(६)	दृष्टि-	तीन दृष्टि	३
(७)	स यत-	स यत,अस यत,स यतास यत,नोस यतादि	४
(८)	कषाय-	चार कषाय, सकषायी, अकषायी	६
(९)	ज्ञान-	५ ज्ञान, ३ अज्ञान, सज्ञानी, अज्ञानी	१०

(१०)	योग-	३ योग, सयोगी, अयोगी	५
(११)	उपयोग-	साकारोपयोग, अनाकारोपयोग	२
(१२)	वेद-	३ वेद, सवेदी, अवेदी	५
(१३)	शरीर-	पाँच शरीर, अशरीरी, सशरीरी	७
(१४)	पर्याप्ति-	६ अपर्याप्ति, ६ पर्याप्ति	१२
		कुल :	**९६**

समुच्चय जीव में जीवत्वभाव से सभी जीव अनादि ~~है अतः~~ सभी सप्रदेशी हक्त ।

ये ९६ बोलों में एक जीव की अपेक्षा सप्रदेशी अप्रदेशी में से कोई एक होता है और अनेक जीवों की पृच्छा में एकेन्द्रिय में पाने वाले बोलों में १ भ ग(अभ ग) । शेष १९ द डक में पाने वाले बोलों में शाक्तत मिलने वाले बोलों में ३ भ ग और अशाक्तत मिलने वाले बोलों में ६ भ ग होते हक्त वे ६ भ ग इस प्रकार है-

(१) सभी सप्रदेशी (२) सभी अप्रदेशी (३) सप्रदेशी एक अप्रदेशी एक (४) सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी एक (५) सप्रदेशी एक अप्रदेशी अनेक (६) सप्रदेशी अनेक अप्रदेशी अनेक ।

प्रश्न-७ : जीवों के लिये प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है?

उत्तर- प्रस्तुत छट्ठे उद्देशक में प्रत्याख्यान स ब धी विवरण इस प्रकार है- समुच्चय जीव प्रत्याख्यानी(श्रमण) भी है अप्रत्याख्यानी अव्रती भी है और देश प्रत्याख्यानी(श्रावक) भी है । नारकी आदि २२ द डक के जीव अप्रत्याख्यानी ही है । तिर्यंच प चेन्द्रिय अप्रत्याख्यानी और देश प्रत्याख्यानी है । मनुष्य तीनों प्रकार के हक्त ।

प चेन्द्रिय सभी प्रत्याख्यान आदि तीनों को जान-समझ सकते हक्त । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय इस विषय को नहीं जान सकते एव समझ भी नहीं सकते । तिर्यंच प चेन्द्रिय देश प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान स्वीकार सकते हक्त मनुष्य तीनों को स्वीकार कर सकते हक्त । शेष सभी अव्रती ही होते हक्त ।

वैमानिक देवों का आयुष्य प्रत्याख्यान निवर्तित भी होता है,

अप्रत्याख्यान निवर्तित तथा देश प्रत्याख्यान निवर्तित यों तीनों तरह का होता है । शेष २३ द डक का आयुष्य मात्र अप्रत्याख्यान निवर्तित ही होता है अर्थात् वैमानिक का आयुष्य व्रती–अव्रती सभी जीव बा ध सकते हक्त । शेष २३ द डक का आयुष्य केवल अव्रती ही बा धते हक्त ।
॥ उद्देशक–४ स पूर्ण॥

प्रश्न–७ : तमस्काय क्या वस्तु है और वह कहाँ कब होती है?

उत्तर– तमस्काय पानी का परिणाम है पानी स्वरूप है । लोक में पानी के विभिन्न परिणाम हक्त । यथा– (१) अनेक प्रकार के बादल रूप में परिणत । जिसमें कई बादल मूसलधार बरसते, कई रिमझिम बरसते, कई बारीक फुहारें रूप में उडने जैसे बरसते । (२) धूँअर, कोहरा रूप पानी । (३) गडे, हिमपात रूप पानी, बर्फ की दिवाल, चट्टान रूप पर्वतीय पानी । (४) ओस–झा कल । (५) लवण शिखा रूप पानी । (६) पाताल कलशों में भरा पानी । (७) आकाश से बरसने वाला पानी । (८) पर्वत में से निर तर निकलने वाला झरने का पानी । (९) महोतपोप तीर झरने का गर्म जल ।(१०) घनोदधि और घनोदधि वलय रूप पानी तथा (११) यह तमस्काय रूप पानी । इस प्रकार के जल-परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि पानी मात्र समतल ही नहीं रहता है; ऊँचे-नीचे भी, उपर उठा हुआ भी रह सकता है और आकाश में चल भी सकता है । इसी सिलसिले में यह तमस्काय रूप पानी धूँअर फुहारे जैसा उपर उठा हुआ है ।

ज बूद्वीप से अस ख्यात द्वीपसमुद्र जाने के बाद अस ख्यातवाँ अढणोदय समुद्र चूडी के आकार का है । उसकी बाह्य जगती–वेदिका से सर्व दिशाओं में ४२००० योजन अ दर आने पर यहाँ से स ख्याता योजन जाडी अस ख्य योजन के परिम डलाकार की एक अप्कायमय धूँअर जैसी जलभित्ति समुद्रीजल की उपरी सतह से एक समान प्रदेश वाली श्रेणी रूप अर्थात् चौतरफ समान विस्तार वाली परिम डलाकार गोलाई में उपर उठी हुई है । जो १७२१ योजन ऊँचाई तक एक सरीखी चौडाई वाली भित्ति जैसी है उसके बाद बाहर की तरफ **ऊलटे रखे घडे** के आकार जैसे तिरछे विस्तृत होती है और घडे की ठीकरी

स्थानीय जलभिति भी जाडाई में स ख्यात से बढते हुए अस ख्य योजन की जाडाई वाली है । जो पाँचवें देवलोक तक फैली हुई है । पाँचवें देवलोक के तीसरे रिष्ट पाथडे तक व्याप्त है । स पूर्ण तमस्काय उलटे रखे मिट्टी के घडे के आकार में है कि तु पाँचवें देवलोक के पास कुक्कुड प जर के **ऊपरी** भाग के जैसा आकार कहा है । अर्थात् उपर घडे जैसी गोलाई नहीं है कि तु समतल है । यह सदा एक सरीखी इसी आकार में अनादि काल से लोक स्वभाव से रही हुई है । अपने यहाँ दिखने वाली धुँअर से भी इसमें प्रगाढ अ धकार होता है ।

इस तमस्काय के १३ नाम में से अधिक नाम अ धकार की मुख्यता वाले हक्त । तेरहवाँ नाम **अढणोदक समुद्र** यह पानी रूप नाम है अर्थात् यह तमस्काय कोई अलग चीज नहीं कि तु अढणोदक समुद्र का ही एक विचित्र अ श है ।

वैमानिक ज्योतिषी देवों को जम्बूद्वीप में आने के लिये इस तमस्काय को पार करना पडता है । तब वे देव अ धकार से भयभीत स भ्रा त होकर शीघ्र निकलते हक्त । कोई देव इसमें बादल गर्जन विद्युत भी कर सकते हक्त । वह देवकृत विद्युत अचित्त समझना । क्यों कि बादर अग्निकाय तो ढाईद्वीप में ही होती है । देवों का अपना शरीर एव वस्त्रादि का प्रकाश भी इसके अ धकार से हतप्रभ होता है । ९०० योजन की ऊँचाई तक के क्षेत्र में वहाँ जो ज्योतिषी विमान हक्त वे भी इस तमस्काय के बाहर ही है भीतर नहीं है, किनारे पर है, उनकी प्रभा भी तमस्काय में थोडी जाकर अ धकार से निष्प्रभ हो जाती है ।

इस तमस्काय में बादर पृथ्वी और अग्नि नहीं होती है । इसमें अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एव त्रसकाय के जीव इसमें होतेक्त (त्रस जीव तिरछालोक की अपेक्षा समझना) । स सार के सभी जीव तमस्काय में उत्पन्न हो चुके हक्त । तमस्काय के नाम इस प्रकार है– १. तम २. तमस्काय ३. अ धकार ४. महाअ धकार ५. लोकअ धकार ६. लोकतमिश्र ७. देवअ धकार ८. देव तमिश्र ९. देव अरण्य १०. देव व्यूह ११. देव परिघ १२. देव प्रतिक्षोभ १३. अढणोद समुद्र ।

प्रश्न–८ : कृष्णराजी कहाँ पर और कैसी होती है ?

उत्तर- काले कलर की पृथ्वीकायमय, रेखा सरीखी ल बी और कम चौडी चट्टान जैसी पाँचवें देवलोक की सीमा के किनारे लोका त के निकट रिष्ट नामक तीसरे पाथडे में आठ पृथ्वी शिलाएँ हक्त । चारों दिशाओं में दो दो कृष्णराजियाँ है । अ दर की चारों कृष्णराजियाँ चारों तरफ से घिरी हुई है । बाहर की चार भी पहले घेरे के चौतरफ घेरी हुई है ।

इस प्रकार दो घेरे में आठ कृष्णराजियाँ है । भीतरी चारों समचतुष्कोण आयत है । बाह्य में दो उत्तर-दक्षिण की त्रिकोण और पूर्व-पश्चिम में षट्कोण वाली है ।

ये कृष्णराजियाँ स ख्याता योजन की चौडी और अस ख्याता योजन की ल बी रेखा जैसी है । एक दिशा की भीतरी कृष्णराजि अगली दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श करती है अर्थात्

(१) दक्षिण की आभ्य तर- पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि को
(२) पश्चिम की आभ्य तर- उत्तर की बाह्य कृष्णराजि को
(३) उत्तर की आभ्य तर- पूर्व की बाह्य कृष्णराजि को और
(४) पूर्व की आभ्य तर- दक्षिण की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श करती है ।

इन आठों कृष्णराजि से घिरे हुए बीच का क्षेत्र भी उनकी कृष्ण आभा से डरावना होता है वहाँ से निकलते हुए देव बादल गर्जन बिजली आदि कर सकते हक्त । सर्व जीव पृथ्वी रूप से और बीच के क्षेत्र में वायु रूप से उत्पन्न हो गये हक्त ।

प्रश्न-९ : लोका तिक देव कहाँ रहते है और उनकी क्या-क्या विशेषता है ?

उत्तर- आठ कृष्णराजियों के आठ आकाशा तर में आठों दिशाओं में क्रमश: आठ लोका तिक देवों के आठ विमान हक्त । कृष्णराजियों के घेरे के बीच जो मैदान है उसके बीचोबीच में एक विमान है । इन नव विमानों में ९ लोका तिक देव रहते हक्त, उत्पन्न होते हक्त ।

लोका तिक विमानों का स्थल :-

दिशा	विमान	लोका तिक देव	कृष्णराजी के पास
१.ईशानकोण	अर्चि	शारस्वत	८ और १ के स्पर्शका खुणा
२.पूर्व	अर्चिमाली	आदित्य	२ का मध्य
३.अग्निकोण	वैरोचन	वन्हि	२ और ३ के स्पर्श का खुणा
४.दक्षिण	प्रभ कर	वढण	४ का मध्य
५.नैऋत्यकोण	च द्राभ	गर्दतोय	४ और ५ के स्पर्श का खुणा
६.पश्चिम	सूर्याभ	तुषित	६ का मध्य
७.वायव्यकोण	शुक्राभ	अव्याबाध	६ और ७ के स्पर्शका खुणा
८.उत्तर	सुप्रतिष्टाभ	मढत	८ का मध्य
९.बीच में	रिष्टाभ	रिष्ट	बीच मैदान में

पहले दूसरे लोका तिक देवों के सात मुख्य देव और उनके ७०० देवों का परिवार है । तीसरे चौथे लोका तिक देवों के १४ मुख्य देव और १४००० देवों का परिवार । पाँचवें छट्ठे लोका तिक में ७ मुख्य देव और ७००० देवों का परिवार है । सातवें, आठवें, नववें लोका तिक में ९ मुख्य देव और ९०० देवों का परिवार है । लोका तिक विमान वायु प्रतिष्ठित हक्त । देवों की उम्र ८ सागरोपम की है । लोका त इन विमानों से अस ख्य योजन दूर है । ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१० : मारणा तिक समुद्घात जीव कब करता है तथा अगले भव में उत्पत्ति एव आहार आदि कब होता है ?

उत्तर- वर्तमान भव के अ तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर कोई-कोई जीव मारणा तिक समुद्घात करते हक्त । इस अ तर्मुहूर्त के पहले जीव ने कभी भी आगामी भव का आयुष्य बा ध लिया होता है तभी मारणा तिक समुद्घात से, अपने निज शरीर को छोडे बिना कुछ आत्मप्रदेशों को आगामी जन्मस्थान तक फैलाता है एव आयुष्य कर्म की उदीरणा कर पुन: शरीरस्थ होकर फिर आयुष्य को पूर्ण करके (मरने रूप में) समुद्घात करके अर्थात् मरकर(क्यों कि दूसरी बार समुद्घात का प्रयोजन नहीं रहता है) उत्पत्ति स्थान में जाता है और वहाँ आहार,

उसका परिणमन और शरीर निर्माण आदि करता है ।

वर्तमान भव का आयु रहता है तब आगामी जन्मस्थान पर गये हुए आत्मप्रदेश वहाँ आहारादि ग्रहण परिणमन नहीं करते हक्त । क्यों कि यहीं वर्तमान भव के शरीर में आहारादि चालु होते हक्त ।

कई जीव मारणा तिक समुद्‌घात नहीं करते हक्त वे प्रथम बार में ही आयुष्य पूर्ण होने पर मरकर (आगम शब्दो में मरण समुद्घात करके) आगामी जन्मस्थान में पहुँच कर आहार–परिणमन आदि करते हक्त ।

शास्त्रपाठ में सीधे मर कर जाने और उत्पन्न होकर आहार करने के कथन में भी समुद्घात शब्द का प्रयोग किया है । ऐसे ही केवली के मोक्ष होने समय में भी मरण समुद्‌घात शब्दप्रयोग देखने को मिलता है अत: इन शब्दों के आग्रह में नहीं जाते हुए सही आशय समझना चाहिये कि– (१) कोई जीव आयु समाप्त कर सीधे ही **मरण प्राप्त कर** आगामी स्थान में पहुँचकर आहार–परिणमन आदि करते हक्त । (२) कितनेक जीव मृत्यु के अ तर्मुहूर्त पहले मारणा तिक समुद्‌घात करके, आगामी जन्मस्थान तक आत्मप्रदेश फैलाकर, आयुष्यकर्म की उदीरणा कर, पुन: शरीरस्थ होकर, फिर आयुष्य समाप्त होने पर **मरण प्राप्त करके** आगामी स्थान में उत्पन्न होकर आहार, परिणमन आदि करते हक्त । पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर जीव छहों दिशाओं में लोका त तक उत्पन्न होते ह त्रस जीव छहों दिशाओं में त्रसनाडी में ही अपने–अपने उत्पत्ति योग्य स्थलों तक उत्पन्न होते हक्त ।

मृत्यु प्राप्त कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने वाले सभी जीव मार्ग में अवगाहना का स कोच विस्तार नहीं करके एक सरीखी विस्तृत श्रेणी आत्मप्रदेशों की अवगाहना से ही जन्म स्थान तक पहुँचते हक्त। इसे ही मूलपाठ **''एगपएसिय सेढिं मोत्तूण''** **एगपएसिय**– एक सरीखी । पूर्व पाँचवें उद्देशक में भी **एगपएसियाए सेढीए–** एक सरीखी चोडाई वाली भित्तिरूप में तमस्काय समुद्री जल सपाटी से उपर उठी हुई है जो १७२१ योजन तक ऊँची एक सरीखी चौडाई (जाडाई) वाली है । फिर उसके बाद थोडे–थोडे विस्तार में और जाडाई में क्रमिक वृद्धि होती है ॥ उद्देशक–६ स पूर्ण ॥

प्रश्न–११ : धान्य आदि अख ड बीज कितने समय तक सचित्त–

सजीव रह सकते हक्त ?

उत्तर– वनस्पति के १० विभाग मूल से लेकर बीज तक होते हक्त । उनमें से ९ विभाग तो सूखने पर अचित्त हो जाते हक्त कि तु दसवाँ **बीज विभाग** है वह सूखने पर भी वर्षों तक सचित्त रह सकता है। इसकी उम्र जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात वर्ष की होती है । प्रस्तुत सातवें उद्देशक में बताया है कि धान्य आदि समस्त बीज विभाग यदि सुरक्षित कोठी वगेरे में रख दिये जाय, उन पर कोई भी प्रकार का शस्त्र नहीं लगे तो इनके सचित्त रहने की उत्कृष्ट स्थिति बनती है । यहाँ पर तथा स्थाना ग सूत्र में इन धान्यादि बीज विभागों के स्थिति की अपेक्षा तीन विभाजन किये गये हक्त (१) गेहूँ चावल आदि धान्य उत्कृष्ट ३ वर्ष सचित्त रह सकते हक्त । (२) मूँग चणा उडद आदि द्विदल उत्कृष्ट पाँच वर्ष सचित्त रह सकते है और (३) शेष सभी प्रकार के बीज अलसी, सरसों, राई, मेथी आदि उत्कृष्ट सात वर्ष तक सचित्त योनि रूप में, सजीव रूप में रह सकते हक्त । उसके बाद इन पदार्थों की सचित्त योनि नष्ट हो जाती है । सचित्तता की अपेक्षा वह बीज नहीं रहता है ।

प्रज्ञापना सूत्र में उगने वाले पदार्थ सचित्त, अचित्त मिश्र तीनों प्रकार की योनि वाले कहे गये हक्त । तदनुसार ये अचित्त बने हुए धान्यादि का शरीर ब धन स घातन विशिष्ट हो, सुरक्षित रखे गये हों तो १०-२० प्रतिशत बीजों में अचित्त होने के बाद भी ऊगने की क्षमता रहती है वे अचित्त योनिक बीज कहलाते हक्त । यहाँ दोनों शास्त्रों में सचित्तता की अपेक्षा ही स पूर्ण विशेषणमय कथन है । कि तु प्रज्ञापना सूत्रानुसार अचित्त योनिक उगने वाली वनस्पतियों का भी अस्तित्व स भव है एव बीज विज्ञान केंद्र से जानकारी करने से भी यह स्पष्ट होता है कि कुछ अच्छे परिपक्व बीज ५–१० वर्ष तक भी उगते हक्त । सुरक्षित रखे सभी बीज लम्बे समय तक नहीं उगते । प्रतिवर्ष ५–१० प्रतिशत कम होते होते ८–१० वर्ष तक तो उगने वाले बीजों की स ख्या नहींवत् हो जाती है । इसका कारण यह है कि उन बीजों के पुद्‌गलमय ब धन स घातन भी धीरे–धीरे ५–१० वर्ष में क्षीण हो जाते हक्त। एव उत्पादन क्षमता–अ कुरित होने की योग्यता नष्ट हो जाती है ।

प्रस्तुत में ज्ञातव्य यह है कि उगने की क्षमता किसी की कितनी भी रहे कि तु सचित्त योनिभूतता प्रस्तुत सूत्र कथन अनुसार तीन-पाँच एव सात वर्ष की उत्कृष्ट समझनी चाहिये ।

प्रश्न-१२ : गणनाकाल और उपमाकाल क्या है ?

उत्तर- समय, आवलिका, श्वासोश्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिन-रात, मास, वर्ष, ८४ लाख वर्ष का पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग का एक पूर्व, ऐसे (एक करोड पूर्व प्रसिद्ध है) त्रटिता ग, त्रुटित आदि ८४ लाख गुणे क्रमश: होते है अ तिम गणना स ख्या **शीर्ष प्रहेलिका ग, शीर्ष प्रहेलिका** होती है । वह १९४ अ को में बनती है । उसमें ५४ अ क और १४० बिंदियाँ होती है । इतने वर्षों की शीर्ष प्रहेलिका तक स ख्या की गणना शास्त्र में की जाती है । उसके बाद पल्य की उपमा से पल्योपम की गणना बताई जाती है ।

पल्योपम- इसके लिये एक योजन लम्बे-चोडे ऊँडे पल्य की कल्पना की गई है । ऐसे पल्य को देवकुढ-उत्तरकुढ क्षेत्र के मनुष्यों के उत्कृष्ट सात दिन के जन्मे बालक के बालाग्रों के अस ख्य ख ड करके उनसे अत्य त ठू स ठू स कर भरा जाय फिर उसमें से एक-एक बालाग्र ख ड को १००-१०० वर्षों से निकालने पर जब वह पल्य(कुआ) खाली हो जाय उतने वर्षों को पल्य की उपमा से पल्योपम कहा जाता है । ऐसे १० क्रोडाक्रोड पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

इस प्रकार गणना काल शीर्ष प्रहेलिका तक है । उपमा काल में पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कालचक्र आदि हत्त ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१३ : देवता उपर और नीचे अर्थात् नरक और देवलोक में कहाँ तक जा सकते हत्त ?

उत्तर- वाणव्य तर देवता नीचे प्रथम नरक तक जा सकते हत्त । नवनिकाय के भवनपति देव दूसरी नरक तक जा सकते हत्त । असुरकुमार देव तीसरी नरक तक जा सकते हत्त और वैमानिक देव सातवीं नरक तक जा सकते हत्त । उपर प्रथम द्वितीय देवलोक तक असुरकुमार और वैमानिक देव जा सकते हत्त आगे के देवलोकों में केवल वैमानिक देव

ही जाते है, असुरकुमार देव नहीं जाते ।

व्य तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की होती है । नवनिकाय देवों की उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति होती है। असुरकुमारों की उत्कृष्ट एक सागरोपम साधिक की स्थिति होती है । वैमानिक में गमनागमन करने वाले देवों की उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति होती है ।

देवों की वैक्रिय शक्ति, ऋद्धि उनकी स्थिति के अनुसार हीनाधिक होती है। अत: दस हजार वर्ष आदि स्थिति वाले व्य तर देवों की क्षमता कम होती है और क्रमश: एक पल्योपम की स्थिति वाले व्य तर देवों की क्षमता अधिक होती है। उसी तरह भवनपति असुरकुमारों में भी दसहजार वर्ष से पल्योपम एव एक सागरोपम तक की स्थिति होती है । वैमानिक में एक पल्योपम से दो सागरोपम यावत् २२ सागरोपम तक की स्थिति बारहवें देवलोक तक होती है तदनुसार ही इन देवों में गमनागमन क्षमता एव ऋद्धि की भिन्नता होती है ।

प्रस्तुत में असुरकुमारों, नवनिकायों एव वैमानिकों की जो उपर नीचे जाने की क्षमता दर्शाई गई है वह उत्कृष्ट स्थिति, ऋद्धि की अपेक्षा से कही गई है । उसे उस जाति के अल्पर्धिक-महर्द्धिक सभी देवों के लिये स्थिति का विचार किये बिना मान लेना उचित्त नहीं होता है ।

असुरकुमारों का नीचे तीसरी नरक तक जाना कहा है तो उसे उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वालों की अपेक्षा समझना चाहिये पर तु दस हजार वर्ष या एक पल्योपम अथवा ५-१० पल्योपम वालों को भी तीसरी नरक तक जाना मान लेना योग्य नहीं होता है । वैमानिक देवों का सातवीं नरक तक जाना कहा है तो सभी वैमानिकों को एक समान नहीं समझकर उनकी भिन्नता समझी जाती है अर्थात् पहले दूसरे देवलोक के देव सातवीं नरक तक नहीं जाते हत्त वे तीसरी नरक तक जाते हत्त, आगे क्रमश: बढते-बढते उपर-उपर के देव अगली-अगली नरक में जाते हत्त ।

नवनिकाय के देव दूसरी नरक तक जाते हत्त तो वहाँ भी उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की अपेक्षा समझना । सभी स्थिति वाले

नवनिकाय देव जावे ऐसा नहीं समझना । क्यों कि एक पल्योपम की स्थिति वाले व्य तर पहली नरक तक ही जाते हक्त । देवों की गति, ऋद्धि आदि स्थिति सापेक्ष ही होती है अत: एक पल्योपम से अधिक स्थिति वाले नवनिकाय के देवों को ही दूसरी नरक में जाना समझना और एक पल्योपम तक की स्थिति वालों को प्रथम नरक तक ही जाना समझना चाहिये ।

उपरोक्त वर्णन से यह तात्पर्य समझना चाहिये कि एक पल्योपम तक की स्थिति वाले देव प्रथम नरक तक, अनेक पल्योपम वाले देव दूसरी नरक तक और एक-दो सागरोपम की स्थिति वाले देव तीसरी नरक तक जा सकते है । यों वैमानिक में भी स्थिति के अनुपात में चोथी, पाँचवीं, छट्ठी आदि नरक तक जाना समझना चाहिये ।

इससे यह भी समझ सकते हक्त कि एक पल्योपम की स्थिति वाले परमाधामी के लिये तीसरी नरक तक जाने का कहने की पर परा को पकडे रखना कोई जरूरी नहीं है । वास्तव में वे अपनी स्थिति रिद्धि क्षमता अनुसार प्रथम नरक तक ही जा सकते हक्त ।

प्रश्न-१४ : नरक और देवलोक के क्षेत्र में बादर पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर कहाँ-कहाँ होते हक्त ?

उत्तर- नरक पृथ्वी पिंडों में बादर पृथ्वीकाय के जीव होते हक्त । नरक के अ दर की भूमि एव कु भिया भी बादर पृथ्वीकाय जीवमय होती है । पृथ्वी पिंडों के नीचे घनोदधि में और चौतरफ घनोदधि वलयों में बादर अप्काय के जीव होते हक्त । पृथ्वीपिंड के नीचे घनवाय, तनुवाय और चौतरफ के घनवाय, तनुवाय के वलयों में वायुकाय के जीव होते हक्त तथा नरक पाथडों के अ दर जो भी पोलार भाग होता है उनमें तथा भवनपतियों के भवनों के पोलार भाग में एव सातों आकाशा तर के पोलार में बादर वायुकाय के जीव होते हक्त । जहाँ अप्काय के जीव कहे हक्त वहाँ बादर वनस्पतिकाय भी अन तकाय की अपेक्षा समझना । प्रत्येक वनस्पति नरक क्षेत्र में नहीं होती है एव बादर अग्नि जीव भी नरक में नहीं होते ।

इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी नरक वर्णन में अग्नि का या पानी का, नदी का वर्णन मिलता है वह देवकृत समझना चाहिये तथा अचित्त समझना । वृक्ष और वृक्षों के गिरने वाले पत्ते भी देवकृत समझना ।

रत्नप्रभा पृथ्वी का उपरी छत १००० योजन का है इसमें समुद्रीजल तथा वर्षा का जल जो भूमि में जाता है एव भूमि में जो पानी की सेजें चलती है, जिनका पानी बोरिंग में-पातालतोड कुओं में आता है, वह सभी अप्काय जीवमय है ।

तिरछालोक में बादर पृथ्वीकाय आदि पाँचों स्थावर यथास्थान होते हक्त । युगलिक भूमि ३०+५६=८६ में बादर अग्निकाय नहीं होती है । उसके सिवाय तिरछे लोक में अपने-अपने योग्य स्थलों में पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति(साधारण-प्रत्येक दोनों)के जीव होते हक्त ।

ऊँचे लोक में देवलोकों के नीचे घनोदधि में, तमस्काय में देवलोकों की बावडियों में बादर अप्काय के जीव होते हक्त ।देवलोकों के पृथ्वीपिंड, विमान, शय्या आदि पृथ्वीकायमय होते हक्त । कृष्णराजियाँ भी पृथ्वीकायमय होती है । बादर अग्नि जीव देवलोकों में, ऊँचालोक में नहीं होते हक्त । वायुकाय के जीव सर्वत्र पोलार में एव घनवाय में होते हक्त । वनस्पति अन तकाय जीव पानी के स्थानों में होते हक्त । प्रत्येक वनस्पति देवलोकों में नहीं होती है । वहाँ की बावडियों में कमल आदि जो होते है वे पृथ्वीकाय जीवमय होते हक्त । त्रस-विकलेन्द्रिय, तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य भी देवलोकों में नहीं होते हक्त । वहाँ पर भ्रमर आदि का जो वर्णन मिलता है वे पृथ्वीकाय के य त्रमय समझना ।

पहले, दूसरे देवलोक घनोदधि के आधार से रहे हुए हक्त अर्थात् उसके नीचे स लग्न घनोदधि है । तीसरे चौथे, पाँचवें देवलोक के नीचे घनवाय-सघनवायु है । छट्ठे, सातवें, आठवें देवलोक घनोदधि-घनवाय दोनों के आधार से रहे हुए हक्त अर्थात् उन देवलोकों से अन तर घनोदधि है और उसके नीचे घनवाय है ।

जो भी देवता अपनी क्षमता के अनुसार जहाँ तक गमनागमन

करते है वहाँ बीच में वे बादल, गर्जना, विद्युत और वर्षा कर सकते हक्त । देवकृत होने पर ये प्राय: अचित्त समझने चाहिये ।

प्रश्न-१५ : अस ख्य समुद्रों में समतल और उन्नत जल किनका कहा गया है?

उत्तर- लवण समुद्र का जल उन्नत अर्थात् ऊँचा उठा हुआ अनादि लोक स्वभाव से है, शेष सभी समुद्रों का जल समतल रहा हुआ है । लवण समुद्र का जल समय-समय पर क्षुभित होता रहता है, शेष सभी समुद्रों का जल सदा शा त रहता है ।

अढणोदक समुद्र में तमस्काय उपर गई है उसे यहाँ उन्नत जल में नहीं गिना गया है । क्यों कि लवण समुद्र का उन्नत भाग लवण समुद्री अन्य जल के समान जल रूप ही है। जब कि तमस्काय अढणोदक समुद्र की जलसपाटी से उठी हुई धूँअर सरीखी है इसलिये इस समुद्र के जल को उन्नत नहीं कहकर समतल ही गिना गया है । अढणोदक समुद्र का जल और तमस्काय के स्वरूप में एकरूपता नहीं होकर भिन्नता है अर्थात् समुद्रीजल जलरूप है और तमस्काय धूँअर रूप है ।
॥ उद्देशक- ८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१६ : इस शतक में अन्य भी क्या ज्ञेय तत्त्व दर्शाये गये हक्त?

उत्तर- यहाँ अन्य अनेक विषय इस प्रकार कहे गये हक्त- (१) आयुष्य कर्म के ब ध के समय नामकर्म और गौत्रकर्म की अनेक प्रकृतियों का आयुष्य के योग्य स योजना रूप ब ध होता है उसे निधत्त और नियुक्त क्रिया के साथ कहा गया है। निधत्त = स योजन रूप ब ध, नियुक्त = निकाचित ब ध । जाति, गति आदि ६ प्रकार का आयुब ध होता है, निधत्त-निकाचित से उसके दो प्रकार होने से १२ भेद होते हक्त, जिन्हें यहाँ २४ द डक में कहा गया है । (२) कोई भी पुद्‌गलों को ग्रहण करके देवता एक रूप को अनेक रूप में बना सकते हक्त । इसी प्रकार एक ग ध, रस, स्पर्श को अनेक में परिणत कर सकते हक्त । विरोधी वर्णादि रूप में भी परिणत कर सकते हक्त । (३) अविशुद्धलेशी देव अर्थात् विभ ग ज्ञानी मिथ्यादृष्टि देव अन्य देव-देवी अणगार को सही रूप से नहीं जान-देख

सकते । अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टि देव अनुपयोग में हो तो नहीं जाने देखे और उपयोगव त हो तो देव-देवी या अणगार को यथार्थ रूप से जान-देख सकते हक्त । (४) जीव के सुख-दु:ख को कोई निकाल कर नहीं दिखा सकता । क्यों कि जीव के सुखानुभव-दु:खानुभव रूप आत्मपरिणाम अरूपी होते हक्त । (५) **जीव** में चेतना गुण की नियमा है । जीव में दस प्राण की भजना है, ये द्रव्यप्राण सिद्धों में नहीं होते । **नैरयिक** आदि का जीव होना नियमा है, जीव का नैरयिक होना नियमा नहीं है । भवी का नैरयिक होना भी भजना है और नैरयिक का भवी होना भी भजना है। (६) नैरयिक एका त दु:ख रूप वेदना वेदते हक्त, देव एका त सुखरूप वेदना वेदते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच विमात्रा से दोनों वेदना वेदते हक्त । (७) सभी जीव अवगाढ- अवगाहित आत्मावगाहित पुद्‌गलों का आहार ग्रहण करते हक्त । अवगाहित में अपेक्षा से अन तर अवगाहित को आहार रूप में ग्रहण करते हक्त । पर परावगाढ पुद्‌गलों को सीधे ग्रहण नहीं किया जाता । ॥ उद्देशक-१-१० स पूर्ण ॥

शतक-७ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें दस उद्देशकों के माध्यम से अक्रमिक अनेकों विषय है । शतक के प्रार भ में दस उद्देशकों के नाम-विषय सूचक एक स ग्रहणी गाथा है । तदनुसार उद्देशकों के नाम और विषय इस प्रकार हक्त-

(१) आहार- इस उद्देशक में जीव की अनाहारक अवस्था, अल्पाहारता, श्रावक को क्रिया, श्रमण को आहार दान का लाभ, श्रमण का आहार सदोष निर्दोष वगेरे विषय निरूपित है ।

(२) विरति- इस उद्देशक में सुप्रत्याखयान-दुष्प्रत्याख्यान स ब धी एव मूलगुण-उत्तरगुण प्रत्याख्यान का भेद प्रभेद युक्त वर्णन है ।

(३) स्थावर- इसमें स्थावर जीव रूप वनस्पति स ब धी वर्णन है ।

(४) जीव- जीवाभिगम सूत्र के सूचन से छकाय जीवों का स क्षिप्त वर्णन है ।

(५) पक्षी- जीवाभिगम सूत्र के भलावण से पक्षियों का वर्णन है ।

(६) आयुष्य– आयुष्य कर्म, वेदनीय कर्म एव छट्ठे आरे का वर्णन है ।

(७) अणगार– इस उद्देशक में स वृत–अस वृत अणगार, काम-भोग, क्षीणभोगी एव वेदना इत्यादि विषयों का निरूपण है ।

(८) छद्मस्थ– इस उद्देशक में छद्मस्थ, हाथी–कु थु में जीव, दु:ख-सुख, १० स ज्ञा, १० वेदना, अप्रत्याख्यान क्रिया, आधाकर्मी इत्यादि विषयों का स क्षिप्त वर्णन है ।

(९) अस वृत– इस उद्देशक में अस वृत अणगार की विकुर्वणा, महाशिलाक टक स ग्राम, रथमूसल स ग्राम, लोकवाद–वढणनाग नतुआ आदि कथा वर्णन है ।

(१०) अन्यतीर्थिक– इस उद्देशक में कालोदाई आदि अनेक अन्य–तीर्थिकों का भगवान की सेवा में आगमन दीक्षा एव कालोदायी अणगार की मुक्ति का वर्णन है ।

प्रश्न–२ : वाटे वहेता जीव कितने समय अनाहारक रहता है?

उत्तर– कोई जीव ऋजुगति से जन्म स्थान में एक समय में पहुँच जाते है वे अनाहारक नहीं होते हक्त । जो वक्र गति से अर्थात् मोडवाली गति से जाते हक्त वे एक, दो या तीन समय अनाहारक रह सकते हक्त । त्रसकाय में उत्पन्न होने वाले जीव एक या दो समय अनाहारक हो सकते हक्त । स्थावरकाय में उत्पन्न होने वाले एक, दो या तीन समय अनाहारक हो सकते हक्त । कदाचित्क कोई ४ समय भी अनाहारक हो सकता है ऐसा आगम सिवाय–ग्र थों में वर्णन है ।

जीव उत्पत्ति समय में और मृत्यु समय में अपने पूरे भव की अपेक्षा अल्पाहारी होता हक्त, प्रथम समय में अवगाहना छोटी होने के कारण और अ तिम समय में शरीर में शिथिलता प्रवाहित हो जाने से एव आत्मप्रदेशों के चलविचल होने से । जीवन के अन्य समयों में विशेष–विशेषतर आहार की वृद्धि हानि होती रहती है । २४ द डक के जीवों में भी ऐसा ही समझना ।

प्रश्न–३ : श्रमणोपासक के लिये क्रियाओं के स ब धी कथन किस प्रकार हक्त ?

उत्तर– श्रमणोपासक का जीवन पाँचवाँ गुणस्थानवर्ती है इसमें देशविरति

प्रत्याख्यान है । उसके सिवाय यदि श्रमण के उपाश्रय में तथा सामायिक की साधना में भी श्रमणोपासक बैठा हो तो भी वह देशविरति ही धारण किये हुए है । उसके घर, स सार, व्यापार सभी प्रवृतियाँ चालु है, स ब ध टूटा नहीं है । एक मुहूर्त आदि समय मात्र के लिये दो करण तीन योग से सावद्य त्यागी है । कषाय भी १६ में से ८ का क्षय आदि किया है आठ कषाय और ९ नोकषाय आदि प्रकृतियाँ क्षय नहीं करी है । अत: सामायिक में भी उसे सा परायिक क्रियाओं में से ही कितनी ही क्रियाएँ लगती है । अत: उसके सामायिक में भी मात्र ईरियावहिया क्रिया ही लगे ऐसा स्टेज नहीं होता है । इसलिये श्रावक के लिये यहाँ ईर्यावहि क्रिया, जो ११ से १३ गुणस्थान तक होती है, उसका निषेध किया है क्यों कि वह क्रिया वीतराग श्रमण को ही हो सकती है ।

श्रावक को कोई भी त्रस जीवों की हिंसा के स कल्प का त्याग होता है अर्थात् मारने के स कल्प से मारने का त्याग होता है। तो जब वह पृथ्वी खोद रहा हो उस समय अचानक कोई त्रसजीव मर जाय तो उसका अहिंसा व्रत ख डित नहीं होता है, जीव विराधना का दोष एव कर्मब ध हो सकता है । इस तरह किसी वनस्पति की हिंसा का त्याग हो और उसकी जड भूमि खोदते समय कट जाय तो उसका त्याग ख डित नहीं होता है ।

अणगार भी उपयोग बिना(विवेक बिना) चलता है, बैठता है, सोता है, भ डोपकरण भी विवेक बिना रखता है, अयतना से सर्व प्रवृत्तियाँ करता है तो उसे भी जीवरक्षा का लक्ष्य न होने से, स यम का लक्ष्य नहीं होने से उसकी वह प्रवृत्ति सूत्र से विपरीत होती है, सूत्रानुसार नहीं होती है । अत: उसे भी सा परायिक क्रिया लगती है । उपयोग सहित विवेक युक्त अप्रमत्त भाव से वर्तन करने वाला आगे बढकर वीतराग दशा को प्राप्त कर ईर्यावहि क्रिया करता है, वह सूत्रानुसार प्रवृत्ति करने वाला होता है । अप्रमत्तभावों से सूत्रानुसार आचरण होने से उसके कषाय भी क्षीण हो जाते हक्त । तब उसे वीतराग दशा प्राप्त हो जाती है एव तभी उसे ईर्यावहि क्रिया लगती है और स पराय क्रिया उसके ब ध हो जाती है ।

प्रश्न-४ : श्रमण-निर्ग्रंथ को प्रासुक एषणीय दान देने से श्रमणोपासक क्या प्राप्त करता है ?

उत्तर- श्रमणोपासक प्रासुक और एषणीय आहार श्रमण निर्ग्रंथों को प्रतिलाभित करके उनके स यम में समाधि पहुँचाता है और उनको समाधि पहुँचा कर खुद भी उसी समाधि को प्राप्त करता है अर्थात् स यम पालन की अनुमोदना का स यमलाभ प्राप्त करता है ।

वह श्रमणोपासक, श्रमण को बहराता हुआ अपने जीवन निर्वाह के साधन का देश त्याग करता है । दूसरों को जो वस्तु नहीं दे सकता यहाँ तक कि घरके बच्चों को भी देने में जिसका दिल कम होता है, ऐसा दुष्त्याज्य पदार्थ श्रमण को सहर्ष भाव से दे देता है । इस तरह अन्य से दुष्कर ऐसे कार्य को करता है। भाव सहित अपने पदार्थों का मोह हटाकर श्रमणो को देता हुआ श्रावक श्रेष्ठ त्याग करता है, जिससे दुर्लभ और श्रेष्ठ लाभ प्राप्त करता है, महान निर्जरा और सहज पुण्य स चय करता है, धर्मभावों की वृद्धि करता है यावत् एक दिन सर्व कर्म क्षय करने वाला बनता है।

प्रश्न-५ : कर्मक्षय करके कर्मरहित बन जाने के बाद जीव गति कैसे करता है ? मोक्ष में लोकाग्र में कैसे जाता है ?

उत्तर- वास्तव में कर्म रहित जीव की गति आदि कोई प्रवृत्ति नहीं होती है इसीलिये सिद्ध भगव त अन तकाल तक एक सी स्थिति में शाक्तत स्थित रहते हक्त । तथापि अकर्मा जीव की एकबार प्रार भ में ए क समय मात्र की जो गति होती है उसके कारण इस प्रकार दर्शाये गयेहैक्त- (१) निस्स गता से- कर्मलेप हट जाने से । जिस प्रकार मिट्टी और घास के आठ लेप सुखा-सुखा कर लगाया गया तुम्बडा जल में छोड देने से नीची गति करके डूब जाता है फिर पानी से लेप उतर जाने पर एव मिट्टी घास के ब धन का स ग छूट जाने पर, स्वत: ऊची गति करके उपर आ जाता है। ठीक उसी प्रकार कर्म लेप छूट जाने से जीव की एक बार उर्ध्वगति होती है। (२) ब धन-छेदन से- मू ग आदि की फली धूप में सूखने पर उसमें से बीज उछल कर गति करता है उसी प्रकार कर्म के ब धन का छेदन हो जाने से जीव की एक बार

ऊर्ध्व गति होती है। (३) निर धनता से- इ धन का साथ छूट जाने से धूँआ उपर गति करता है उसी तरह कर्म ईन्धन से रहित हो जाने पर जीव की ऊर्ध्व गति होती है । (४) पूर्वप्रयोग से- धनुष खींच कर बाण फेंकने के बाद भी वह बाण कितनी ही देर गति करता रहता है । धनुष खींचने रूप पूर्वप्रयोग से बाण छूट जाने के बाद भी गति करता है, उसी प्रकार कर्म आत्मा से पूर्णतया छूट जाने पर उस पूर्व प्रयोग से कर्म मुक्त जीव की एक समय के लिये गति होती है । इस प्रकार इन चार प्रकार के हेतुओं से कर्म रहित जीव भी एक समय मात्र के लिये गति करता है ।

कर्म सहित जीव ही यहाँ स सार में रहकर दु:खी सुखी होता है, दु:ख से स्पृष्ट-अभिभूत होता है । इसी तरह २४ द डक के जीव भी समझ लेना । १. इस तरह सकर्मा जीव स्वयं दु:ख से स्पृष्ट होने के समान ही २. सकर्मा जीव ही कर्माश्रव करता है ३. और कर्मों की उदीरणा ४. वेदना ५. निर्जरा भी सकर्मा जीव करते हक्त ।

प्रश्न-६ : श्रमण अपने आहार को सदोष करके कैसे खाता है और निर्दोष खाना किस तरह करता है ?

उत्तर- गोचरी में ग्रहण किये हुए निर्दोष खाद्यपदार्थ या पेयपदार्थ को श्रमण-१. अच्छे मनोज्ञ पदार्थ से खुश-खुश होवे; उस आहार की, दाता की, बनाने वाले की प्रश सा, अनुमोदना करे; उन पुद्गलों को आसक्ति भाव से, मूर्च्छित होकर, गृद्धिपना करके खावे तो वह उस निर्दोष प्राप्त आहार को **इ गाल नामक दोष** युक्त कर लेता है । २. इसी तरह अमनोज्ञ पदार्थ के स योग में मन में दु:खी होवे; अप्रीति भाव करे; शिर, हाथ शब्द आदि से नाखुशी दिखावे; क्रोधमय नाराजी खेद खिन्नता दिखावे; इस प्रकार बिना मन, दु:खी मन से आहार करे तो वह उस निर्दोष प्राप्त आहार को **धूम दोष** युक्त बना लेता है । ३. प्राप्त आहार में स्वाद वृद्धि के हेतु से नमक, मिर्ची, शक्कर आदि स योज्य पदार्थ मिलाकर भोजन को स्वादिष्ट बनाकर, पुद्गलों में आन दानुभूति करते हुए खावें तो वह अपने निर्दोष आहार को **स योजना दोष** वाला बनाकर खाता है।

जो श्रमण इस प्रकार नहीं करके गोचरी में प्राप्त आहार को अनासक्ति से हर्ष-शोक किये बिना खाता है, विरक्ति भाव कायम रख कर खाता है, पुद्गलान दी नहीं बनता है, खिन्न भी नहीं होकर, शा त समाधि भाव रखकर, स्वाद का लक्ष्य नहीं बनाकर, देहपूर्ति के लिये जरूरी होने से, जो जैसा प्राप्त हुआ है उसे अच्छा खराब कुछ भी नहीं बोलते हुए एव नहीं सोचते हुए आहार करता है, वह श्रमण उक्त तीनों दोष नहीं लगाता है ।

जो श्रमण निर्दोष प्राप्त आहार को **(१)** दो कोष उपरा त आगे ले जाकर खावे पीवे, **(२)** प्रथम प्रहर में आहार प्राप्त कर चतुर्थ प्रहर में उसे खावे-पीवे, **(३)** दिन में प्राप्त आहार को सूर्यास्त बाद तक या रात्रि में खावे, **(४)** शरीर को अनावश्यक ऐसा अधिक मात्रा में बिन जरूरी खावे तो वह श्रमण ये चारों दोष युक्त आहार करने वाला होता है। १. साधु को अन्यत्र आहार ले जाने की क्षेत्रमर्यादा दो कोश की है । २. नवकारसी में लाये पदार्थ तीन प्रहर तक खाने–पीने की ही काल मर्यादा है । ३. रात्रि भोजन का साधु को त्याग आजीवन होता है ।४. ब्रह्मचर्य समाधि एव स्वास्थ्य सुरक्षा के लिये तथा सदा ऊणोदरी तप के लिये श्रमण को अल्प या मर्यादित आहार करना होता है । बिना विवेक के या आसक्ति से अमर्यादित खाना श्रमण जीवन के योग्य नहीं होता है ।

श्रमण का पूर्ण निर्वद्य–निर्दोष आहार– सावद्य प्रवृत्तियों के पूर्ण त्यागी एव शरीर के स स्कार श्रृ गार से रहित श्रमण–निर्ग्रंथ, अचित्त, त्रस जीव रहित, ४२ दोष रहित आहार करे । खुद आर भ करे-करावे नहीं, स कल्प करे नहीं, निम त्रित-क्रीत-उद्दिष्ट-आहार ग्रहण न करे, नवकोटि शुद्ध आहार स यम यात्रा निर्वाह के लिये करे; सुड-सुड, चव-चव आवाज न करते हुए, नीचे न गिराते हुए, अल्पमात्रा में भी स्वाद न लेते हुए आहार करे; मा डला के ५ दोष न लगावे । जल्दी-जल्दी या अत्य त धीरे-धीरे आहार न करे; विवेक युक्त समपरिणामों से आहार करे, तो यह शस्त्रातीत निर्वद्य आहार करना कहा जाता है ।
॥ उद्देशक–१ स पूर्ण ॥

प्रश्न–७ : पच्चक्खाण के कितने प्रकार है और सुप्रत्याख्यान किसे कहते हक्त ?

उत्तर– जिसने जीव-अजीव, त्रस-स्थावर प्राणियों को, उनके स्वरूप को भलीभा ति जान लिया है और वह समझकर उन सर्व प्राणियों की हिंसा का त्याग करता है उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है । वह अपने को हिंसा त्यागी कहता, मानता है तो भी उसका वह कहना और मानना सत्य है। इसी प्रकार असत्य, चोरी, कुशील परिग्रह आदि का यथार्थ स्वरूप समझकर जो इन पापों का त्याग करता है तो उसका प्रत्याख्यान यथार्थ है । इसके अतिरिक्त जो भी व्रत-नियम, तप-त्याग करता है उसके स्वरूप को एव विधि-विधान को अच्छी तरह समझ लेता है और लिये हुए उन त्याग प्रत्याख्यानों का यथार्थ पालन भावपूर्वक करता है तो उसका पच्चक्खाण सुपच्चक्खाण है और आचरण भी श्रेष्ट आराधना रूप होने से वही सच्चा प डित है और वही वास्तव में स वृत कहा गया है ।

पच्चक्खाण के भेद-प्रभेद– प्रत्याख्यान के दो प्रकार होते हक्त– (१) देश प्रत्याख्यान और (२) सर्व प्रत्याख्यान । देश प्रत्याख्यान श्रावक के और सर्व प्रत्याख्यान श्रमण के । पुनः इसके दो दो भेद हक्त– (१) देश मूलगुण प्रत्याख्यान (२) देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान (३) सर्व मूलगुण प्रत्याख्यान (४) सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान ।

(१) देश मूलगुण प्रत्याख्यान में श्रावक के पाँच अणुव्रत है। (२) देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान में श्रावक के तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत है तथा अन्य भी त्याग–तप–नियम देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान में समाविष्ट होते हक्त। (३) श्रमण के पाँच महाव्रत एव रात्रिभोजन त्याग सर्व मूलगुण प्रत्याख्यान है। (४) श्रमण के अन्य त्याग तप आदि उत्तर गुण प्रत्याख्यान है, यहाँ मूलपाठ में १० प्रत्याख्यान उत्तर गुण में कहे हक्त जिनका स्वरूप, प्रश्नोत्तरी भाग–२, पृष्ट–२१३ में स्थाना ग सूत्र के दसवें स्थान में समझाया है। स्वाध्याय ध्यान आदि भी श्रमण के उत्तर गुण में समाविष्ट किये गये हक्त– (उत्तरा.अ.२६) ॥

२४ द डक में २२ द डकवर्ती जीव अप्रत्याख्यानी होते हक्त ।

तिर्यंच प चेन्द्रिय अप्रत्याख्यानी, देशमूलगुण प्रत्याख्यानी एव देश उत्तर-गुण प्रत्याख्यानी होते हक्त । **मनुष्य** अप्रत्याख्यानी, देशमूलगुण, देश उत्तरगुण, सर्वमूलगुण, सर्वउत्तरगुण प्रत्याख्यानी यों पाँचों प्रकार के हो सकते हक्त ।

अल्पाबहुत्व- तिर्यंच प चेन्द्रिय में- देश मूलगुण प्रत्याख्यानी अल्प होते हक्त उससे देश उत्तरगुण प्रत्याख्यानी अस ख्यगुणा, अप्रत्याख्यानी अस ख्यगुणा । **मनुष्य में-** सर्व मूलगुण प्रत्याख्यानी (श्रमण) अल्प होते हक्त, देश मूलगुण प्रत्याख्यानी(श्रावक) स ख्यात गुणा, अप्रत्याख्यानी (स मूर्च्छिम मनुष्य)-अस ख्यात गुणा । इसी तरह उत्तरगुण प्रत्याख्यानी भी जानना ।

मनुष्य में प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी ये तीनों विकल्प होते है वैसे ही स यत, अस यत और स यता स यत ये तीनों भेद होते हक्त । तिर्यंच प चेन्द्रिय में दो-दो भेद होते हक्त । उसमें स यत और प्रत्याख्यानी ये दो (सर्व की अपेक्षा) नहीं होते हक्त । ॥ उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-८ : वनस्पति के आहार के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- यहाँ तीसरे उद्देशक में अपेक्षा से वनस्पति के आहार स ब धी विशेषताएँ कही गई है, यथा- (१) वर्षा में वनस्पति बहु आहारी होती है । इससे जल और जल की स्निग्धता प्रधान आहार वनस्पति का दर्शाया गया है ।(२) गर्मी में कई वनस्पतिया अधिक हरी-भरी फलती-फूलती दिखाई देती है वे वनस्पतियाँ उष्णयोनिक पुद्गलों को विशेष ग्रहण करती है । वहाँ उष्णयोनिक जीवों एव पुद्गलों का अधिक चय-उपचय होता है । (३) वनस्पति के १० विभाग कहे गये हक्त, वे अपने पूर्व-पूर्व विभाग से आहार ग्रहण करते हक्त । मूल विभाग के जीव पृथ्वी में से आहार ग्रहण कर परिणमाते हक्त । क द के जीव मूल के जीवों से आहार ग्रहण कर परिणमाते हक्त । इस तरह यावत् बीज के जीव फल के जीवों से आहार ग्रहण करते हैक्त क्यों कि वे फल के जीवों से प्रतिबद्ध एव वेष्टित होते हक्त ।

यहाँ सापेक्ष कथन करते हुए दर्शाया गया है कि वर्षाऋतु के

बाद क्रमशः वनस्पति कम-कम आहारी होती है, अ त में ग्रीष्मऋतु में प्रायः वनस्पतियाँ अल्प आहारी होती है, तथापि उष्णयोनिक वनस्पतियाँ उस समय भी उष्णयोनिक जीवों की उत्पत्ति से एव उष्णयोनिक पुद्गल स योग से अधिक फलती-फूलती है ।

सभी विभागों के जीव अपने विभाग तक ही स्पृष्ट एव अवगाहित होते हक्त, तथापि अपने पूर्व विभाग से वह विभाग स लग्न प्रतिबद्ध-स बद्ध होता है जिससे वह आहार प्राप्त करता है । अन त कायिक साधारण वनस्पति में एक-एक शरीर में अन त-अन त जीव होते हक्त उनका औदारिक शरीर, जन्म-मरण, श्वासोश्वास आदि एक रूप होता है तो भी तैजस-कार्मण शरीर, अध्यवशाय, कर्म और आत्मतत्त्व की अपेक्षा सभी का अपना अलग अस्तित्व भी होता है ।

प्रश्न-९ : लेश्या के साथ अल्पकर्मी-महाकर्मी की तुलना किस प्रकार होती है ?

उत्तर- स्वाभाविक रीत से नारकी में कृष्णलेशी महाकर्मी और क्रमशः नील एव कापोतलेशी उनसे अल्पकर्मी माने जाते हक्त तथापि स्थिति की अपेक्षा जिस नैरयिक की स्थिति आयुष्य का ज्यादा काल बीत चुका है, अल्प उम्र ही बाकी रही हो उस अपेक्षा कृष्णलेशी से नील-लेशी नैरयिक कभी महाकर्मी हो सकता है और नीललेशी से कापोत-लेशी अधिक कर्मी हो सकता है । इसी तरह कुल २३ द डक में लेश्या से तुलना की जा सकती है । ज्योतिषी देवो में केवल एक तेजोलेश्या होने से उसमें तुलना नहीं होती है ।

तात्पर्य यह है कि कोई भी लेश्या वाले अल्पकर्मी या महाकर्मी किसी न किसी अपेक्षा से हो सकते हक्त । २३ ही द डक में एका त नहीं मानकर सर्वत्र अनैका तिक विकल्प समझना चाहिये ।

प्रश्न-१० : वेदना-निर्जरा का परस्पर क्या स ब ध है?

उत्तर- कर्मों की वेदना के बाद निर्जरा होती है, वेदना का समय पहले है, निर्जरा का समय उसके अन तर है । वेदना, आत्मा में लगे कर्मों की होती है । वेदन के बाद कर्म-नोकर्म रूप बन जाता है उस नोकर्मस्वरूप की निर्जरा होती है । इसीतरह २४ ही द डक में कर्म

की वेदना पहले और नोकर्म स्वरूप की निर्जरा अन तर समय में होती है । कर्मवेदन के बाद आत्मा से उस कर्म की स्थिति समाप्त हो जाती है अत: उसे नोकर्म कहा गया है ।

चोवीस द डक, अनेक जीवों की अपेक्षा शाक्तत है और एक जीव की अपेक्षा एव पर्याय की अपेक्षा अशाक्तत है । क्यों कि एक जीव अधिकतम ३३ सागरोपम तक ही नरक या देव में रहता है । यों चोवीस ही द डक में प्रत्येक जीव की मर्यादित स्थिति ही होती है । ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-४ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-११ : आयुष्यकर्म वेदन या आयुष्यकर्म ब ध के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर- जीव इस भव में रहा हुआ ही आगे के भव का आयुष्य बा धता है किंतु मृत्यु समय में या मरने के बाद उत्पत्ति स्थान में वहाँ का आयुष्य नहीं बा धता है । यहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर मार्ग में जीव परभव का आयुष्य वेदन करता है और जन्मस्थल में पहुँचकर भी वहाँ परभव का आयुष्य वेदन करता है ।

नरक में उत्पन्न होने वाला जीव अपने पूर्वभव के अ तिम समयों में अल्प वेदना वाला या महावेदना वाला कैसा भी हो सकता है । नरक में उत्पन्न होते हुए वाटे वहेता में भी अल्पवेदना या महा वेदना वाला हो सकता है कि तु उत्पन्न होने के बाद जीवनभर वह ए का त दु:ख रूप वेदना वेदता है । कदाचित् देव स योग से शाता वेदना वेदता है ।

इसी तरह देव में उत्पन्न होने वाले जीव के स ब ध में भी समझ लेना चाहिये । देव उत्पन्न होने के बाद जीवनभर एका त सुख रूप वेदना वेदते हक्त कदाचित् अन्य देव के कोप से अशाता वेदना भी वेदते हक्त।

प्रत्येक जीव अपने जीवन में कभी भी एक बार अगले भव का आयुष्य बा धता है पर तु किसी को यह मालूम नहीं होता है कि्मक्त अभी आयुष्य बा ध रहा हूँ या मेरा अगला आयुष्य ब ध गया । इसलिये आयुष्य ब ध को अनाभोग निवर्तित कहा गया है । केवली भगवान

जान सकते हक्त कि यह जीव आयुष्य बा ध रहा है या इसने आयुष्य बा ध लिया है ।

१८ पाप के त्याग से जीव सुख रूप **शाता वेदनीय** कर्मों का स ग्रह-ब ध करते हक्त । पापों के सेवन से जीव दु:ख रूप फल वाले अशाता वेदनीय-**कर्कश वेदनीय** कर्म बा धते हक्त ।

प्राण, भूत, जीव और सत्त्व इन सभी जीवों को सुख पहुँचाने से, इन जीवों की अनुक पा-दया करने से, इन जीवों को दु:ख, स ताप या परिताप नहीं पहुँचाने से जीव शाता वेदनीय कर्म बा धता है, स ग्रह करता है । इसके विपरीत इन जीवों को दु:ख पहुँचाने से एव शोक, स ताप, परिताप पहुँचाने से जीव अशाता वेदनीय कर्मब ध करता है ।

प्रश्न-१२ : हमारे यहाँ छट्ठे आरे में भूमि की और मनुष्यों की क्या दशा होगी ?

उत्तर- छट्ठा आरा-दुषम-दुषमाकाल- हमारे यहाँ भरत क्षेत्र में इस प चम आरे के बाद छट्ठा आरा आएगा । वह काल मनुष्य तथा पशु-पक्षियों के लिये दु:खजनित हाहाकार शब्द से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रार भ में धूलि युक्त भय कर आँधी चलेगी, फिर स वर्तक हवा चलेगी, अरस, विरस, अग्नि, बिजली मिश्रित वर्षा होगी। जीव ज तु, वनस्पतियाँ, मनुष्य, पशु-पक्षी, पर्वत, नगर, नदियाँ सभी नष्ट भ्रष्ट हो जायेंगे । केवल शाश्वत ग गा-सि धु नदी और वैताढ्य पर्वत रहेंगे । उस वैताढ्य पर्वत में गुफा रूप में ७२ बिल दोनों नदियों के किनारे हक्त उनमें कुछ मनुष्य तिर्यंच रहेंगे । दोनों नदियों का पानी का पाट रथ के दोनों पहियों की दूरी जितना होगा एव रथ की धुरी प्रमाण पानी ऊँडा होगा जिसमें बहुत मच्छ कच्छ होंगे । उस समय मनुष्य दीन, हीन, काले, कुरूप होंगे । उत्कृष्ट एक हाथ का शरीर प्रमाण होगा एव अधिकतम २० वर्ष की उम्र होगी । उस समय वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श, स हनन, स स्थान सभी अशुभ होंगे ।

वे मनुष्य बहुत रोगी, क्रोधी, मानी, मायी, लोभी होंगे । वे सुबह-शाम बिलों में से बाहर निकलेंगे और मच्छ कच्छ को पकड कर जमीन में गाड देंगे । सुबह गाडे हुए को शाम को निकालकर

खायेंगे और शाम को गाडे हुए को सुबह निकाल कर खायेंगे । सूर्य बहुत तपेगा एव च द्रमा अत्य त शीतल होगा । जिससे गाडे हुए मच्छ कच्छ आदि पक जायेंगे । उस समय अग्नि नहीं होगी ।

व्रत पच्चक्खाण से रहित वे मनुष्य मा साहारी एव स क्लिष्ट परिणामी होंगे और मरकर प्राय: नरक, तिर्यंच गति में जायेंगे । यह आरा २१ हजार वर्ष का होगा। मनुष्यों का बचा-खुचा आहार, हड्डी, मा स, चर्म आदि पशु-पक्षी खाकर रहेंगे वे भी प्राय: नरक तिर्यंच में जायेंगे ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१३ : काम और भोग का वर्णन यहाँ किस अपेक्षा से है?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक-७ में पाँच इन्द्रिय के विषयों की अपेक्षा काम और भोग का वर्णन है । कान और आँख के विषय-शब्द और रूप को काम कहा गया है और नाक जिव्हा और शरीर के विषय ग ध, रस और स्पर्श को भोग कहा गया है । इसलिये कान या आँख वाले जीव कामी कहे गये है और नाक जिव्हा और शरीर वाले जीव भोगी कहे गये हक्त । काम से केवल इच्छा-मन की तृप्ति होती है और भोग से प्राप्त पुद्गलों से शरीर की भी तृप्ति-पुष्टि होती है । काम और भोग की वृत्ति-प्रवृत्ति जीवों को ही होती है, अजीवों के नहीं होती है । किन्तु काम-भोग के पदार्थ अर्थात् इन्द्रिय विषय रूप पदार्थ सजीव-अजीव दोनों प्रकार के हो सकते हक्त ।

२४ द डक में एकेन्द्रिय, बेइ न्द्रिय, तेइन्द्रिय जीव केवल भोगी ही होते हक्त; चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय कामी-भोगी दोनों होते हक्त ।

अल्पाबहुत्व- (१) कामीभोगी अल्प होते हक्त और (२) भोगी उससे अन तगुणे होते हक्त । सिद्ध जीवों को भी साथ रखने पर सब से थोडे कामी-भोगी, नो कामी नो भोगी सिद्ध अन तगुणा, भोगी जीव अन त गुणा । स्वेच्छा से एव उपलब्ध भोगों का त्याग करने से महानिर्जरा होती है अथवा तो कर्मों का अ त भी होता है, जिससे जीव देवगति में या मोक्षगति में जाता है ।

छद्मस्थ मनुष्य और आधोवधि ज्ञानी मनुष्य यदि देवलोक में उत्पन्न होते हक्त तो वे **क्षीणभोगी** नहीं होते हक्त क्यों कि वे वहाँ विपुल

काम-भोगों का सेवन करते हक्त । यदि आगामी भव मे वे भोगों का परित्याग करे तो महानिर्जरा एव मुक्ति प्राप्त करते हक्त।

परमावधिज्ञानी और केवलज्ञानी उसी भव में मुक्त होते हैक्त अत: वे क्षीणभोगी कहे जाते हक्त । वे कामभोगों का सेवन नहीं करते हक्त । इस शास्त्रपाठ के प्रश्न उत्तर से स्पष्ट होता है कि **परमावधिज्ञानी उसी भवमें मुक्त होते हक्त वे चरम शरीरी होते हक्त।**

असन्नि जीव इच्छा एव ज्ञान के अभाव में इच्छित सुख नहीं भोग सकते और सन्नी जीव आलस और अनुपयोग से इच्छित भोग सुख नहीं भोग सकते यह अकाम निकरण वेदना है । सन्नी जीव साधन के अभाव में अथवा क्षमता के अभाव में इच्छित सुख नहीं भोग सकते यह उनकी प्रकाम निकरण वेदना कही गई है । यथा- समुद्र पार की वस्तुएँ देखने के तथा देवलोक के सुखों को प्राप्त करने के साधन और क्षमता सन्नी मनुष्य में भी नहीं होती है । ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१४ : आत्मा और क्रिया के विषय में समानता किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर- हाथी और कीडी में आत्मा समान होती है । सभी आत्माओं के आत्मप्रदेश एक समान अस ख्य होते हक्त । जिस तरह एक दीपक का प्रकाश कमरे में फैला हुआ है उसे कोठी में रख देंगे तो उसका प्रकाश कोठी में समा जायेगा, घडे में रख देंगे तो उसमें समा जायेगा और छोटी डब्बी में रख देंगे तो उसमें समा जायेगा । उसी तरह आत्मप्रदेशों का स्वभाव स कोच विस्तार वाला है । उसे जैसा शरीर प्राप्त होगा वे उसी में समाविष्ट हो जायेंगे । इसलिये कहा गया है कि हाथी और कीडी में आत्मा एक समान है ।

अप्रत्याख्यान क्रिया हाथी और कीडी-कु थुवे को एक समान ही लगती है क्यों कि अविरति भाव की अपेक्षा दोनों समान है । ॥ उद्देशक-८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१५ : महाशिलाक टक और रथमूसल स ग्राम का क्या वर्णन है ?

उत्तर– हार और हाथी के लिये कोणिक राजा और चेडा राजा में युद्ध हुआ । दस दिन में कोणिक के १० भाई चेडा राजा के हाथ से मारे गये । ग्यारहवें दिन कोणिक की बारी थी पर तु उसने तीन दिन युद्ध स्थगित रखा और तेला करके शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र को आह्वान किया । दोनो पूर्व भव के मित्र थे। कोणिक के आग्रह से दोनों युद्ध में सामिल हुए। पहले दिन शक्रेन्द्र की मदद से **महाशिलाक टक** स ग्राम हुआ । जिसमें कोणिक का सैनिक तृण, पत्थर, क कर कुछ भी फेंके, चेडा की सेना में महाशिला पडने जैसा होवे । इस युद्ध में एक ही दिन में चौरासी लाख(हजार)का जनस हार हुआ । प्रथम दिन चमरेन्द्र केवल दर्शक रहा ।

दूसरे दिन चमरेन्द्र की मदद से **रथमूसलस ग्राम** हुआ । इसमें या त्रिक रथ चलता था उसके आगे मूसल लगा था वह घूमता था। रथ जिधर भी जाता मूसल के द्वारा जनस हार होता था। उस रथ में किसी सैनिक की आवश्यकता नहीं थी । देवनामी वह रथ स्वय चलता था बडी तेजी से दिनभर चलते रहने से उसदिन ९६ लाख (हजार) का जनस हार हुआ । दोनों दिन चेडा राजा की हार हुई । कोणिक की जीत हो गई । चेडा राजाने युद्ध ब ध कर नगररोध कर दिया । चमरेन्द्र शक्रेन्द्र दोनों चले गये । दो दिन में १ करोड ८० लाख(१ लाख ८० हजार) का घमासान हो गया ।

प्रश्न–१६ : चेडा राजा ने दोनों दिन में कोणिक को अपने अमोघ बाण का निशान क्यों नहीं बनाया है ?

उत्तर– शक्रेन्द्र ने वज्रमय अमोघ कवच की विकुर्वणा की और कोणिक के आगे रहकर उसकी सुरक्षा की । इस प्रकार दोनों ही दिन शक्रेन्द्र की सुरक्षा के कारण कोणिक पर चेडा का अचूक बाण लगने का अवसर ही नहीं मिला ।

प्रश्न–१७ : चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र दोनों सम्यग्दृष्टि देव थे और भगवान महावीर के श्रद्धावान थे तो ऐसा खोटा सहयोग क्यों किया ?

उत्तर– चमरेन्द्र पूर्व भव का तापसी प्रव्रज्या का कोणिक का साथी था । और शक्रेन्द्र पूर्व भव का स सार में मित्र था । और भगवान की सेवा में कभी कोणिक को वचन दे चुके थे । वचन में बद्ध दोनों इन्द्रों

को कोणिक के आग्रह में सम्मत होना पडा । राजनीति की प्रमुखता में मान–अपमान के नशे में धर्मनीति रीति नष्ट हो जाती है, बुद्धि भ्रस्ट हो जाती है । यों तो कोणिक और चेडा राजा आदि सभी प्रमुख जैनी, महावीर के परम भक्त थे। स सारी नीति या राजनीति के हावी होने पर कषायों की तीव्रता में धर्म या धर्मगुढ अथवा तीर्थंकर आदि कुछ भी नहीं दिखता है, वे लोग कषाय अ धे हो जाते हक्त । फिर वहाँ बिना इच्छा के मित्र को मित्रता का कर्तव्य निभाना पडता है । द्रौपदी का हरण भी मित्र देवता ने बिना इच्छा के वचन बद्धता के कारण किया था ।

इसी प्रकार की राजनीति में महाभारत के वर्णन अनुसार पाँडवों को सत्यपक्ष वाला समझते हुए भी द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह को अर्जुन के सामने प्रतिपक्ष में युद्ध खेलना पडा और दुर्योधन के असत्य पक्ष से हथियार उठाकर पाँडवों की सेना का स हार करना पडा यह सब होनहार की प्रमुखता से बनाव बन जाते हक्त ।

प्रश्न–१८ : युद्ध में मरने वालों की वीरगति होती है क्या वे देव गति में जाते हक्त ?

उत्तर– कषाय के परिणामों से तीव्र क्रोध में, हिंसा–रौद्र भावों में मरने से प्राय: दुर्गति ही होती है । चेडा–कोणिक के इस युद्ध में एक जीव देवलोक में गया स लेखना स थारा करने से । एक जीव मित्र के धर्म की नकल करने से मनुष्यभव पाया । दस हजार जीव एक मछली के गर्भ में गये । बाकी सभी प्राय: अलग–अलग नरक तिर्यंच में गये । तात्पर्य यह है– 'लडाई में लाडु नहीं ब टते' यह कहावत है । युद्ध में जीवों की अच्छी गति कम होती है दुर्गति ज्यादा होती है क्यों कि वहाँ जीवों की क्लिष्ट, क्रूर, हिंसक परिणाम होते हक्त जिससे वे नरकगामी बनाते हक्त ।

प्रश्न–१९ : दो दिन में १ करोड ८० लाख मरने की बात प्रेकटीकल मानस से सोचकर उसे १ लाख ८० हजार माना जा सकता है ?

उत्तर– किसी भी प्राचीन प्रत में ऐसा पाठ मिलता नहीं है, सभी प्रतों में यही स ख्या मूलपाठ में मिलती है । यह स ख्या दो दिन की है अन्य

[illegible]

प्रश्न-२१ : कालोदई अणगार का क्या परिचय है और उसने भगवान से क्या-क्या प्रश्न किये ?

उत्तर– राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान के निकट अन्यतीर्थिकों का आश्रम था । वहाँ कालोदायी आदि अनेक स न्यासी रहते थे । एक बार उनमें आपस में चर्चा हुई कि ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान प चास्तिकाय बताते हैं । उसमें एक रूपी चार अरूपी एव एक जीव, चार अजीव है इत्यादि । तो ऐसा कैसे माना जा सकता ?

स योगवश भगवान महावीरस्वामी राजगृही में पधारे एव गुणशील उद्यान में विराजे । गौतमस्वामी नगरी से अपना बेले का पारणा लेकर आ रहे थे । स न्यासीओं ने गौतमस्वामी को आते हुए देखा, आपस में वार्ता करी कि अपने को अस्तिकाय की बात समझ में नहीं आ रही है तो गौतम स्वामी से पूछ लेनी चाहिये । तत्काल निर्णय कर कुछ स न्यासी मार्ग में ही गौतमस्वामी के पास पहुँच गये और अपनी श का रख दी । गौतमस्वामी ने विषय को ल बा न करते हुए कहा कि– हम अस्तिभाव को ही अस्तिभाव कहते है और नास्तिभाव को नास्तिभाव कहते है, हम कोई विपरीत कथन नहीं करते हक्त । आप लोग स्वय इसका अपने ज्ञान से विचार करें।

कालोदायी की जिज्ञासा दृढ हुई । वह भगवान के समवसरण में पहुँचा। भगवान ने उसे स बोधन करके उसकी जिज्ञासा प्रगट करते हुए समझाया कि प चास्तिकाय की बात सत्य है । जीवास्तिकाय के सिवाय धर्मास्तिकाय आदि चार अजीव अस्तिकाय है। पुद्गलास्तिकाय के सिवाय चार अरूपी अस्तिकाय है। जीवास्तिकाय अरूपी जीव है और पुद्गलास्तिकाय रूपी अजीव है ।

(१) तब कालोदायी ने वापिस पूछा कि ये प चास्तिकाय है तो क्या ये जीवों के बैठने, उठने, सोने आदि के उपयोग में आती है ? भगवान ने फरमाया कि पाँच में से एक पुद्गलास्तिकाय जो रूपी अजीवकाय है उस पर जीवों के रहने, बैठने, सोने आदि की प्रवृत्ति हो सकती है । शेष चार अरूपी है उन पर ऐसी कोई क्रिया नहीं हो सकती । कालोदायी ने पुनः प्रश्न किया कि–

(२) हे भगवन् ! जीव को अशुभ फल देने वाले पापकर्म क्या इस रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय से लगते हक्त ? भगवान ने कहा– हे कालोदायी ! अजीव पुद्गलास्तिकाय से नहीं कि तु जीवास्तिकाय से जीवों को हिंसादि से पापकर्म लगते हक्त ।

स्क धक स न्यासी के समान भद्र परिणामी कालोदायी ने भी सरलता के साथ उपदेश सुना और वैराग्य भावों से स यम स्वीकार किया । ग्यारह अ गों का अध्ययन किया । स यम पालन करते हुए कालोदाई अणगार ने यथासमय अन्य भी प्रश्न भगवान से पूछे थे, उनके समाधान का भाव इस प्रकार है– (३) कोई सरस स्वादिष्ट भोजन करता है जो कि विषमिश्रित है, खाने में वह भले सुखकर होता है कि तु जब उसका परिणमन होता है तब वह अशुभ फलदायी होता है। उसी प्रकार जीव को अठारह पापों का सेवन भले प्रार भ में अच्छा लगता है कि तु उसका पाप फल उदय में आने पर जीव को दुःख रूप में भुगतना पडता है । पर तु औषध मिश्रित भोजन-खाद्य पदार्थ भले कटुक-अप्रिय भी लग सकता है कि तु उसका परिणमन होने पर वह जीव को हितकारी सुखकारी होता है। उसी प्रकार जीव को १८ पाप का त्याग रूप धर्माचरण भले कठिन और दुष्कर लगता है कि तु उसका परिणाम जीव को सुखकर शुभगति या मोक्षगति प्रदान करने वाला होता है ।

(४) अग्नि जलाने में पृथ्वीकाय आदि त्रसकाय पर्यंत का अधिक आर भ होता है और अग्नि को बुझाने में अन्य कायों का आर भ अल्प या नहीं भी होता है। अतः अग्नि जलाने में आश्रव, कर्म, क्रिया अधिक-अधिक होते है कि तु अग्नि बुझाने में मात्र अग्निकाय जीवों का आर भ ही विशेष होता है ।

(५) तेजोलेश्या लब्धि से छोडे गये पुद्गल अचित्त होते हुए भी प्रकाशित होते हक्त । कालास्यवेसि अणगार के समान स लेखना स थारा करके कालोदायी अणगार भी उसी भव से स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त हुए ।

शतक–८ : उद्देशक–१ से १०

प्रश्न–१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– प्रस्तुत शतक में दस उद्देशकों के माध्यम से विध–विध अनेक विषयों का स कलन है । शतक के प्रार भ में उद्देशकों के नाम–विषय का निर्देश करने वाली एक स ग्रहणी गाथा है तदनुसार उद्देशक परिचय इस प्रकार है–

(१) पुद्गल– इस उद्देशक में पुद्गल परिणमन के मुख्य तीन परिणाम बताकर उनके भेद–प्रभेद एव तत्त्व विस्तार किया गया है।

(२) आशीविष– इस उद्देशक में जाति और कर्म आशीविष का वर्णन करके, ज्ञान स ब धी विषय का अनेक प्रकार से निरूपण है ।

(३) वृक्ष– इसमें स ख्यात जीवी आदि वृक्ष का एव शरीर से कटकर अलग हुए अ ग के बीच में आत्मप्रदेश का निरूपण है तथा रत्नप्रभा पृथ्वी के चरम अचरम स ब धी स क्षिप्त वर्णन प्रज्ञापना सूत्र पद–१० की भलावण युक्त है ।

(४) क्रिया– प्रज्ञापना पद–२२ का स क्षिप्त सूचन युक्त कथन है ।

(५) आजीव– इस उद्देशक में आजीविकोपासकों के सिद्धा त–आचार का वर्णन है तथा श्रमणोपासक की सामायिक का एव व्रतों का निरूपण है ।

(६) प्रासुक– इस उद्देशक में श्रमणों को प्रासुक आहार दान का फल, स्थविरों के लिये आहार, जीवों को परस्पर लगने वाली कायिकी आदि पाँच क्रिया, आलोचना स ब धी आराधना-विराधना आदि विषयों का वर्णन है ।

(७) अदत्त– इस उद्देशक में अन्यतीर्थिकों द्वारा अदत्त का आक्षेप युक्त वार्तालाप है ।

(८) प्रत्यनीक– इसमें प्रत्यनीक के प्रकार, पाँच व्यवहार, ऐर्यापथिक तथा सा परायिक ब ध, कर्म और परीषह तथा सूर्य का प्रकाश इत्यादि विषयों का वर्णन है ।

(९) ब ध– इस उद्देशक में विश्रसा ब ध और प्रयोग ब ध एव पाँच शरीर प्रयोग ब ध स ब धी वर्णन है ।

(१०) आराधना– इसमें श्रुतशील की आराधना, ज्ञानदर्शन चारित्र की आराधना स ब धी वर्णन के बाद पुद्गल–पुद्गलास्तिकाय, कर्म की परस्पर नियमा भजना एव जीव के पुद्गल–पुद्गली होने का कथन है ।

प्रश्न–२ : पुद्गल परिणमन कितने प्रकार के हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर– परिणमन की अपेक्षा पुद्गल तीन प्रकार के होते हक्त– **(१) प्रयोग परिणत**– जीव के प्रयत्न से परिणमन को प्राप्त अर्थात् जीव से ग्रहित परिणामित पुद्गल प्रयोग परिणत है । **(२) मिश्रपरिणत**– भूतकालीन जीव का प्रयोग भी रहे और विश्रसा परिणमन भी हो । यथा– मृत कलेवर आदि। **(३) विश्रसा परिणत**– जीव के प्रयोग बिना स्वाभाविक पुद्गल परिणमन, वर्णादि परिणमन, सडन, गलन, विध्व सन, स्क धों का बनना–बिखरना, धूप, छाया, बादल वगेरे ये सभी जीव के प्रयोग बिना परिणत होते हक्त। अत: ये सभी विश्रसा परिणत पुद्गल कहे जाते हक्त।

प्रश्न–३ : प्रयोग परिणत पुद्गलों के कितने भेद–प्रभेद हक्त ?

उत्तर– जीव से ग्रहित परिणामित होने से जीव के भेद अनुसार प्रयोग परिणत के भेद होंगे । **(१)** प्रस्तुत में प्रथम द्वार से जीव के ८१ भेद की विवक्षा की गई है अत: प्रयोगपरिणत के ८१ भेद होते हक्त, यथा– पाँच एकेन्द्रिय के सूक्ष्म–बादर के भेद–१० । तीन विकलेन्द्रिय के–३ । नरक के–७ । तिर्यंच प चेन्द्रिय के पाँच सन्नी, पाँच असन्नि, यों–१० । मनुष्य के सन्नी–असन्नि–२ । देवों में भवनपति के–१०, व्य तर के–८, ज्योतिषी के–५, वैमानिक के १२ देवलोक ९ ग्रैवेयक ५ अणुत्तर विमान यों–२६ भेद । कुल– १०+३+७+१०+२+१०+८+५+२६=८१ ।

(२) दूसरे द्वार में जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त भेद की विवक्षा से ८१ X२=१६२ भेद । कि तु असन्नि मनुष्य में अपर्याप्त ही है अत: एक घटाने से १६२–१=१६१ भेद प्रयोग परिणत के होते हक्त ।

(३) तीसरे द्वार में जीवों के १६१ भेद में शरीर की अपेक्षा से भेद किये हक्त । तीन शरीर कम से कम सभी के होने से १६१X३=४८३ हुए । इसमें सन्नी मनुष्य पर्याप्त के पाँच शरीर होने से २ ज्यादा है, पाँचों सन्नी तिर्यंच में ४ शरीर होने से १ ज्यादा होने से कुल-५ बढे तथा वायुकाय में १ बढा यों कुल २+५+१=८ बढे । अत: ४८३+८=४९१ शरीर परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(४) चौथे द्वार में १६१ जीवों के इन्द्रियों की अपेक्षा प्रयोग परिणत के ७१३ भेद किये हक्त । पर्याप्त-अपर्याप्त २० एकेन्द्रिय के २० इन्द्रियाँ, तीन विकलेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त-६ के २X२ + ३X२ + ४X२ = १८ इन्द्रियाँ । १६१-२६=१३५ प चेन्द्रिय जीवों के पाँच इन्द्रिय होने से-१३५X५=६७५+२०+१८=७१३ इन्द्रियापेक्षा प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(५) पाँचवें द्वार में ४९१ शरीरों की इन्द्रिया अलग-अलग गिनने से **शरीर की इन्द्रियों के प्रयोग** परिणत पुद्गल २१७५ प्रकार के होते हक्त । बीस ऐकेन्द्रिय के ६१ शरीरों की ६१ इन्द्रियाँ । बेइन्द्रिय के दो भेद में तीन तीन शरीरों के दो-दो इन्द्रिय होने से २X३X२=१२; तेइन्द्रिय में २X३X३=१८; चौरेन्द्रिय में- २X३X४=२४ इन्द्रिया होती है । ये कुल- ६१+१२+१८+२४=११५ इन्द्रियाँ ७९ शरीर (६१+१८)की होती है । प चेन्द्रिय के ४९१-७९=४१२ शरीर की ४१२ X ५=२०६० इन्द्रियाँ होती है ।अत: २०६०+११५=२१७५ शरीर के इन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(६) छट्ठे द्वार में जीवों के वर्णादि २५ बोल की अपेक्षा १६१ जीवों के २५ बोल होने से १६१X२५ = ४०२५ जीवों के वर्णादि प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(७) सातवें द्वार में शरीर के वर्णादि २५ बोल की अपेक्षा ४९१ शरीर के २५ बोल होने से ४९१ X २५ = १२२७५ भेद होते हक्त । कार्मण शरीर में ४ स्पर्श कम होने से १६१ जीवों के कार्मणशरीर होने से १६१ X ४ = ६४४ कम करने से १२२७५-६४४ = ११६३१ शरीरों के वर्णादि प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(८) आठवें द्वार में इन्द्रियों के वर्णादि २५ बोल की अपेक्षा ७१३ इन्द्रिय होने से ७१३X२५=१७८२५ इन्द्रिय के वर्णादि प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

(९) नवमें द्वार में शरीर की इन्द्रियों के वर्णादि २५ बोल की अपेक्षा की गई है । शरीर की इन्द्रिया २१७५X२५ वर्णादि =५४३७५ भेद होते हैं जिसमें कार्मण शरीर ७१३ के ४ वर्ण कम=७१३ X ४=२८५२ कम करने से- ५४३७५-२८५२=५१५२३ शरीर की इन्द्रियों के वर्णादि प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

इस तरह ९ द्वारों से ९ अपेक्षा से प्रयोग परिणत पुद्गल के भेद कहे हक्त । स क्षिप्त में प्रथम द्वार अनुसार ८१ जीवों की अपेक्षा ८१ प्रकार के प्रयोग परिणत पुद्गल होते हक्त ।

प्रश्न-४ : मिश्रपरिणत और विश्रसापरिणत के कितने भेद-प्रभेद कहे गये है ?

उत्तर- मिश्रपरिणत पुद्गल में जीव का प्रयोग अवशेष होता है अत: प्रयोग परिणत के भेद-प्रभेद जैसे ही मिश्रपरिणत के भेद होते हक्त । **विश्रसापरिणत** में रूपी अजीव के ५३० भेद की अपेक्षा ५३० प्रकार कहे गये हक्त । जिसमें ५ वर्ण के-१००, दो ग ध के-४६, पाँच रस के-१००, आठ स्पर्श के- २३X८=१८४, भेद जोडने से कुल-१००+४६+१००+१८४+१००=५३० भेद होते हक्त ।

प्रश्न-५ : प्रयोगपरिणत आदि को अन्य भी किस-किस अपेक्षा से कहा गया है ?

उत्तर- प द्रह योग एव उनके स र भ, समार भ, आर भ तथा अस र भ, असमार भ, अनार भ की अपेक्षा एक द्रव्य के प्रयोग परिणत आदि के अस योगी भ ग कहे गये हक्त । जिसमें प्रयोग परिणत-४७४, मिश्रपरिणत भी ४७४ और विश्रसापरिणत-५३० भ ग होते हक्त । अत: कुल-४७४+४७४+५३०=१४७८ एक द्रव्य के परिणमन के विकल्प हो सकते हक्त ।

इसी तरह दो द्रव्यों, तीन द्रव्यों एव चार से अन त द्रव्यों का

कथन है । उनके भी अस योगी, द्विस योगी, तीन स योगी, चार स योगी आदि से भ ग बन सकते हक्त । वे गा गेय अणगार के भ गो के समान समझना । ***(यहाँ मूलपाठ में दस स योगी के बाद बारह स योगी पाठ है, ग्यारह स योगी भ ग नहीं होने का कोई कारण स्पष्ट नहीं है कि तु गा गेय अणगार के भा गों का अतिदेश किया होने से 'ग्यारह स योगी' शब्द लिपिदोष से छूटा हो ऐसा स भव लगता है। तथापि विशेष ज्ञानी गम्य । क्यों कि किसी भी उपलब्ध प्रति में वह शब्द मिलता नहीं है ।)***

अल्पबहुत्व- (१) सबसे अल्प प्रयोग परिणत पुद्‌गल (२) मिश्र परिणत पुद्‌गल अन तगुणा (३) विश्रसा परिणत पुद्‌गल अन तगुणा ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : आशीविष कितने प्रकार के कहे गये हक्त ? इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर- आशी = शीघ्र । शीघ्र विषमय बना देने की शक्ति क्षमता को आशीविष कहा जाता है अथवा आशी = दाढा । दाढा स ब धी विष = आशीविष । यह दो प्रकार का होता है-जाति आशीविष और कर्म आशीविष । **(१)** जन्म स्वभाव से ही प्राणी के मुख में ड क में दाढा में विष होता है वह **जाति आशीविष** है । सभी जीवों के अल्पाधिक मात्रा में यह विष होता है । विशेषता की अपेक्षा प्रस्तुत उद्देशक-२ में बिच्छु, मेढक, सर्प और मानव का आशीविष कहा गया है । इस स ब धी स्पष्टीकरण प्रश्नोत्तरी भाग-२, स्थाना ग सूत्र-४/४ पृष्ट-१२७ में किया गया हक्त ।

(२) कर्मआशीविष- लब्धि स ब धी आशीविष को कर्म आशीविष कहा गया है । यह आशीविष लब्धि मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय को होती है । जिस प्रकार तेजोलेश्या लब्धि के प्रयोग से किसी भी व्यक्ति या पदार्थ को तप्त किया जा सकता है या जलाकर भस्म किया जा सकता है इसी तरह इस लब्धि वाला कषाय के परिणामों में लब्धि प्रयोग करके किसी भी व्यक्ति आदि को विषयमय बनाकर पीडित या नष्ट कर सकता है ।

कषाय के परिणामों में लब्धिप्रयोग करने वाले में उद्देश्य-प्रस ग की भिन्नता से शुभ या अशुभ कोई भी लेश्या हो सकती है, जैसे कि पुलाक लब्धि प्रयोग आक्रोशभाव युक्त अवस्था से किया जाता है तथापि पुलाक लब्धि प्रयोग करने वाले में तीन शुभ लेश्या ही मानी गई है । उसी प्रकार प्रस्तुत आशीविष लब्धि वाले में छहों लेश्या हो सकती है जिससे वह उस लब्धिप्रयोग अवस्था में काल करके भवनपति से आठवें देवलोक तक भी जा सकता है । पुलाक लब्धि वाले निर्ग्रंथ की भी उत्कृष्ट आठवें देवलोक तक की गत बताई गई है ।

इस प्रकार यह कर्म आशीविष लब्धि का प्रयोग करने वाला मनुष्य या तिर्यंच काल करके भवनपति से लेकर आठवें देवलोक तक में कहीं भी उत्पन्न होवे तो उसकी यह लब्धि आगे के भव की अपर्याप्त अवस्था में कुछ समय तक रह सकती है । इसी अपेक्षा से भवनपति से आठवें देवलोक तक के देवों में अपर्याप्त अवस्था में कर्म आशीविष माना गया है । आठवें देवलोक से आगे जाने की योग्यता पुलाक या कर्म आशीविष लब्धि प्रयोग करने वालों के परिणामों की नहीं होती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत में कर्म आशीविष, मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय के पर्याप्ता में तथा आठवें देवलोक तक के देवों के अपर्याप्ता में माना गया है । इसके सिवाय नारकी, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय में तथा ९ वें देवलोक से उपर के देवों में कर्म आशीविष नहीं होता है तथा भवनपति से आठवें देवलोक तक के पर्याप्ता देवों में भी कर्म आशीविष का यहाँ निषेध किया गया है।

प्रश्न-७ : छद्मस्थ व्यक्ति किन दस तत्त्वों को जान-देख नहीं सकता है ?

उत्तर- केवलज्ञानी के सिवाय यहाँ सभी को छद्मस्थ गिना गया हक्त । छद्मस्थों का ज्ञान सीमित होता है उस सीमित ज्ञान द्वारा अत्य त सूक्ष्म तत्त्व का या अरूपी तत्त्वों का या अन त-विशाल तत्त्वों का ज्ञान नहीं हो सकता । केवलज्ञान से ये सभी तत्त्व जाने-देखे जा सकते हक्त ।

केवलज्ञानी सर्वज्ञ होते हक्त । उनसे कोई भी तत्त्व अज्ञात नहीं रहता । उनके ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाता है । अत: प्रस्तुत में कहे गये १० तत्त्व छद्मस्थ नहीं जान-देख सकते हक्त कि तु केवलीज्ञानी उन्हें स्पष्टत: जान देख सकते हक्त- **(१)** धर्मास्तिकाय **(२)** अधर्मास्तिकाय **(३)** आकाशास्तिकाय **(४)** शरीर रहित जीव; ये चारों अरूपी है । **(५)** परमाणु **(६)** शब्द **(७)** ग ध **(८)** वायु । ये चार रूपी है पर तु अत्य त सूक्ष्म तत्त्व हक्त;इन चारों को सामान्य छद्मस्थ अवधिज्ञानी नहीं जानते कि तु विशिष्ट अवधिज्ञानी या परमावधिज्ञानी जो केवलज्ञान की क्षमता के अत्य त नजदीक होते हक्त और छद्मस्थ अवस्था के भी उपरी स्टेज के होते हक्त वे जान-देख सक्तेहक्त; उन्हें यहाँ अपेक्षा से नहीं गिने हक्त, नगण्य किया गया है । **(९)** यह व्यक्ति केवली बनेगा **(१०)** यह व्यक्ति मुक्त होगा; ये दोनों तत्त्व ज्ञान सर्वज्ञानी का विषय है । अत: छद्मस्थ स्वत: नहीं जान सकता कि तु किसी से सुनकर परत: जान सक्ते हक्त ।

प्रश्न-८ : ज्ञानलब्धि का थोकडा क्या है और इसमें किस विषय को समझाया गया है ?

उत्तर- प्रस्तुत दूसरे उद्देशक में ५ ज्ञान, ३ अज्ञान को आधार करके अनेक प्रकार से ज्ञान अज्ञान की उपलब्धि अनुपलब्धि की विचारणा की गई है । ज्ञान की उपलब्धि स ब धी इस वर्णन को क ठस्थ करने की पद्धति में स पादित करके उसे **ज्ञानलब्धि का थोकडा-प्रकरण** ऐसी स ज्ञा नामकरण किया गया है । पाँचों ज्ञान का स्वरूप न दीसूत्र में है और तीन अज्ञान का स्वरूप तीन ज्ञान के समान है। विशेष में यहाँ विभ गज्ञान के लिये यह बताया गया है कि- विभ गज्ञान विभिन्न आकार वाला होता है, यथा- ग्राम, नगर, वृक्ष, पर्वत, क्षेत्र, स्तूप, हाथी, घोडा, मनुष्य, बैल, पशु-पक्षी, देवता, वानर आदि किसी भी आकार का हो सकता है; वह कोई भी क्षेत्र, घर, घर का अ श या अन्य वस्तु का अ शमात्र हो सकता है । तात्पर्य यह है कि उपरोक्त कोई भी वस्तु दिखे जितने मात्र का लघु विभ गज्ञान भी किसी को हो

सकता है । जिससे परोक्ष में रही ये वस्तुएँ विभ गज्ञानी को ज्ञान में दिखने लगती है कि तु वह कुछ भी समझ पावे या नहीं भी समझ पावे कि यह मुझे क्या दिख रहा है ? क्यों दिख रहा है ? इत्यादि वह निर्णय भी कर पावे या अज्ञान के कारण नहीं कर पावे ।

जीवों को ५ ज्ञान में से कभी २ ज्ञान, कभी ३ ज्ञान, कभी ४ ज्ञान होते हक्त । कभी मात्र एक ज्ञान ही होता है । अज्ञान में दो अज्ञान या तीन अज्ञान हो सकते हक्त । जघन्य मति श्रुत दो ज्ञान या दो अज्ञान अवश्य होते हक्त । अवधि, मन:पर्यवज्ञान और विभ गज्ञान विकल्प से होते रहते हक्त । तब ३ ज्ञान या ४ ज्ञान अथवा ३ अज्ञान होते हक्त । जब जीव को केवलज्ञान होता है तब मति आदि चारों ज्ञान नहीं रहते हक्त । उनका समावेश केवलज्ञान में हो जाता है । एव तीन अज्ञान भी नहीं होते है ।अत: उस समय एक ज्ञान ही होता है । इसी ज्ञान-अज्ञान की भजना रूप उपलब्धि की अनेक द्वारों से एव उनके अ तर्गत भेदों से यहाँ विचारणा की गई है यथा-

(१) जीव- प्रथम नरक, भवनपति, व्य तर देवों में से जन्मसमय किसी में(असन्नि से आने वाले में) २ अज्ञान होते हक्त, किसी में (सन्नी से आने वाले में) तीन अज्ञान प्रार भ से होते हक्त । अत: इनमें तीन अज्ञान की भजना और ज्ञान तो इनमें सभी में जन्म से तीन ही होते हैं अत: ३ ज्ञान की नियमा । शेष ६ नरक और शेष ज्योतिषी आदि देवों में नवग्रैवेयक तक ३ अज्ञान ३ ज्ञान की नियमा । अणुत्तर देवों में ३ ज्ञान की नियमा और अज्ञान नहीं होवे । तिर्यंच प चेन्द्रिय में तीन ज्ञान, तीन अज्ञान की भजना अर्थात् किसी में २ ज्ञान या २ अज्ञान होवे किसी में ३ अज्ञान या ३ ज्ञान होवे । मनुष्य में पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान की भजना । किसी में २,३,४,१ ज्ञान होवे एव किसी में २ अज्ञान या तीन अज्ञान होवे। पाँच स्थावर में सिर्फ दो अज्ञान की नियमा । तीन विकलेन्द्रिय में दो ज्ञान या दो अज्ञान की नियमा अर्थात् उसमें तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नहीं होवे । अत: दो-दो की नियमा कही गई है ।

(२) वाटे वहेता जीव- नरकगतिक, देवगतिक, जन्म के पूर्व मार्ग

में चलते जीव, में ३ अज्ञान की भजना (असन्नि से आने की अपेक्षा २ ही होंगे) और ३ ज्ञान की नियमा अर्थात् दोनों के वाटे वहेता में ज्ञान होंगे तो तीन ही होंगे । तिर्यंचगतिक वाटे वहेता में २ ज्ञान या २ अज्ञान नियमा होते हक्त । कोई भी तीन ज्ञान या तीन अज्ञान लेकर तिर्यंच में नहीं जाता है ।

मनुष्य गति में वाटे वहेता में ३ ज्ञान की भजना २ अज्ञान की नियमा अर्थात् मनुष्य में उत्पन्न होने वाले में ज्ञान दो या तीन वाटेवहेता में हो सकते हक्त । और अज्ञान तो नियमतः दो ही होते हक्त । मनुष्य में उत्पन्न होने वाला अवधिज्ञान लेकर आ सकता है कि तु विभ गज्ञान मनुष्य को उत्पत्ति समय में नहीं होता है ।

इसी तरह आगे भी अनेक (१४) द्वारों के भेदों में ज्ञान-अज्ञान की नियमा-भजना इस प्रकरण में बताई गई है । वे द्वार और उनके भेद इस प्रकार है-

(१) इन्द्रिय-७ = सइन्द्रिय, एकेन्द्रिय आदि ५ और अनिन्द्रिय । **(२)** काया- ८ = सकाय, छ काया और अकाय । **(३)** सूक्ष्म-बादर-३ = सूक्ष्म, बादर, नोसूक्ष्म नोबादर । **(४)** पर्याप्त-अपर्याप्त-२ ।**(५)** भवस्थ-१ ।**(६)** भवी-अभवी-२। **(७)** सन्नी-३ । **(८)** योग-५ = सयोगी, तीन योगी, अयोगी (९) लेश्या-८ = सलेशी, ६ लेश्या, अलेशी । **(१०)** कषाय-६ । **(११)** वेद-५ । **(१२)** आहार-२ । **(१३)** उपयोग-२ **(१४)** लब्धि- इसमें ६८ भेद किये हक्त, यथा- १२ उपयोग में, ८ ज्ञान के अभाव में, ८ दर्शन में (समुच्चय दर्शन और सम्यग् आदि तीन दर्शन और इन चारों के अभाव में), १२ चारित्र में (समुच्चय चारित्र और पाँच चारित्र और इन ६ के अभाव में), ५ दानादि लब्धि में, ५ दानादि अलब्धि में । ३ बालवीर्य आदि में, ३ बालवीर्य आदि के अभाव में । १२ इन्द्रिय में = सइन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय ये ६ और इनके अभाव में ।

इन कुल १२२ भेदों से(बोलों से) ज्ञान अज्ञान की भजना नियमा का वर्णन किया गया है । इन १२२ बोलों की नियमा भजना को **कोष्टक** द्वारा दिया जाता है ।

१२२ बोलो में ज्ञान अज्ञान की नियमा भजना :-

	बोल	भजना		नियमा	
		ज्ञान	अज्ञान	ज्ञान	अज्ञान
१ - २	सइन्द्रिय प चेन्द्रिय में	४	३	-	-
३	एकेन्द्रिय में	-	-	-	२
४ - ६	विकलेन्द्रिय में	-	-	२	२
७	अनिन्द्रिय में	-	-	१	-
८-९	सकाय त्रसकाय में	५	३	-	-
१० - १४	पृथ्वीकाय आदि पाँच में	-	-	-	२
१५	अकाय में	-	-	१	-
१६	सूक्ष्म में	-	-	-	२
१७	बादर में	५	३	-	-
१८	नोसूक्ष्म नोबादर में	-	-	१	-
१९	पर्याप्त में	५	३	-	-
२०	अपर्याप्त में	३	३	-	-
२१	भवस्थ में	५	३	-	-
२२	भवी में	५	३	-	-
२३	अभवी में	-	३	-	-
२४	सन्नी में	४	३	-	-
२५	असन्नी में	-	-	२	२
२६	नोसन्नी नोअसन्नी में	-	-	१	-
२७-३०	सयोगी, ३ योग में	५	३	-	-
३१	अयोगी में	-	-	१	-
३२-३३	सलेशी शुक्ललेशी में	५	३	-	-
३४-३८	पाँच लेश्या में	४	३	-	-
३९	अलेशी में	-	-	१	-
४०-४४	सकषायी ४ कषायी में	४	३	-	-
४५	अकषायी में	५	-	-	-

	बोल	भजना		नियमा	
		ज्ञान	अज्ञान	ज्ञान	अज्ञान
४६-४९	सवेदी तीन वेद में	४	३	-	-
५०	अवेदी में	५	-	-	-
५१	आहारक में	५	३	-	-
५२	अणाहारक में	४	३	-	-
५३-५४	दोनों उपयोग में	५	३	-	-
५५-५८	चार ज्ञान में	४	-	-	-
५९	केवलज्ञान में	-	-	१	-
६०-६१	दो अज्ञान में	-	३	-	-
६२	विभ ग ज्ञान में	-	-	-	३
६३-६४	चक्षु-अचक्षुदर्शन में	४	३	-	-
६५	अवधि दर्शन में	४	-	-	३
६६	केवल दर्शन में	-	-	१	-
६७-६८	मति श्रुतज्ञान के अभाव में	-	३	१	-
६९	अवधिज्ञान के अभाव में	४	३	-	-
७०	मन:पर्यवज्ञान के अभाव में	४	३	-	-
७१	केवलज्ञान के अभाव में	४	३	-	-
७२-७३	मतिश्रुतअज्ञान के अभाव में	५	-	-	-
७४	विभ गज्ञान के अभाव में	५	-	-	२
७५	समुच्चय दर्शन में	५	३	-	-
७६	समुच्चय दर्शन के अभाव में	-	-	-	-
७७	सम्यग्दर्शन में	५	-	-	-
७८	सम्यग्दर्शन के अभाव में	-	३	-	-
७९	मिथ्यादर्शन में	-	३	-	-
८०	मिथ्यादर्शन के अभाव में	५	३	-	-
८१	मिश्रदर्शन में	-	३	-	-
८२	मिश्रदर्शन के अभाव में	५	३	-	-

	बोल	भजना		नियमा	
		ज्ञान	अज्ञान	ज्ञान	अज्ञान
८३	समुच्चय चारित्र में	५	-	-	-
८४	चारित्र के अभाव में	४	३	-	-
८५-८८	सामायिक आदि ४ में	४	-	-	-
८९-९२	सामायिक आदि ४ के अभाव में	५	३	-	-
९३	यथाख्यात में	५	-	-	-
९४	यथाख्यात के अभाव में	५	३	-	-
९५-९९	दानादि ५ लब्धि में	५	३	-	-
१००-१०४	दानादि ५ लब्धि के अभाव में	-	-	१	-
१०५	बालवीर्य में	३	३	-	-
१०६	बालवीर्य के अभाव में	५	-	-	-
१०७	बालप डितवीर्य में	३	-	-	-
१०८	बालप डितवीर्य के अभाव में	५	३	-	-
१०९	पंडितवीर्य में	५	-	-	-
११०	पंडितवीर्य के अभाव में	४	३	-	-
१११-११२	सईन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय में	४	३	-	-
११३-११४	सईन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय के अभाव में	-	-	१	-
११५	रसेन्द्रिय में	४	३	-	-
११६	रसेन्द्रिय के अभाव में	-	-	१	२
११७-११९	त्रण इन्द्रिय में	४	३	-	-
१२०-१२२	त्रण इन्द्रिय के अभाव में	-	-	२+१	२

विशेष :- *१ ज्ञान=केवलज्ञान, २ ज्ञान=मति, श्रुत, ३ ज्ञान=मति, श्रुत, अवधि, ४ ज्ञान=अवधि, मन:पर्यव अथवा केवलज्ञान ये तीनों में से कोई एक के सिवाय शेष चार, ५ ज्ञान=पाँचों, २ अज्ञान=मति, श्रुत, ३ अज्ञान=तीनों ।*

ज्ञान-अज्ञान विषय आदि- ज्ञान का विषय न दीसूत्र अनुसार है। एव ज्ञान-अज्ञान की स्थिति तथा अ तर जीवाभिगम सूत्र अनुसार है। अल्पबहुत्व के लिये प्रज्ञापना सूत्र की भलावण है।

मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानी अपने अज्ञान के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का कथन करते हक्त, बताते हक्त, प्ररूपणा करते हक्त। विभ गज्ञानी अपने विषय गत द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जाने-देखे। ऐसा स क्षिप्त कथन किया गया है । तत्स ब धी विवेचन भी उपलब्ध नहीं होता है ।

प्रश्न-९ : ज्ञान की पर्यायें किस प्रकार बताई गई है ?

उत्तर- (१) ज्ञान की अनेक अवस्थाएँ पर्याय कही जाती है । (२) क्षयोपशम की विचित्रता से ज्ञान की अनेक अन त अवस्थाएँ होती है । (३) मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ अन त है। (४) केवलज्ञानी के ज्ञान में मतिज्ञान के अन त अ श होते है । इसीप्रकार मतिज्ञान के समान पाँचों ज्ञान की अन त अन त पर्यायें अपने विषयभूत अन त पदार्थ की अपेक्षा कही गई है ।

(१) सबसे अल्प मन:पर्यवज्ञान के पर्याय है क्यों कि इसके विषयभूत पदार्थ केवल मनोद्रव्य है। (२) उससे अवधिज्ञान के पर्याय अन तगुणा, क्योंकि इसका विषय सर्व रूपी द्रव्य है । (३) उससे श्रुत ज्ञान के पर्याय अन तगुणा, क्यों कि इसका विषय रूपी-अरूपी दोनों पदार्थ है । (४) इससे मतिज्ञान के पर्याय अन त गुणा, क्यों कि इसमें अनभिलाप्य बुद्धिगम्य विषयों का समावेश होता है। (५) इससे केवल ज्ञान के पर्याय अन तगुणा, क्यों कि वह सर्व द्रव्य क्षेत्र आदि की सर्व पर्यायों को जानता देखता है ।

इसी प्रकार तीन अज्ञान के पर्याय स ब धी अल्पबहुत्व होती है, यथा- सबसे अल्प पर्यायें विभ गज्ञान की, उससे श्रुतअज्ञान की पर्यायें अन तगुणी और उससे मतिज्ञान की पर्यायें अन तगुणी है । ॥उद्देशक-२ स पूर्ण ॥ उद्देशक-३ में स ख्यातजीवी आदि वृक्षों का वर्णन स्थाना ग ३/१ पृष्ट-४९ में है ।

प्रश्न-१० : शरीर से कटकर अलग हुए अ ग में आत्मप्रदेश रहते हक्त ?

उत्तर- मनुष्य या पशु आदि किसी भी प्राणी के शरीर का कोई भी

अवयव कटकर दूर गिर जाय तो भी कुछ समय तक उस गिरे हुए भाग में आत्मप्रदेश स लग्न रहते हक्त । बीच की दूरी वाली जगह में भी आत्म प्रदेश होते हक्त । उन बीच के आत्मप्रदेशों में शस्त्र से, अग्नि से या किसी के चलने से कोई बाधा पीडा नहीं होती है और वे आत्मप्रदेश टूटते भी नहीं है । कुछ सेक डो के बाद वे दूर अ ग वाले आत्मप्रदेश, मूलअ ग में आ जाते हक्त । उसके बाद वह जीव जीता है या मरता है । ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-४ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-११ : सामायिक में बैठे व्यक्ति को घर तथा स्त्री का त्याग कैसा होता है ?

उत्तर- श्रावक एक मुहूर्त के लिये सामायिक करता है उतने समय के लिये उसके घर, परिवार, स्त्री, उपकरणों का त्याग होता है । उसके ऐसे परिणाम होते हक्त कि ये पदार्थ स्त्री धन आदि मेरे नहीं है । ऐसे परिणामों में ज्ञान-समझपूर्वक वह सामायिक के उस समय तक लीन रहता है । कि तु पूर्णतया आजीवन त्याग नहीं किया होने से उसका उन पदार्थों से ममत्व स ब ध व्यवछिन्न नहीं होता है । सामायिक का समय पूर्ण होने के बाद पुन: वे सभी पदार्थ उसके ही होते हक्त । अत: सामायिक के समय उसके उन पदार्थों का कोई अन्य मालिक नहीं बन सकता है । यदि सामायिक के समय कोई उसके वस्त्रादि, धन सामग्री को चुरावे अथवा उसकी स्त्री को अपनी बनावे तो वह सामायिक के बाद उन वस्तुओं की गवेषणा मा ग करता हुआ, प्राप्त करने का प्रयत्न करता हुआ अपनी वस्तुओं के लिये ही प्रयत्न करने वाला कहा जायेगा ।

सार यह है कि सामायिक की समयमर्यादा तक के लिये ही श्रावक सापेक्ष बुद्धि से परिग्रह का त्यागी होता है । उस मर्यादित समय-अवधि के बाद के ममत्व का त्यागी वह नहीं होता है । यदि श्रावक आजीवन के लिये स थारा पचक्ख लेता है तो फिर उसका किसी भी पदार्थ में ममत्व या अधिकार नहीं रहता है । यदि वह श्रावक आजीवन के लिये गृहत्यागी श्रमण बन जाय तो भी उसका किसी भी पदार्थ पर ममत्व अधिकार नहीं रहता है । कि तु सामायिक में त्याग का समय मर्यादित होने के कारण उसका ममत्व त्याग

सापेक्ष होता है । पूरा सदा के लिये छोडा हुआ नहीं होता है ।

प्रश्न-१२ : व्रत धारण करने वाले श्रावक के प्रत्याख्यान कैसे होते हैं? कितने करण एव योग से प्रत्याख्यान होते ह ै ?

उत्तर- श्रमणोपासक व्रत धारण करता हुआ पूर्वकृत पाप की निंदा करता है, वर्तमान का स वर करता है और भविष्य के लिये उस पाप का प्रत्याख्यान करता है ।

हिंसा आदि का त्याग श्रावक को तीन करण तीन योग में से इच्छित कितने ही करण-योग से हो सकता है । न्यूनतम एक करण एक योग से होता है और अधिकतम तीन करण तीन योग से हो सकता है ।

तीन करण- १. करना २. कराना ३. अनुमोदन करना । **तीन योग**- १. मन २.वचन ३. काया । इन करण योग में से इच्छित एक, दो या तीन करण एव इच्छित एक, दो या तीन योग से प्रत्याख्यान करने में कुल **९ विकल्प** और **४९ भ ग** बन्तेहक्त ।

९ विकल्प- (१) एक करण एक योग । (२) एक करण दो योग। (३) एक करण तीन योग । (४) दो करण एक योग । (५) दो करण दो योग । (६) दो करण तीन योग । (७) तीन करण एक योग। (८) तीन करण दो योग । (९) तीन करण तीन योग । इनके **४९ भ ग** इस प्रकार है-

(१) एक करण एक योग के ९ भ ग- (१) करना नहीं मन से (२) करना नहीं वचन से (३) करना नहीं काया से (४) कराना नहीं मन से (५) कराना नहीं वचन से (६) कराना नहीं काया से (७) अनुमोदन करना नहीं मन से (८) अनुमोदन करना नहीं वचन से (९) अनुमोदन करना नहीं काया से ।

(२) एक करण दो योग के ९ भ ग- (१) करना नहीं मन से वचन से (२) करना नहीं मन से काया से (३) करना नहीं वचन से काया से (४) कराना नहीं मन से वचन से (५) कराना नहीं मन से काया से (६) कराना नहीं वचन से काया से (७) अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से (८) अनुमोदन करना नहीं मन से काया से (९) अनुमोदन

करना नहीं वचन से काया से ।

(३) एक करण तीन योग के ३ भ ग- (१) करना नहीं मन वचन काया से (२) कराना नहीं मन वचन काया से (३) अनुमोदन करना नहीं मन वचन काया से ।

(४) दो करण एक योग के ९ भ ग- (१) करना नहीं कराना नहीं मन से (२) करना नहीं कराना नहीं वचन से (३) करना नहीं कराना नहीं काया से (४) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से (५) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से (६) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से (७) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से (८) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से (९) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से ।

(५) दो करण दो योग के ९ भ ग- (१) करना नहीं कराना नहीं मन से वचन से (२) करना नहीं कराना नहीं मन से काया से (३) करना नहीं कराना नहीं वचन से काया से (४) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से (५) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से काया से (६) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से (७) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से (८) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से काया से (९) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से ।

(६) दो करण तीन योग के ३ भ ग- (१) करना नहीं कराना नहीं मन वचन काया से (२) करना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन वचन काया से (३) कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन वचन काया से ।

(७) तीन करण एक योग के ३ भ ग- (१) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से (२) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं वचन से (३) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं काया से ।

(८) तीन करण दो योग के ३ भ ग- (१) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से (२) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से काया से (३) करना नहीं कराना नहीं

अनुमोदन करना नहीं वचन से काया से ।

(९) तीन करण तीन योग का १ भ ग– (१) करना नहीं कराना नहीं अनुमोदन करना नहीं मन से वचन से काया से ।

प्रश्न–१३ : आजीविकोपासकों का वर्णन एव उनके त्याग–नियम का वर्णन करके श्रमणोपासकों को क्या प्रेरणा दी गई है ?

उत्तर– यहाँ पाँचवें उद्देशक में इसप्रकार का वर्णन है । जिसमें गौशालक प थी श्रावकों को आजीविकोपासक कहा गया है । उनमें मुख्य १२ आजीविकोपासकों के नाम और उनके त्याग नियम बताकर भगवान ने श्रमणोपासकों को १५ कर्मादान का त्यागी बनने की प्रेरणा दी है । वह कथन स पूर्ण इस प्रकार है–

आजीविक सिद्धा त है कि इस स सार में जीव जीव के भक्षी हक्त । सभी प्राणी सचित्त–सजीव का आहार करते हक्त या सजीव का छेदन–भेदन, हनन, लुंपन, विलु पन आदि करके उन पदार्थों का आहार करते हक्त । ऐसे में भी उनके १२ मुख्य श्रावक हक्त जो अरिह त को(गौशालक को) अपने देव मानते हक्त, माता–पिता की भक्तिपूर्वक सेवा शुश्रूषा करते हैं, पाँच बहुजीवी फलों का त्याग प्रत्याख्यान करते हक्त, यथा– (१) उ बरफल (२) वड का फल (३) बोर का फल (४) शहतूत (५) पीपल के फल । वे प्याज, लहसुन, क दमूल के त्यागी होते हक्त । बैलों को नपु सक नहीं बनाते और नाक नहीं वींधते हक्त, ऐसे ही रखते हक्त एव त्रस प्राणियों की हिंसा रहित व्यापार से आजीविका चलाते हक्त ।

जब ये गौशालक प थी भी इस प्रकार हिंसा से दूर रहते हक्त, हिंसा का व्यापार नहीं करते है तो श्रमणोपासकों को १५ कर्मादान रूप व्यापारों को कभी भी नहीं करना चाहिये अर्थात् इन १५ कर्मादान रूप व्यापारों को स्वय करना कराना अनुमोदन करना श्रमणोपासकों को नहीं कल्पता है । इस प्रकार जानकर १५ कर्मादान का त्याग करने वाले श्रावक एव अन्य व्रतों का पालन करने वाले श्रावक अपनी आत्मा को पवित्र, परम पवित्र बनाकर देवगति के अधिकारी बनते हक्त ।

आजीविकोपासक १२ के नाम– १.ताल २. तालप्रल ब ३. उद्विध ४. स विध ५. अवधि ६. उदय ७. नामोदय ८. नर्मोदय (९) अनुपालक १०. श खपालक ११. अय पुल १२. कातर ।

कर्मादान प द्रह के नाम– (१) अग्नि आर भ के व्यापार (२) वनस्पति आर भ के व्यापार (३) वाहनों का उत्पादन (४) वाहनों से भाडा कमाना (५) पृथ्वी खोदने स ब धी व्यापार (६) हाथीदा त आदि त्रस जीवों के शरीर अवययों का व्यापार (७) लाख, साबु–सोडा, केमिकल्स, प्लास्टिक उत्पादन का व्यापार आदि (८) रस पदार्थ– तेल, घी, गुड, शक्कर, शराब आदि का व्यापार (९) विषैले पदार्थ, जीव ज तुओं को मारने की दवा, शस्त्र हथियार का व्यापार (१०) केशवाले जानवर, मनुष्यों में दासदासी का व्यापार या केश–बाल बेचने का व्यापार (११) तेल, घाणी, फेकटरी आदि बडे य त्रों के कारखाने स ब धी व्यापार (१२) पशुओं को नपु सक बनाने का ध धा (१३) आग लगाने का ठेका लेने का व्यापार (१४) सरोवर, तलाब, झील, नदी का पानी सूखाने का ध धा (१५) वेश्या, हि सक पशु आदि का पालन पोषण करना । ये १५ प्रकार के व्यापार श्रावकों को नहीं कल्पते हक्त ।

यहाँ गौशालक के श्रावकों के त्याग बताकर उन त्याग स ब धी चर्चा नहीं की है किन्तु उनके द्वारा त्रस जीव की हिंसा वाले व्यापार नहीं करने की तुलना में श्रमणोपासकों को १५ कर्मादान के व्यापार नहीं करने की स्पष्ट प्रेरणा की गई है ।

दूसरी बात यह है कि उन १२ आजीविकोपासकों के अर्थात् गौशालक के **मुख्य श्रावकों** के ये त्याग प्रत्याख्यान बताये हक्त । अत: गौशालक के सभी श्रावकों के ये सभी प्रत्याख्यान होवे यह जरूरी नहीं है । भगवान महावीर के १० प्रमुख श्रावक आन द आदि तो स पूर्ण गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर साधना करने वाले थे । वे पडिमाधारी श्रावक बने थे और स पूर्ण सावद्य के त्यागी बने थे ।

॥ उद्देशक–५ स पूर्ण ॥

प्रश्न–१४ : निर्ग्रंथों को निर्दोष या सदोष आहार देने से एव अस यत

अविरत किसी भी लि गधारी को देने से निर्जरा पाप क्या होता है ?

उत्तर- (१) सावद्य त्यागी श्रमण निर्ग्रंथ को निर्दोष कल्पनीय आहार गुढबुद्धि से प्रतिलाभित करने पर एका त निर्जरा होती है उसमें आहार निर्दोष होने से कोई पाप नहीं लगता है ।

(२) सावद्य त्यागी श्रमण निर्ग्रंथ को औषध उपचार या अन्य किसी स कट युक्त परिस्थिति से अथवा कभी अविवेक अज्ञान से, भक्ति के अतिरेक से श्रमण निर्ग्रंथ की शाता भावना से सदोष आहार वहेराने पर बहुतर निर्जरा एव दोषित आहार होने से उसमें होने वाली विराधना या समाचारी भ ग से अल्प पाप भी होता है। यहाँ बहुतर निर्जरा कहने का आशय यह है कि दाता द्रव्य से सूझता होने के कारण द्रव्यशुद्ध है एव स यम साधना में सहायक होने के उसके शुभ भाव है अतः वह भाव से शुद्ध है और दान लेने वाला पात्र भी शुद्ध है क्यों कि श्रमण निर्गंथ तथारूप के हक्त । मात्र वस्तु दोषित होने का यहाँ अल्प पाप कहा है ।

(३) सावद्य के अत्यागी अस यत अविरत किसी भी स न्यासी को गुढबुद्धि से त्यागी मानकर जो आहार दान करता है वह मिथ्यात्व भाव के सेवन के कारण मोक्ष हेतुक निर्जरा नहीं करता है ।(क्यों कि एका त निर्जरा तो त्यागी श्रमण को देने से होती है ।) एका त पापकर्म करता है । इस कथन का हेतु मिथ्यात्व के पोषण से है । मिथ्यात्व भावित व्यक्ति मोक्ष हेतुक सकाम निर्जरा नहीं करता है । इसमें दान लेने वाला अस यत होने से अपात्र है; दाता उसे गुढ त्यागी पात्र समझ कर खोटी-मिथ्या मान्यता रखता है, अतः दाता भी अशुद्ध है । तब वस्तु सदोष निर्दोष कोई भी हो उसका महत्त्व नहीं रह जाता है ।

इन तीनों प्रकार के दान में पुण्यब ध तो सर्वत्र(तीनों में) होता ही है क्यों कि भावना में उदारता एव अनुक पा होती है, लेने वाले को सुख पहुँचता है, अध्यवसाय दाता के शुभ होते हक्त । तथापि प्रस्तुत सूत्र में तो पाप और निर्जरा की प्रमुखता से ही प्रश्न और उत्तर है। इसीलिये एका त पाप या एका त निर्जरा शब्दप्रयोग किया गया है अर्थात् इन दो में से एक का पूर्ण निषेध दिखाने के लिये प्रथम में एका त निर्जरा और तीसरे में एका त पाप कहा है । पुण्य का यहाँ प्रस ग ही

नहीं लिया गया है । अतः पुण्य के निषेध का यहाँ आशय नहीं है, ऐसा समझना चाहिये । पुण्य के प्रस ग में तो शास्त्रकार ने ९ पुण्य बताये ही हक्त उसमें ९ प्रकार का दान स सार के समस्त प्राणियों के लिये जिनशासन में श्रावकों के लिये खुला ही है । उसका निषेध किसी के लिये नहीं है । प्राचीन टीकाकार आचार्य ने भी यहाँ पर स्पष्ट किया है कि-

मोक्खत्थ ज पुण दाण , त पई एसो विहि समक्खाओ ।
अणुकम्पादाण पुण, जिणेहिं ण कयाइ पडिसिद्ध ॥

अर्थ- सूत्रोक्त प्रश्नोत्तरमय विधान मोक्षार्थ दान की अपेक्षा से है पर तु अनुकम्पादान का जिनेश्वरों ने कहीं भी निषेध नहीं किया है।

प्रश्न-१५ : दोष की आलोचना प्रायश्चित्त किये बिना भाव मात्र से कोई आराधक हो सकता है ?

उत्तर- आलोचना का स कल्प, प्रयत्न, तत्परता हो तो आलोचना का स योग नहीं होने पर भी दोषी व्यक्ति आराधक हो सकता है। जैसे कोई दोषी व्यक्ति ने आलोचना प्रायश्चित्त करने के स कल्प से आलोचना सुनने वाले के पास जाने का स कल्प किया । इसी बीच किसी का आयुष्य पूर्ण हो जाय, वाचा ब द हो जाय, कान में बहिरापन हो जाय । इस तरह किसी भी प्रकार से आलोचना प्रायश्चित्त करने में अ तराय आ जाय तो उसके स कल्प और तत्परता के कारण आलोचना का फल हो जाता है । जिस तरह अग्नि में डाला त तु **जला** एव र ग में डाला त तु **र गा** हुआ कहा जाता है । इसी प्रकार वह भी आराधक कहा जाता है ।

प्रश्न-१६ : कायिकी आदि पाँच क्रियाओं में से जीवों को परस्पर कितनी क्रिया लगती है ?

उत्तर- २४ द डक के जीवों को जब तक कि वे अव्रती या सकषायी है तब तक उन सभी जीवों को, २४ ही द डक के सभी जीवों से तीन क्रिया तो लगती ही है- कायिकी, अधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी । इसके सिवाय औदारिक द डकों के जीवों से कभी किसी को तीन, कभी चार और कभी पाँच क्रियाएँ लगती है अर्थात् इन्हें जो कष्ट पहुँचावे

उसे परितापनिकी क्रिया सहित चार और मारे तो उसे प्राणातिपातिकी सहित पाँच क्रिया लगती है । वैक्रिय द डक वालों से कदाचित् तीन या चार क्रिया लगती है । उनसे प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लगती है क्यों कि वे अपूर्ण आयुष्य में नहीं मरते हक्त, वे निरूपक्रमी आयु वाले होते हक्त ।

समुच्चय जीव और मनुष्य अक्रिय भी होते हक्त। ११ से १४ वें गुणस्थान तक इन पाँच में से एक भी क्रिया नहीं होती । आहारक, तैजस और कार्मण शरीर से क्रिया किसी को ३, किसी को ४ क्रिया लगती है पाँचवीं नहीं लगती है ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१७ : राजगृही नगरी में एक बार अन्यतीर्थिक श्रमणों ने आकर भगवान के स्थविरों पर क्या आक्षेप लगाया था?

उत्तर- राजगृही में गुणशील बगीचे में प्राय: भगवान ठहरते थे उसके नजीक में ही अन्यतीर्थिकों का आश्रम था । जिसमें अनेक स न्यासी रहते थे । उनके मन में कई प्रश्न जैनधर्म या जैन श्रमणों से स ब धित घूमते रहते थे, जिसकी आपस में चर्चा भी होती रहती थी । क्यों कि राजगृही नगरी धर्म की अपेक्षा बहुत आगे थी। वहाँ जैन अजैन सभी धर्मों के अनुयायी रहते थे । अत: दोनों प्रकार के श्रमणों का भी वहाँ विचरण एव निवास रहता था। ऐसे में कभी अपनी विशिष्ट प्रकृति के स न्यासी जिज्ञासा या कुतूहल के बढ जाने से श्रमणों के पास या कभी भगवान के पास भी पहुँच कर प्रश्न चर्चा कर लेते थे । प्रस्तुत सातवें उद्देशक में ऐसी ही घटना का वर्णन है । उसमें किसी श्रमण या अन्यतीर्थिक स न्यासी का नाम नहीं है ।

(१) प्रथम आक्षेप- श्रमणों! तुम अस यत अविरत एव एका त बाल हो क्यों कि तुम अदत्त ग्रहण करते हो। गृहस्थ के द्वारा दी गई भिक्षा तुम्हारे पात्र में नहीं पडे तब तक तुम उसे गृहस्थ की मानते हो । बीच में से कोई ले जाय तो गृहस्थ का गया मानते हो तो वह बीच में रहा गृहस्थ का आहार ही तुम्हारे पात्र में पडता है और उसे तुम ग्रहण कर लेते हो तो तुम्हें अदत्त लगता है एव अदत्त लेने वाला अस यत होता है तथा अस यत को ही बाल कहा जाता है । अत: तुम अस यत

और बाल हो ।

अन्यतीर्थिकों की यह नासमझ थी । स्थविरों ने कहा कि हम तो गृहस्थ के देने के बाद **'दिज्जमाणे दिण्णे'** के सिद्धा त से हमारा गिनते हक्त और बीच में से कोई ले जाय तो हमारा ही गया ऐसा हम मानते हक्त । अत: हम अदत्त ग्रहण नहीं करते तो हम अस यत अविरत और बाल नहीं है कि तु दत्त ही लेते हक्त । अत: हम स यत विरत हक्त, ए का त प डित हक्त कि तु उपरोक्त मान्यता तुम्हारी है अत: तुम ही अदत्त ग्रहण करने वाले अस यत आदि हो । तुम लोग ही एका त बाल हो । अन्यतीर्थिकों के पास अब कोई उत्तर नहीं था ।

(२) दूसरा आक्षेप- निढत्तर हुए अन्यतीर्थिकों ने दूसरा आक्षेप लगाया कि 'तुम लोग इधर से उधर फिरते ही रहते हो; विहार, गोचरी, स्थ डिल आदि के लिये फिरने में तुम पृथ्वी की एव उस पर रहे या चलते जीवों की विराधना करते रहते हो अत: तुम अस यत, अविरत एव एका त बाल हो ।' स्थविरों ने उत्तर दिया कि हम शरीर की आवश्यक क्रियाओं से जब भी गमनागमन करते हक्त तब ध्यानपूर्वक ईर्या का शोधन करते हुए एकाग्र चित्त से शा ति से पृथ्वी पर चलते हक्त हम जीवों के स्वरूप को जानते हक्त, उनकी पूर्ण दयावृत्ति रखते हुए पूर्ण यतना के साथ ही चलते हक्त और समस्त प्रवृत्ति अहिंसा धर्म का पालन करते हुए यतना पूर्वक एव स यम पूर्वक करते हक्त । अत: हम अस यत आदि नहीं है किन्तु जीवों की पूर्ण अहिंसा पालन करने से स यत, विरत, प डित हक्त । तुम लोग खुद ही जीवों के स्वरूप को पूर्णतया समझते नहीं हो, ईर्या समिति पूर्वक, ध्यानपूर्वक चलते नहीं हो; अत: तुम ही अस यत, अविरत एव एका त बाल हो ।

(३) तीसरा आक्षेप- निढत्तर हुए वे अन्यतीर्थिक फिर नासमझ से असत्याक्षेप करने लगे कि श्रमणो ! तुम्हारी मान्यतानुसार गम्यमान अगत होता है, राजगृह नगर जाने वाला राजगृह नहीं गया कहते हो तो तुम कभी ग तव्य स्थान में पहुँचोगे नहीं । स्थविरों ने कहा कि यह भी तुम्हारा भ्रम है । हमारी मान्यता तो **'चलमाणे चले'** की है अत: राजगृह के लिये निकला व्यक्ति राजगृह गया कहलाता है क्यों कि वह निर तर राजगृह पहुँच रहा है ऐसी हमारी मान्यता है । अत: हम

तो अपने ग तव्य स्थान में पहुँचते ही हक्त कि तु उक्त मान्यता तुम्हारी खुद की है अतः तुम ही कभी ग तव्य स्थान में नहीं पहुँचोगे ।

इस प्रकार आक्षेपों का प्रत्युत्तर देकर स्थविरों ने उन्हें गतिप्रपात प्रज्ञापना सूत्र के १६ वें पद के भावों को समझाया । इसके बाद क्या हुआ कोई वर्णन मूलपाठ में नहीं है । फिर भी यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वे ज्यों आये त्यों ही निढत्तर होकर चले गये । क्यों कि प्रतिबुद्ध होते कुछ स्वीकार करते तो उसका वर्णन भी किया जाता कि तु ऐसा कुछ हुआ नहीं है, तभी आगे का कोई जिक्र मूलपाठ में नहीं है ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१८ : ईर्यावही ब ध का क्या स्वरूप है ? कौन से जीव इसका ब ध करते हक्त ?

उत्तर- दसवें गुणस्थान को पार करने के बाद जब समस्त कर्मों का ब ध ढक जाता है तब ११वें १२वें १३वें गुणस्थान में ईर्यावहि ब ध होता है । इसका समावेश शातावेदनीय कर्म में होता है । यह ब ध दो समय की स्थिति का होता है । प्रथम समय में ब ध होता है और दूसरे समय में वेदन होता है तथा तीसरे समय में क्षय हो जाता है । मोहनीय कर्म के स पूर्ण क्षय होने के बाद वीतराग=कषाय रहित जीवों के यह ईर्यावहि ब ध नाम मात्र का कर्मब ध होता है, यह ११वें से लेकर १३वें गुणस्थान के अ त तक ब धता है । शैलेषीकरण की पूर्णता के साथ १४वाँ गुणस्थान प्रार भ होता है तब शैलेशी जीवों में यह ब ध भी नहीं होता है अतः १४वें गुणस्थान के शैलेषी जीव अब धक होते हक्त । कर्मब ध नहीवत् होते हुए भी ११ से १३ गुणस्थान तक जीव देशोन क्रोडपूर्व जीवित रह सकते हक्त वे अपने पूर्वबद्ध आयुष्य, नाम, गौत्र तथा वेदनीय इन चारों कर्मों के उदय से स सारकाल व्यतीत करते हक्त । नया ब ध वृद्धि नहीं होते हुए भी पुराने स्टोक के कर्म इतने समय तक उत्कृष्ट चल सकते हक्त अर्थात् यह ईर्यावहि ब ध उत्कृष्ट एक जीव की अपेक्षा देशोन क्रोड पूर्व वर्ष तक ब धता रह सकता है । इस ब ध में एक भ ग सादि सा त का ही होता है । अन्य अनादि अन त के भ ग इसमें नहीं होते हक्त ।

यह ईर्यावहि ब ध ४ गति २४ द डक की अपेक्षा तीन गति और २३ द डक वाले जीव नहीं बा धते । मनुष्यगति, मनुष्य द डक में भी १ से १० गुणस्थानवर्ती जीव नहीं बा धते । ११,१२,१३ ये तीन गुणस्थान वाले मनुष्य-मनुष्याणी बा धते हक्त । प्रथम समय के ब धक अर्थात् ११वें १२वें गुणस्थान के प्रथम समयवर्ती मनुष्य-मनुष्याणी बा धते हक्त वे कभी होते हक्त कभी श्रेणी का विरहकाल हो तो नहीं होते हक्त । अतः जब होते हक्त तो एक अनेक से आठ विकल्प होते हक्त- (१) कभी एक मनुष्य (२) कभी एक मनुष्याणी (३) कभी अनेक मनुष्य (४) कभी अनेक मनुष्याणी होते हक्त । दोनों होवे तो (५) कभी एक मनुष्य एक मनुष्याणी (६) कभी एक मनुष्य अनेक मनुष्याणी (७) कभी अनेक मनुष्य एक मनुष्याणी और (८) कभी अनेक मनुष्य अनेक मनुष्याणी ईर्यावहि ब धक होते हक्त ।

वेद की अपेक्षा कोई वेदी ईर्यावहि ब ध नही बा धता है क्यों कि ९ वें गुणस्थान में ही वेद उदय समाप्त हो जाता है । पूर्वभाव की अपेक्षा स्त्री, पुढष, नपु सक तीनों लि गी ईर्यावहि ब ध करते हक्त। विरहकाल की अपेक्षा तीनों अशाक्तत होने से प्रथम समयवर्ती कभी नहीं होवे, कभी एक या कभी अनेक होवे तो इन सभी विकल्पों के कारण कुल २६ भ ग होते हक्त । जिसमें अस योगी-६, द्विस योगी-१२ और तीनस योगी-८ भ ग होते हक्त । ये भ ग प्रथम समयवर्ती की अपेक्षा बनते हक्त ।

तीन काल की अपेक्षा दो प्रकार से कथन होता है- (१) एक भव की अपेक्षा ग्रहणाकर्ष से (२) अनेक भव की अपेक्षा भवाकर्ष से । तीन काल की अपेक्षा सूत्र में ईर्यावहि ब ध स ब धी आठ विकल्प इस प्रकार बनाये हक्त-

(१) बा ध्यो बा धे बा धसी= तेरहवें गुणस्थान के द्विचरम समय तक
(२) बा ध्यो बा धे नहीं बा धसी= तेरहवें गुणस्थान के चरम समय में
(३) बा ध्यो नहीं बा धे बा धसी= ११वें गुणस्थान से गिरे हुए
(४) बा ध्यो नहीं बा धे नहीं बा धसी= १४वें गुणस्थानवर्ती
(५) नहीं बा ध्यो बा धे बा धसी= ११वें १२वें गुणस्थान के प्रार भ में
(६) नहीं बा ध्यो बा धे नहीं बा धसी= यह अनेकभव की अपेक्षा है ।

(७) नहीं बा ध्यो नहीं बा धे बा धसी= १०वें गुणस्थान के चरम समयवर्ती ।

(८) नहीं बा ध्यो नहीं बा धे नहीं बा धसी=अभवी में ।

ग्रहणाकर्ष में पृच्छा के एक समय की अपेक्षा होती है इसलिये छट्ठा भ ग- पहले पूरे भव में बा धा नहीं, वर्तमान समय में ११वें गुणस्थान के प्रथम समय में बा धता है और फिर द्वितीय समय से नहीं बा धेगा, ऐसा होता नहीं है । इसलिये एक भव के ग्रहणाकर्ष में यह भ ग नहीं होता है, भवाकर्ष में होता है । यथा- पूर्व भवों में बा धा नहीं, वर्तमान भव में क्षपक श्रेणी में बा धता है और आगामी भव करेगा नहीं अत: मोक्ष में बा धेगा नहीं । इस प्रकार अनेक भव की अपेक्षा में छट्ठा भ ग होता है और ग्रहणाकर्ष में एक भव, प्रथम समय या पृच्छा समय की अपेक्षा यह छट्ठा भ ग नहीं होता है । ईर्याविहि ब ध में जीव अपने सर्व आत्म प्रदेशों से ग्रहण किये सर्व कर्म वर्गणा पुद्गलों को बा धता है अर्थात् सर्व से सर्व ब ध करता है ।

प्रश्न-१९ : स पराय ब ध किसे कहते हक्त और इसके ब धकों के विकल्प किस तरह होते हक्त ?

उत्तर- दसवें गुणस्थान तक के सकषायी जीव जो भी कर्म ब ध करते हक्त उसे स परायब ध कहते हक्त । यह ब ध ४ गति २४ ही द डक में शाश्वत होता है ।

तीनों वेदों में भी यह ब ध होता है और अवेदी में भी ९वें १०वें गुणस्थान में ब धता है । अवेदी के पूर्व भाव की अपेक्षा तीनों लि गी स्त्री, पुढष, नपु सक यह स परायकर्म ९वें १०वें गुणस्थान में बा धते हक्त । विरह की अपेक्षा श्रेणी अशाक्तत होने के कारण ये तीनों अशाक्तत होने से पच्छाकड की अपेक्षा पूर्ववत् २६ भ ग बनते हक्त।

सा परायिक ब ध (१) अनादि अन त भी होता है अभवी की अपेक्षा (२) अनादि सा त भी होता है भवी की अपेक्षा (३) और सादिसा त भी होता है, श्रेणी से पडिवाई की अपेक्षा (४) सादि अन त का भ ग नहीं होता है ।

तीन काल की अपेक्षा इसमें ४ भ ग होते हक्त-

(१) बा ध्यो बा धे बा धसी- अभवी की अपेक्षा

(२) बा ध्यो बा धे नहीं बा धसी- भवी की अपेक्षा

(३) बा ध्यो नहीं बा धे बा धसी- उपशमश्रेणी की अपेक्षा

(४) बा ध्यो नहीं बा धे नहीं बा धसी- क्षपक श्रेणी की अपेक्षा

यह स परायब ध भी जीव अपने सर्व आत्मप्रदेशों से और ग्रहण किये वर्गणा के सर्व पुद्गलों को बा धता है अर्थात् सर्व से सर्व ही ब ध होता है ।

प्रश्न-२० : बावीस परीषह किन कर्मों के उदय से आते है और उनका गुणस्थानों से स ब ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर- बावीस परीषह चार कर्म के उदय निमित्त से आते है, यथा-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म से २ परीषह- १. प्रज्ञा परीषह- मतिश्रुत ज्ञानावरणीय के उदय से। २. अज्ञान परीषह- अवधि, मन:पर्यव एव केवल ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से । कोई भी प्रश्न का उत्तर नहीं आना, कोई बात समझ में नहीं आना, कुछ याद नहीं रहना यह **प्रज्ञा परीषह** का कारण है । कठिन तप स यम का आचरण करने पर भी विशिष्ट परोक्ष ज्ञान पैदा नहीं होना यह **अज्ञान परीषह** का कारण बनता है ।

(२) वेदनीय कर्म से ११ परीषह- १. भूख २. प्यास ३. गर्मी ४. सर्दी ५. डाँस-मच्छर ६.चर्या ७. शय्या ८. वध ९. रोग १०. तृणस्पर्श ११. जल-मेल परीषह । ये सभी अशातावेदनीय कर्म के उदय से होते हक्त ।

(३) मोहनीय कर्म से ८ परीषह- १. अचेल २. अरति ३. स्त्री ४. निषद्या ५. आक्रोश ६. याचना ७. सत्कार-पुरस्कार ८. दर्शन परीषह । सात परीषह चारित्र मोहनीय कर्म की अपेक्षा और आठवाँ दर्शनमोहनीय कर्म से होता है । अचेल-जुगुप्सामोहनीय से, अरति-अरतिमोह से, स्त्री-वेदमोह से, निषद्या-भयमोह से, शेष तीन मान मोहनीय से ।

(४) अ तराय कर्म से- अलाभ परीषह ।

गुणस्थान और परीषह- पहले से सातवें गुणस्थान तक २२ परीषह । आठवें गुणस्थान में २१ परीषह; दर्शन परीषह नहीं । नौवें गुणस्थान

में १८ परीषह; अरति, अचेल, निषद्या परीषह नहीं । १०वें गुणस्थान में-१४ परीषह; स्त्री, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार परीषह नहीं ।

इनमें से छद्मस्थों को चर्या निषद्या परीषह एक साथ नहीं होते एव शीत-उष्ण परीषह एक साथ नहीं होते । अत: एक साथ परीषह पाने में छद्मस्थों के दो-दो कम कर लेना । २२ है वहाँ एक साथ २० परीषह, २१ है वहाँ एक साथ १९ परीषह और १८ है वहाँ एक साथ १६ परीषह तथा १४ है वहाँ एक साथ १२ परीषह हो सकते हक्त । वीतरागी गुणस्थानों में चर्या-शय्या एक साथ नहीं होवे और शीत उष्ण भी एक साथ नहीं होवे । छद्मस्थों को चर्या-शय्या परीषह साथ में हो सकते हक्त । क्यों कि वे चलने के समय मकान मिलने स ब धी स कल्प विकल्प कर सकते हक्त और बैठे होवे तब आगे के विहार स ब धी स कल्प-विकल्प कर सकते हक्त ।

सात कर्मब धक(आयुष्य छोडकर) में और आठ कर्मब धक में २२ परीषह हो सकते हक्त। छ कर्मब धक में (मोह छोडकर) और एक कर्म ब धक छद्मस्थ में (११-१२ गुणस्थान में) १४ परीषह हो सकते । ए कविध ब धक केवली के-११ परीषह हो सकते हक्त । अब धक १४वें गुणस्थान में-११ परीषह हो सकते हक्त । जिसमें एक साथ ९ परीषह हो सकते हक्त ।

प्रश्न-२१ : सूर्य सुबह शाम फीका सा दिखता है दुपहर को तेज दिखता है इसका क्या कारण है और उसका प्रकाश कितना दूर जाता हे ?

उत्तर- सूर्य सदा एक सा चमकता है । सुबह शाम वह हमारे से अत्य त दूर होने से लेश्या(तेज)प्रतिघात के कारण फीका सा दिखता है अर्थात् दूरी ज्यादा होने से उसका प्रकाश म द म दतम पहुँचता है । इसी कारण सूर्य सुबह और शाम फीका एव नजदीक सा लगता है । दोपहर को हमारे भरत क्षेत्र के उपर सीध में आ जाने से लेश्याभिताप से प्रकाश तीव्र तीव्रतम हो जाने से सूर्य जाज्वल्यमान एव दूर ऊँचा दिखता है ।

जिस तरह कोई सर्चलाइट दो किलोमीटर से दिखे तो कैसी

म द दिखती और पास में आने पर कितनी तेज दिखती है । वैसे ही सूर्य का समझना । सर्चलाइट के समान सूर्य की लाइट सदा एक सरीखी ही रहती है, ऊँचाई भी सदा पृथ्वी से ८०० योजन ही रहती है । अपने से उसकी तिरछी दूरी घटती बढती रहती है, क्यों कि वह निर तर, ५२५१ योजन की प्रति मुहूर्त गति से अपने नियोजित मार्ग से आकाश में आगे से आगे बढता रहता है कहीं भी ढकने का काम नहीं है । दूरी के घटने बढने से ही हमें ये परिवर्तन दिखते रहते हक्त ।

सूर्य सदा उपर १०० योजन नीचे १८०० योजन और तिरछे प्रथम म डल में ४७२६३ योजन तपता है अपना प्रकाश फैलाता है । तथा प्रथम म डल में ५२५१ योजन प्रतिमुहूर्त (४८ मिनट) की चाल से परिक्रमा लगाता है । सुबह शाम अर्थात् सूर्योदय सूर्यास्त के समय गर्मी में अपने यहाँ से ४७२६३ योजन दूर होता है, जब सबसे बडा दिन होता है ।

सर्दी में दिन छोटे-छोटे होते जाते हक्त तब यह सुबह शाम की दूरी कम-कम होती जाती है और न्यूनतम ३१८३१ योजन दूरी सबसे छोटे दिन में हो जाती है । तब सूर्य सबसे अ तिम म डल में होता है और ५३०५ योजन प्रति मुहूर्त की चाल से चलता है । इस प्रकार सूर्य सदा वर्तमान क्षेत्र को अर्थात् जिस क्षेत्र से जब गुजर रहा है उसको अपने ताप क्षेत्र के अनुसार प्रकाशित करते चलता है ।

नीचे १८०० योजन सूर्य को तपने का जो कहा गया है वह सलिलावती एव वप्रा विजय की अपेक्षा कहा गया है । ये दोनों विजय १००० योजन समभूमि से नीचे है । सूर्य का ताप उस विजय तक पूरा पहुँचता है, जब वह उसकी सीमा वाले आकाश म डल में चलता है ॥ उद्देशक-८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-२२ : ब ध के कितने प्रकार है और उसके भेद-प्रभेद क्या होते हक्त ?

उत्तर- जगत के समस्त पदार्थों के ब ध मौलिक रूप से स क्षेप में दो प्रकार के होते हक्त- विश्रसाब ध और प्रयोग ब ध । विश्रसाब ध के पुन: दो प्रकार है- अनादि विश्रसाब ध और सादि विश्रसाब ध । अनादि

विश्रसाब ध- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का है और उनका ब ध अन तकाल तक रहने का ही है । सादि विश्रसा ब ध के तीन प्रकार है- (१) ब धन प्रत्ययिक (२) भाजन प्रत्ययिक (३) परिणाम प्रत्ययिक ।

(१) ब धन प्रत्ययिक ब ध- परमाणु द्विप्रदेशी यावत् अन तप्रदेशी स्क ध आदि का स्निग्धता एव रूक्षता की विमात्रा से जो भी ब ध होता है और सम्मिलित बडा स्क ध बनता है यह ब धन प्रत्ययिकविश्रसा सादि ब ध है। ये ब ध स्वत: पुद्‌गलों की योग्यता स योग से होते रहतेहक्त। यह जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल तक रहता है ।

(२) भाजन प्रत्ययिक ब ध- गुड आदि पदार्थ किसी बर्तन में रखे हों तो कुछ समय बाद उनका स्वत: पिंड ब ध जाता है, यह भाजन प्रत्ययिक विश्रसा सादिब ध है। यह जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट स ख्याता काल तक रहता है ।

(३) परिणाम प्रत्ययिक विश्रसा ब ध- बादल, इन्द्रधनुष वगेरे के जो ब ध होते हैं वे स्वत: परिणमन से होते हैं, उन्हें परिणाम प्रत्ययिक ब ध कहते हक्त । उनकी स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट ६ मास की होती है ।

प्रश्न-२३ : प्रयोगब ध के कितने प्रकार कहे गये हक्त ?

उत्तर- प्रयोगब ध अर्थात् जीव के प्रयत्न से (माध्यम से) होने वाला ब ध तीन प्रकार का होता है- (१) अनादि अन त (२) सादि अन त (३) सादि सा त । इसमें **अनादि अन त** जीव के आठ प्रदेशों का ब ध है उसमें भी तीन-तीन के जोडों का ब ध अनादि अन त का है। वे आठों भी सदा साथ में ही रहते हैं । शेष अस ख्य आत्मप्रदेश इधर-उधर होते ही रहते हक्त। सिद्धों के अस ख्य आत्मप्रदेशों का जो ब ध है वह **सादिअन त** काल का है । सादि सा त प्रयोग ब ध के **चार** प्रकार है- **(१) आलापनब ध-** घास लकडी आदिका भारा रस्सी आदि से बा धा जाता है वह आलावणब ध है। **(२) अलियावणब ध-** यह चार प्रकार का है- १. मिट्टी, चूना, लाख, श्लेष आदि से किसी वस्तु को चिपकाने से ब ध होता है वह 'श्लेषणाब ध' है। २. किसी वस्तु का

ढेर करके उसको बाहर से ब ध कर दिया जाता है वह 'उच्चयब ध' है । ३. मकान, तालाब, कुआ, बावडी, नगरकोट, खाई, म दिर आदि का सघन ब ध 'निर्माण समुच्चय ब ध' है। ४. साहणणा (स हनन)ब ध- गाडी, रथ, सिबिका, कडाई, कुर्सी, पल ग आदि के बीचमें जो जोड रूप ब धन होता है वह 'देश स हनन ब ध' है और दूध और पानी का एकमेक होना यह 'सर्वस हनन ब ध' है ।

(३) शरीर ब ध- समुद्घात के समय बाहर निकले आत्मप्रदेशों के साथ तैजस कार्मण शरीर का ब ध 'पूर्वप्रयोग' शरीर ब ध है और केवली समुद्घात में तीसरे, चौथे एव पाँचवें समय में सर्वलोक व्यापी तैजस कार्मण का जो ब ध है वह 'वर्तमान प्रत्ययिक' शरीर ब ध है । केवली समुद्घात भूतकाल में कभी भी हुई नहीं इसलिये उसे वर्तमान प्रत्ययिक कहा है ।

(४) प्रयोग शरीरब ध- वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से एव औदारिक आदि शरीर नाम कर्म के उदय से जीव शरीर योग्य पुद्‌गल ग्रहण करके जो ब ध करता है वह प्रयोग शरीर ब ध है । इसमें जीव का पाँचों शरीर के ब ध में प्रयत्न होने से प्रयोगशरीर ब ध कहा गया है । इसके पाँच प्रकार है- (१) औदारिक शरीर प्रयोगब ध (२) वैक्रिय शरीर प्रयोगब ध (३) आहारक शरीर प्रयोगब ध (४) तैजस शरीर प्रयोगब ध (५) कार्मण शरीर प्रयोगब ध ।

प्रश्न-२४ : देशब ध और सर्वब ध किसे कहते हक्त और इनकी ब ध-स्थिति एव अ तर किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- पाँच शरीरों का प्रथम समयवर्ती प्रयोगब ध 'सर्वब ध' कहा जाता है और शेष सभी समयों का प्रयोग ब ध देशब ध कहा जाता है । वैक्रिय या आहारक लब्धि वाले जब शरीर बनाते हक्त, तब भी प्रथम समय में सर्वब ध होता है और बाद के समयों में देशब ध होता है। जीव जहाँ उत्पन्न होता है, वहाँ प्रथम समय जो आहार ग्रहण कर शरीर बनाता है, वह सर्वब ध है। शेष पूरे जीवन में वैक्रिय आदि लब्धि प्रयोग के प्रथम समय को छोडकर देश ब ध होता है । वाटे वहेता के दो

समय की अणाहारक अवस्था में तीन शरीर की अपेक्षा देशब ध और सर्वब ध दोनों नहीं होते है ।

औदारिक शरीर के देशब ध सर्वब ध की स्थिति–सर्व ब ध की स्थिति नियमत: एक समय की ही होती है । देश ब ध की स्थिति इस प्रकार है–

	जघन्य	उत्कृष्ट
(१-३) जीव, तिर्यंच, मनुष्य	एक समय	१ समय कम ३ पल
(४-५) एकेन्द्रिय, वायु	एक समय	१ समय कम अपनी आयु
(६-१२) ४स्थावर, विकलेंद्रिय	३ समय कम क्षुल्लक भव	१ समय कम अपनी आयु

अ तर– समुच्चय जीव के सर्व ब ध का अ तर जघन्य एक क्षुल्लक (छोटा) भव में तीन समय कम, उत्कृष्ट ३३ सागर में एक समय अधिक (वाटे वहेता के दो समय जुड जाने से) । समुच्चय जीव के देश ब ध का अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट ३३ सागर से तीन समय अधिक (वैक्रिय शरीर एव वाटे वहेता की अपेक्षा) शेष ग्याहर बोल (१० द डक और समुच्चय एकेन्द्रिय) में स्वकाय और परकाय की अपेक्षा यों दो प्रकार का अ तर होता है ।

स्वकाय अ तर– सर्वब ध का अ तर ११ बोलों में जघन्य–क्षुल्लक भव में तीन समय कम । उत्कृष्ट–अपनी स्थिति से एक समय अधिक । देशब ध का अ तर ४ बोलों में एकेन्द्रिय, वायु, तिर्यंच, मनुष्य में जघन्य एक समय उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त शेष ७ बोलों में जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय ।

परकाय अ तर– ग्यारह बोलों में सर्वब ध का जघन्य अ तर तीन समय कम दो क्षुल्लक भव है । देशब ध का जघन्य एक समय अधिक एक क्षुल्लक भव है । उत्कृष्ट दोनों ब धों का– एकेन्द्रिय में २००० सागरोपम साधिक । वनस्पति में– पृथ्वीकाल और शेष ९ में वनस्पतिकाल है ।

वैक्रिय शरीर का देश ब ध सर्व ब ध– यह समुच्चय जीव, नरक, देव,

वायु, तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य इन ६ में होता है ।

स्थिति– सर्वब ध की सर्वत्र एक समय होती है । समुच्चय जीव में दो समय भी होती है ।देशब ध की स्थिति इस प्रकार है ।

	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चयजीव	एक समय	३३ सागर में एकसमय कम
तिर्यंच, वायु, मनुष्य	एक समय	अ तर्मुहूर्त
नारकी देव	१०हजार वर्ष तीनसमय कम	३३ सागर, एकसमय कम

वैक्रिय शरीर के देश ब ध सर्वब ध का अ तर–

	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चयजीव	एक समय	वनस्पति काल
वायु स्वकाय	अ तर्मुहूर्त	अस ख्यकाल (पलका अस ख्या श)
वायु परकाय में	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
तिर्यंच मनुष्य स्वकायमें	अ तर्मुहूर्त	अनेक करोड पूर्व
तिर्यंच मनुष्य परकायमें	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
सर्वब ध नारकीदेवता	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
		साधिक १भव
९वें देवलोक से	अनेक वर्ष	वनस्पतिकाल
ग्रैवेयक तक	साधिक १ भव	
चार अणुत्तर विमान	अनेकवर्ष	स ख्याता सागर साधिक १ भव
देशब ध नारकी देव	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
९ वें देवलोक से ग्रैवेयक तक	अनेक वर्ष	वनस्पतिकाल

चार अणुत्तर विमान अनेकवर्ष स ख्याता सागर

विशेष :- औदारिक द डकों में और समुच्चय जीव में देशब ध सर्वब ध का अ तर समान है इसलिये अलग अलग नहीं बताया है।

आहारक शरीर देशब ध सर्वब ध- स्थिति सर्वब ध की एक समय और देशब ध की अ तर्मुहूर्त है। अ तर दोनों का जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन । तैजस कार्मण शरीर अनादि से सभी द डक में है । सर्व ब ध नहीं है । केवल देश ब ध होता है ।

आठ बोलों के स योग से शरीर ब ध- १. द्रव्य(पुद्गल) २. वीर्य (ग्रहण करना) ३. स योग(मन के परिणाम ४. योग(काया की प्रवृत्ति) ५. कर्म(शुभाशुभ) ६. आयुष्य(लम्बा) ७. भव(औदारिक के लिये तिर्यंच मनुष्य का इत्यादि) ८. काल-आरों के समय अनुसार शरीर की अवगाहना । वैक्रिय शरीर एव आहारक शरीर में नवमाँ बोल लब्धि का है ।

अल्पबहुत्व- सर्व ब धक अल्प होते हत्त, देशब धक उससे अस ख्य गुणे होते हत्त । आहारक शरीर में स ख्यातगुणे होते हत्त ।

औदारिक शरीर में अब धक से देशब धक अस ख्य गुणे हत्त, वैक्रिय एव आहारक शरीर में ब धक से अब धक अन तगुणा है। तैजस कार्मण में अब धक से ब धक अन तगुणा है ।

पाँच शरीर ब धक अब धक की अल्पाबहुत्व- १. सबसे कम आहारक के सर्व ब धक २. इसी के देश ब धक स ख्यात गुणा ३. वैक्रिय सर्वब धक अस ख्यगुणा ४. इसी के देश ब धक अस ख्यगुणा ५. तैजस कार्मण के अब धक अन त गुणा ६. औदारिक के सर्वब धक अन तगुणा ७. इसी के अब धक विशेषाधिक ८. इसी के देशब धक अस ख्यगुणा ९. तैजस कार्मण के देशब धक विशेषाधिक १०. वैक्रिय के अब धक विशेषाधिक ११. आहारक के अब धक विशेषाधिक ।

प्रश्न-२५ : आठ कर्मों का ब ध किन-किन कारणों से होता है?

उत्तर- प्रस्तुत नववें उद्देशक में कार्मण शरीर प्रयोग ब ध के अ तर्गत आठों कर्मों के ब धने स ब धी **विशिष्ट कारण** इस प्रकार कहे हत्त-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म- १. प्रत्यनीकता-विरोधभाव । मति आदि पाँच ज्ञान, ज्ञानी एव श्रुतज्ञान के साधन आगमशास्त्र आदि के प्रति विरोध भाव रखने से, विरोध करने से या उनके विढद्ध आचरण करने से । २. अपलाप- ज्ञान, ज्ञानीपुढष एव श्रुतज्ञान के साधनों के प्रति श्रद्धाभाव, बहुमान या आदर भाव नहीं रखकर अविवेक, तिरस्कार या निंदा के आचरण करने से । ३. अ तराय- किसी की ज्ञान वृद्धि में या ज्ञान के प्रचार में बाधक बनने से। ४. प्रद्वेष- ज्ञानी के प्रति ईर्ष्या भाव, मत्सरभाव, कषायभाव एव कषाय युक्त व्यवहार करने से । ५. आशातना- मन से वचन से एव काया से विनय भक्ति नहीं करके अविनय आशातना करने से, कटुवचन बोलने से, उन्हें स ताप या कष्ट पहुँचाने से । ६. विस वाद- ज्ञानी के साथ बात-बात में खोटे झगडे, बहस एव अस गत-उटपटा ग विवाद-चर्चा करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्मों का विशेष ब ध करता है । **सामान्यत:** अज्ञानमय स स्कार से एकेन्द्रिय आदि सभी जीव ज्ञानावरणीय कर्मों का निर तर ब ध करते रहते हत्त ।

(२) दर्शनावरणीय कर्म- धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, ढचि एव आस्था स ब धी स स्कारों के प्रति या उन स स्कारों से स स्कारित आस्थावानों के प्रति विरोधभाव आदि उपरोक्त ६ अवगुणमय आचरण करने से दर्शनावरणीय कर्म का ब ध होता है ।

(३) वेदनीय कर्म- इसके दो विभाग हत्त- शातावेदनीय और अशाता वेदनीय । **शातावेदनीयब ध** के १० कारण है- (१-४) प्राण-भूत-जीव-सत्व की अनुक पा करने से । (५) इन्हें दु:ख नहीं पहुँचाने से । (६) शोक उत्पन्न नहीं करने से । (७) इन्हें चि ता नहीं कराने से, आँसु नहीं टपकवाने से, विषाद-खेद नहीं करवाने से । (८) विलाप एव ढदन आदि नहीं करवाने से । (९) मार-पीट नहीं करने से । (१०) परिताप कष्ट नहीं पहुँचाने से । स क्षेप में अन्य जीवों को किसी भी प्रकार से दु:ख नहीं पहुँचाकर सुख पहुँचाने से शाता वेदनीय कर्म का ब ध होता है ।

अशातावेदनीय ब ध के १२ कारण है- (१-६) अन्य को

दु:ख देने से, शोक कराने से, विषाद-खेद कराने से, विलाप कराने से, मारपीट करने से एव परिताप-कष्ट पहुँचाने से । (७-१२) अनेक जीवों को अथवा वार वार दु:ख आदि देने से ।

(४) मोहनीय कर्म- (१-४) तीव्र क्रोध-मान-माया-लोभ का सेवन करने से । (५) दर्शनमोहनीय की तीव्र उदय प्रवृत्ति से । (६) चारित्रमोह की तीव्र उदय प्रवृत्ति से; यों ६ प्रकार से **विशिष्ट** मोहनीय कर्म का ब ध होता है । **सामान्यत:** प्राय: कषाय के उदय मात्र से मोहनीय कर्मब ध होता रहता है ।

(५) आयुष्य कर्म- चार-चार कारणों से चारों गति के आयुष्य का ब ध होता है । स्थाना ग ४/४/८ प्रश्न में देखें ।

(६) नाम कर्म- काया की, भाषा की, भावों की सरलता से तथा अविस वाद योग वृत्ति से शुभनाम कर्मका ब ध होता है । तीनों की वक्रता और विस वाद योग से अशुभनाम कर्म का ब ध होता है ।

(७) गौत्र कर्म- आठ प्रकार का अभिमान करने से नीच गौत्र का ब ध होता है और आठ प्रकार का मद अभिमान नहीं करने से ऊँच गौत्र का ब ध होता है ।

(८) अ तराय कर्म- दान, लाभ, भोग, उपभोग की प्रवृत्ति में एव वीर्य-शक्ति के पराक्रम करने में; यों इन पाँचों में अ तराय देने से उस-उस प्रकार के दानादिरूप अ तराय कर्म का ब ध होता है ।

एक-एक कर्म प्रकृति के ब ध में अन त परमाणु पुद्‌गल लगे हुए होते हक्त । प्रत्येक आत्मप्रदेश पर अन त अन त कर्म वर्गणा आवृत्त परिवेष्टित होती है । २४ द डक में आठों कर्म होते हक्त मनुष्य में चरम शरीरी की अपेक्षा आठ या सात या चार कर्म परिवेष्टित होते हक्त ।

कर्मों में कर्म की भजना नियमा- (१) ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अ तराय कर्म में खुद के सिवाय ६ कर्म की नियमा मोहनीय की भजना । (२) मोहनीय कर्म में खुद के सिवाय **सात** कर्म की नियमा । (३) वेदनीय आदि चारों अघाति कर्मों में खुद के सिवाय तीन अघाती कर्मों की नियमा, चार घाती कर्मों की भजना होती है । जिस कर्म की

पृच्छा है वह नहीं गिना जाता है शेष सात की अपेक्षा की जाती है । यह उदय रूप कर्म की अपेक्षा कथन है ।

प्रश्न-२६ : आराधनाएँ कितने प्रकार की है उसमें किसका कैसा महत्त्व है ?

उत्तर- ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र आराधना यों तीन प्रकर की आराधना कही गई है । उसमें भी पुन: जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट यों तीन-तीन भेद होने से कुल ९ भेद होते हक्त ।

(१) उत्कृष्ट ज्ञानाराधना में अन्य दोनों(दर्शन-चारित्र) आराधना मध्यम या उत्कृष्ट हो सकती है । (२) उत्कृष्ट दर्शनाराधना में अन्य दोनों आराधना तीनों तरह की हो सकती है । (३) उत्कृष्ट चारित्राराधना में अन्य दोनों भी उत्कृष्ट ही होती है ।

तीनों **जघन्य** आराधना में भव करे जघन्य तीन उत्कृष्ट प द्रह । तीनों **मध्यम** आराधना में भव करे(मनुष्य के) दो या तीन, तीनों उत्कृष्ट आराधना में १ या दो मनुष्य के भव करे ।

ये सभी(९) प्रकार की आराधना वाले **वैमानिक** एव मनुष्य के सिवाय कोई भी अन्य भव नहीं करते हक्त । उत्कृष्ट चारित्र आराधना वाले अनुत्तर विमान और मनुष्य का भव करते है अन्य कहीं भी नहीं जाते है ।

श्रुत-आचार की चौभ गी- (१) जो श्रुत स पन्न हो कि तु आचार स पन्न नहीं हो, वह देश विराधक है । (२) जो श्रुत स पन्न नहीं हो कि तु आचार स पन्न हो वह देश आराधक है । (३) जो दोनों से स पन्न है वह सर्व आराधक है । (४) जो दोनों से रहित है वह सर्व विराधक कहा गया है ।

यहाँ ज्ञान और चारित्र की स पन्नता का कथन है फिर भी दर्शन स पन्नता तो दोनों के साथ समझ लेनी चाहिये । क्यों कि दर्शन स पन्नता बिना ज्ञान और आचार स पन्नता वास्तव में स पन्नता ही नहीं होती है । दर्शन बिना उनका स्वत त्र कोई खास महत्त्व ही नहीं रहता है ।

प्रथम भ ग में आचार बिना देश विराधना कहा है उसमें दर्शन स पन्नता नहीं होती तो वह सर्व विराधक कहलाता । दूसरे भ ग में देश आराधक कहा है यहाँ भी दर्शन तो आचार के साथ है ही तभी आराधक कहा गया है । दर्शनाभाव में आराधना का कि चित भी स भव नहीं है ।

प्रश्न-२७ : जीव पुद्गल है या पुद्गली है ?

उत्तर- (१) पुद्गलों को, कर्मों को ग्रहण धारण किये होने से जीव पुद्गलवान पुद्गली कहा जाता है । (२) पुद्गल याने पदार्थ, इस अपेक्षा ९ पदार्थ, ९ तत्त्वों में जीव भी एक पदार्थ होने से पर्यायवाची शब्द की अपेक्षा जीव को यहाँ पुद्गल भी कहा है । इसीलिये सिद्ध पुद्गल है पुद्गली नहीं है । आत्मा के अस ख्य प्रदेश लोकाकाश के प्र[illegible] पर एक-एक [illegible] ता है । ऐसा मात्र केवली समुद्घात के चौथे समय में ही होता है । ॥ उद्देशक-९, १० स पूर्ण ॥

शतक-९ : उद्देशक-१ से ३४

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें ३४ उद्देशकों के द्वारा अत्य त अल्प विषयों का वर्णन हक्त । एक से ३० उद्देशक में तो स क्षिप्त कथन है । आगे के ४ उद्देशकों में महत्त्व पूर्ण विषय विस्तार है । शतक के प्रार भ में प्राप्त एक गाथा अनुसार उद्देशक नाम एव विषय इस प्रकार है-

(१) ज बूद्वीप- प्रथम उद्देशक में ज बूद्वीप स ब धी स क्षिप्त वर्णन है जिसमें ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति शास्त्र के ६ वक्षस्कार समाविष्ट है ।

(२) ज्योतिषी- दूसरे उद्देशक में ज्योतिषी देव-देवी स ब धी स क्षिप्त वर्णन जीवाभिगम सूत्र निर्दिष्ट है ।

(३-३०) अ तरद्वीप- दक्षिण दिशा के २८ अ तरद्वीप नामक मनुष्य क्षेत्र स ब धी स क्षिप्त वर्णन जिवाभिगम सूत्र निर्दिष्ट है ।

(३१) असोच्चा-इसमें सोच्चा-असोच्चा केवली स ब धी वर्णन है ।

(३२) गा गेय- इसमें गा गेय अणगार की गहन प्रश्नचर्चा है ।

(३३) कु डग्राम- इसमें कु डग्राम निवासी भगवान के माता-पिता की दीक्षा एव मोक्ष गमन का तथा जमाली का विस्तृत वर्णन है ।

(३४) पुढष- इसमें पुढष घातक व्यक्ति किस प्रकार के वैर से स स्पृष्ट होता है, वह वर्णन है ।

प्रश्न-२ : सोच्चाकेवली और असोच्चाकेवली के विषय में क्या समझाया गया है ?

उत्तर- किसी के द्वारा वीतराग धर्म का श्रवण करके बोध को प्राप्त होकर साधना-आराधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करने वाले **सोच्चा केवली** कहे जाते हक्त । किसी से सुने बिना स्वतः अनुप्रेक्षा से विभ ग, अवधि या जातिस्मरण आदि ज्ञान के द्वारा धर्मबोध प्राप्त कर स योग अनुसार परिणामों की विशुद्धि से श्रेणी में आगे बढते हुए केवली बन जाने वाले **असोच्चा केवली** कहे जाते हक्त ।

प्रस्तुत उद्देशक ३१ में एक निर्धारित अपेक्षा वाले असोच्चा केवली का कथन है । जिसमें अन्य लि ग वाले, बेले-बेले पारणा करने वाले, सूर्य की आतापना लेने वाले भद्र-विनीत आत्मसाधक का कथन है ।

अपनी साधना से कभी उस आत्मसाधक को विभ गज्ञान पैदा होता है जिससे जीव आदि को यथार्थ रूप से देखता है । पाख डी एव आर भ परिग्रही स क्लिष्ट जीवों को भी देखता है और विशुद्ध धर्मी जीवों को भी देखता है, इन सब की अनुप्रेक्षा तुलना करते हुए समकित प्राप्त करता है, तब विभ गज्ञान, अवधिज्ञान में बदल जाता है। अल्प समय की अपेक्षा की गई होने से अवधिज्ञान के बाद वह तत्काल क्षपकश्रेणी का प्रार भ करके अ तर्मुहूर्त में केवलज्ञान-केवल दर्शन प्राप्त करता है ।

ऐसे साधक को अवधिज्ञान होने के समय ३ शुभ लेश्या, ३ ज्ञान, ३ योग और दोनों उपयोग होते हक्त । प्रथम सहनन, ६ स स्थान, अवगाहना उत्कृष्ट-५०० धनुष, पुढषवेद या पुढष नपु सक वेद, स ज्वलन कषाय चौक, प्रशस्त अध्यवसाय होते हक्त ।

केवलज्ञान के बाद उम्र अधिक हो तो वे केवली अन्य लि ग से स्वलि ग धारण करते हक्त । स्वलि ग धारण किये बिना उपदेश-प्रवचन नहीं देते । व्यक्तिगत उत्तर एव बोध दे सकते हक्त। स्वय दीक्षा नहीं

देते । कि तु अन्य का नाम निर्देश कर सकते हक्त कि उसकी सेवा में दीक्षा ले सकते हो ।

ऐसे असोच्चा केवली ऊँचे, नीचे, मध्य; तीनों लोक में हो सकते हक्त । वृत्त वैताढ्य, सोमनसवन, प डकवन में तथा पाताल कलशों में भी हो सकते हक्त ।

केवली का यह वर्णन अन्यलि गी की अपेक्षा होने से ये एक समय में उत्कृष्ट १० केवली हो सकते हक्त ।

सोच्चा केवली– इसमें स्वलि गी जिनशासन के समस्त केवली का समावेश होता है तथापि यहाँ विशिष्ट अपेक्षा वाले अर्थात् तेले–तेले का पारणा करने वाले अवधिज्ञान प्राप्त करके एव मन:पर्यवज्ञानी भी हो सके ऐसी अपेक्षा युक्त वर्णन किया गया है । इनमें दीर्घकाल की अपेक्षा होने से ६ लेश्या कही गई है, उत्कृष्ट–४ ज्ञान होते हक्त । योग उपयोग असोच्चा केवली के समान है । अवधिज्ञान उत्कृष्ट अस ख्य लोकख ड देख सकने जितना हो सकता है । सवेदी अवेदी दोनों कहे हक्त । स्त्री, पुढष एव पुढष नपु सक हो सकते हक्त । स ज्वलन कषाय ४–३–२ और १ भी हो सकते हक्त । अकषायी भी होते हक्त । प्रशस्त अध्यवसायों से केवलज्ञान उत्पन्न होता है वे केवली उपदेश भी देते हक्त, दीक्षा भी देते हक्त क्यों कि स्वलि गी ही है । एक समय में ये उत्कृष्ट १०८ हो सकते हक्त और १०८ ही एक साथ मोक्ष जा सकते हक्त ।॥ उद्देशक–३१ स पूर्ण ॥

प्रश्न–३ : गा गेय अणगार कौन थे जिनके नाम से *'गा गेय अणगार के भा गे'* ऐसा बहु प्रसिद्ध है ?

उत्तर– गा गेय नामक स्थविर बहुश्रुत पार्श्वनाथ भगवान के शासन में विचरण करने वाले अणगार थे । वह समय भगवान महावीर और गोशालक यों दो तीर्थंकर विचरण का विख्यात था । अन तकाल की पर परा है कि तेवीसवें तीर्थंकर के शासन में विचरण करने वाले स त २४ वें तीर्थंकर के केवली हो जाने के बाद धीरे–धीरे विचरण एव मिलन स योग होते ही उनके शासन में स्वत: ही सरलता के साथ मिल

जाते हक्त अर्थात् अगले तीर्थंकर भगवान के शासन में समर्पित हो जाते हक्त । दो तीर्थंकर की परिस्थिति गौशालक ने खडी कर दी थी । तपोबल से, दैवी सहाय से एव भगवान से प्राप्त करीब ६ वर्ष के अनुभव से खुद के तीर्थंकर होने जैसा देखाव जमा रखा था । ज्योतिष ज्ञान से तीन काल की बात भी बता देता था जो बहुत कुछ सत्य हो जाती थी । उसके इस जालप्रप च में कई पूर्वधर ज्ञानी भी फँस चूके थे अर्थात् गहरी सौच बिना श का नहीं होने से चक्कर में आ चुके थे । गौशालक का शासन स्वीकार कर चुके थे, उन पूर्वधारी बहुश्रुतों के ज्ञान बल से भी गौशालक की क्षमता में वृद्धि हुई थी । ऐसी स्थिति में कई बुद्धिशाली साधक तात्त्विक उलझन युक्त या चक्कर दार प्रश्न पूछकर छद्मस्थ और केवली का निर्णय करते थे । ऐसे अनेक प्रस ग भगवती सूत्र में वर्णित हक्त । उसी में का बहु विख्यात भ गजालमय तात्त्विक गणित प्रश्न करने वाला यह गांगेय अणगार है । अ त में सही निर्णय कर भगवान महावीर के शासन में समर्पित होकर ये तद्भव मोक्षगामी हुए थे । यह वर्णन यहाँ ३२ वें उद्देशक में है ।

प्रश्न–४ : प्रवेशनक किसे कहते हक्त ? उसमें भेद प्रभेद क्या है ?

उत्तर– जीव उत्पन्न होने के लिये जिन गतियों में या जीव के भेदों में प्रवेश करता है उन्हें जीव प्रवेशनक कहा गया है । मुख्य प्रवेशनक के गति की अपेक्षा चार भेद है । पुन: नरक प्रवेशनक–७ है, तिर्यंच प्रवेशनक ५ है, एकेन्द्रियादि । मनुष्य प्रवेशनक–२ है, सन्नी–असन्नि और देव प्रवेशनक ४ है, भवनपति आदि ।

प्रश्न–५ : एक जीव नरक प्रवेशनक से उत्पन्न होता है तो प्रवेशनक विकल्प कितने होते हक्त ?

उत्तर– एक जीव या तो प्रथम नरक में उत्पन्न होगा या दूसरी नरक में या तीसरी में यों एक–एक बढते हुए अथवा वह एक जीव सातवीं नरक में उत्पन्न होगा । तो इस तरह एक जीव के नरक प्रवेशनक भ ग–७ बने हक्त ।

प्रश्न–६ : दो जीव नरक में उत्पन्न होते हक्त तो प्रवेशनक–विकल्प कितने होते हक्त ?

उत्तर– दोनों जीव प्रथम नरक में अथवा दोनों जीव दूसरी नरक में यावत् दोनों जीव सातवीं नरक में उत्पन्न होते हक्त– ये **सात विकल्प** दोनों जीव एक साथ प्रवेश करने के हक्त । दोनों जीव अलग-अलग नरक में जाय तब एक जीव को प्रथम नरक में कायम रखते हुए छ विकल्प– १-२,१-३,१-४,१-५,१-६ या १-७ (एक पहली में एक सातवीं में) । फिर पहली नरक को छोडकर एक दूसरी में और एक तीसरी में यों पाँच विकल्प– २-३,२-४,२-५,२-६ या २-७ में । फिर पहली दूसरी नरक को छोडकर चार विकल्प– ३-४,३-५,३-६ या ३-७ में । फिर तीसरी नरक को भी छोडकर तीन विकल्प– ४-५,४-६,४-७ में । फिर चौथी नरक को भी छोडकर दो विकल्प– ५-६ में या ५-७ में । फिर पाँचवीं नरक को भी छोडकर एक विकल्प– एक छट्ठी में एक सातवीं में । ये कुल=६+५+४+३+२+१= २१ विकल्प (प्रवेशनक) दोनों जीव अलग-अलग नरक में उत्पन्न होने के होते हक्त । यों कुल २१ + ७ = २८ प्रवेशनक भ ग दो जीव के होते हक्त ।

प्रश्न-७ : तीन जीव नरक में जावें तो उसके प्रवेशनक(उत्पन्न होने के विकल्प) कितने होते हक्त ?

उत्तर– तीन जीव नरक में जाने के ८४ विकल्प-प्रवेशनक होते हक्त ।

(१) तीनों जीव एक साथ जाने पर सात नरक के सात विकल्प होते हक्त ।

(२) तीनों जीव दो नरक में जावे तो पूर्ववत् २१ विकल्प होते हक्त, यथा– एक पहली में दो दूसरी में, एक पहली दो जीव तीसरी में । यों अ तिम(२१वाँ) विकल्प– एक छट्ठी में दो जीव सातवीं में । ये पहली नरक में एक जीव जाने के और दूसरी आदि में दो जीव, यों कुल ३ जीवों के दो साथ के(द्विस योगी) के २१ विकल्प होते हक्त । वैसे ही प्रथम आदि नरक में २ जीव जाने के और दूसरी आदि में एक जीव जाने के २१ विकल्प होते हक्त यों कुल २१+२१=४२ विकल्प द्विस योगी के होते हक्त ।

जिसका खुलाशा इस प्रकार है– (१) **एक जीव** पहली में दो

जीव दूसरी में (२) एक जीव पहली में दो जीव तीसरी में (३) एक पहली में दो चौथी में (४) एक पहली में दो पाँचवीं में (५) एक पहली में दो छट्ठी में (६) एक पहली में दो जीव सातवीं में । (७) एक जीव दूसरी में, दो जीव तीसरी में (८) एक जीव दूसरी में, दो चौथी में (९) एक जीव दूसरी में, दो जीव पाँचवीं में (१०) एक जीव दूसरी में, दो जीव छट्ठी में (११) एक जीव दूसरी में दो जीव सातवीं में । (१२) एक जीव तीसरी में दो चौथी में (१३) एक तीसरी में दो पाँचवीं में (१४) एक तीसरी में दो जीव छट्ठी में (१५) एक तीसरी में दो जीव सातवीं में । (१६) एक जीव चौथी में दो जीव पाँचवी में (१७) एक जीव चौथी में दो छट्ठी में (१८) एक जीव चौथी में दो जीव सातवीं में । (१९) एक जीव पाँचवीं में, दो जीव छट्ठी में (२०) एक जीव पाँचवीं में दो जीव सातवीं में । (२१) एक जीव छट्ठी में दो जीव सातवीं में ॥

इसी तरह– (१) **दो जीव पहली** नरक में एक जीव दूसरी नरक में (२) दो जीव पहली में एक जीव तीसरी नरक में (३) दो जीव पहली में एक जीव चौथी में (४) दो पहली में एक पाँचवीं में (५) दो पहली में एक छट्ठी में (६) दो पहली में एक सातवीं में । (७) दो दूसरी में एक तीसरी में (८) दो दूसरी में एक चौथी में (९) दो दूसरी में एक पाँचवीं में (१०) दो दूसरी में एक छट्ठी में (११) दो दूसरी में एक सातवीं में । (१२) दो तीसरी में एक चौथी में (१३) दो तीसरी में एक जीव पाँचवीं में (१४) दो तीसरी में एक छट्ठी में (१५) दो तीसरी में एक सातवीं में । (१६) दो चौथी में एक पाँचवी में (१७) दो चौथी में एक छट्ठी में (१८) दो चौथी में एक सातवीं में । (१९) दो पाँचवीं में एक छट्ठी में (२०) दो पाँचवीं में एक सातवीं में । (२१) दो छट्ठी नरक में एक सातवीं नरक में ॥

इस प्रकार दो विकल्पों से २१-२१ भ ग होने से कुल-४२ भ ग द्विस योगी में हो जाते हक्त ।

(३) तीनों जीव एक-एक अलग-अलग नरक में जावे तो तीन स योगी ३५ विकल्प होते हक्त । यथा– पहली दूसरी तीसरी (१-२-३)

में जावे या १-२-४ में जावे । इस तरह- १-२-३, १-२-४, १-२-५, १-२-६, १-२-७ ।१-३-४, १-३-५, १-३-६, १-३-७ । १-४-५, १-४-६, १-४-७ । १-५-६, १-५-७ । १-६-७ ॥ २-३-४, २-३-५, २-३-६, २-३-७ । २-४-५, २-४-६, २-४-७। २-५-६, २-५-७ । २-६-७ ॥ ३-४-५, ३-४-६, ३-४-७ । ३-५-६, ३-५-७ । ३-६-७ ॥ ४-५-६, ४-५-७ । ४-६-७ ॥ ५-६-७ ॥ ३५ भ ग ।

इस तरह तीनों जीव एक साथ जाने के अस योगी-७ भ ग । दो विभाग में जाने के द्विस योगी-४२ भ ग और तीन विभाग में जाने के तीनस योगी-३५ भ ग होते हक्त । यों कुल ७+४२+३५=८४ चौरासी विकल्प=प्रवेशक तीन जीव के सात नरक की अपेक्षा होते हक्त ।

प्रश्न-८ : गा गेय अणगार ने भगवान महावीर को इस तरह कितने प्रश्न पूछे और कितना समय लगा ?

उत्तर- कोई व्यक्ति किसी विकट उलझन में हो और हिम्मत करके किसी के पास समाधान मिलने की आशा से पहुँच गया हो तो वह कितने भी समय का श्रम ले सकता है । उसी तरह उस मोक्षगामी बुद्धिमान होशियार आगमवेत्ता की यह बहुत बडी उलझन थी कि दो तीर्थंकर में से सच्चा कौन सा ? किसे समर्पण किया जाय ? इसलिये घ टों भी खडे रहना पडे तो कोई फर्क नहीं पडता । श्रमण तो ५-७ घ टे निर तर विहार भी करते हक्त, बैठना जरूरी नहीं होता। भगवान तो अपने सि हासन पर बेठे ही थे । बोलने में तो भगवान की क्षमता अद्‌भुत होगी ही, क्यों कि तीर्थंकर नाम कर्म का उदय था, १३ वें गुणस्थान में वर्त रहे थे । मोहनीय कर्म तो था ही नहीं अत: मान क्रोध का तो सवाल ही नहीं और ज्ञानावरणीय कर्म नहीं था तो उत्तर नहीं आना या सोचना, हैरान होना कुछ था ही नहीं । इसलिये दोनों तरफ का स योग बराबर था ।

गा गेय ने इसी क्रम से सातों नरक में एक जीव से लेकर १० जीव तक के जाने के प्रवेशनक-विकल्प खुलासे वार पूछे । उसके बाद **स ख्याता जीव, अस ख्याता जीव** और अ त में उत्कृष्ट अस ख्याता

जीव के उत्पन्न होने से कितने विकल्प-प्रवेशनक होंगे ? यह सब बिना विश्राम के एक के बाद एक पूछता ही गया । इसें भगवान की निष्कषायता की और केवलज्ञान की भी पूरी कसौटी उसे करनी थी । क्यों कि इस तरह निर तर पूछते ही रहने पर ऊबना, हैरान होना, चिडचिडाट होना, चहेरे की शा ति उत्साह भ ग होना, ये सब मोहकर्म को प्रमाणित करते हक्त और स ख्या में, भ ग में, विकल्पों में सोचने लग जाय, गलत बोल जाय, भूल हो जाय तो उससे ज्ञानावरणीय कर्म प्रमाणित होता है और गलती पकडने के लक्ष्य वाला व्यक्ति खुद तो बहुत सावधान होता ही है और अपने बहु अभ्यस्त विषय को ही पूछता है ।

गा गेय ने सात नरक के प्रश्नों के बाद एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक के ५ तिर्यंच में उत्पन्न होने स ब धी एक जीव से लेकर उत्कृष्ट अस ख्य जीव उत्पन्न होने तक के १३ प्रश्न(१०+३) पूछे। फिर सन्नी मनुष्य और असन्नि मनुष्य यों दो मनुष्यों में १ जीव से लेकर उत्कृष्ट तक के १३ प्रश्न पूछे । उसी तरह भवनपति आदि ४ देवों में भी १ जीव से लेकर उत्कृष्ट तक १३ प्रश्न पूछे । चारों गति के १ जीव से लेकर उत्कृष्ट जीवों के प्रवेशनको की स क्षिप्त जानकारी के चार्ट पृष्ट-२०१ में देखें । विस्तृत जानकारी आगम सारा श की पुस्तकों में या गुढप्राण फाउन्डेशन के भगवती सूत्र भाग-३ में देखें ।

चार गति के प्रवेशनकों की अल्पाबहुत्व- प्रवेशनक की पृच्छा होने से यहाँ उत्पन्न होने वाले जीवों की स ख्या अपेक्षित है- (१) सबसे थोडे मनुष्य प्रवेशनक, (२) नरक प्रवेशनक अस ख्यगुणा (३) उससे देव प्रवेशनक अस ख्य गुणा (४) उससे तिर्यंच प्रवेशनक(तीन गतियों से तिर्यंच में उत्पन्न होने वाले जीव) अस ख्यगुणे ।

मनुष्यों में- (१) सन्नी मनुष्य प्रवेशनक अल्प। उससे असन्नि मनुष्य प्रवेशनक अस ख्यगुणा । **नारकी में- (**१) सबसे अल्प सातवीं नरक के प्रवेशनक (२) उससे छट्ठी नरक प्रवेशनक अस ख्यगुणा यों क्रमश: प्रथम नरक तक प्रवेशनक अस ख्यगुणा कहना। **देवता में-** सबसे अल्प वैमानिक प्रवेशनक, उससे भवनपति प्रवेशनक अस ख्यगुणा, उससे

व्य तर ज्योतिषी प्रवेशनक क्रमशः अस ख्यगुणा । **तिर्यंच में–** (१) सर्व से थोडा प चेन्द्रिय प्रवेशनक (२) उससे चौरेन्द्रिय, तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय और एकेन्द्रिय प्रवेशनक क्रमशः विशेषाधिक । यहाँ तिर्यंच में अस ख्यगुणा नहीं है । क्यों कि नये उत्पन्न होने वाले जीवों की उत्कृष्ट स ख्या परस्पर दुगुनी भी नहीं होती है इसीलिये विशेषाधिक ही कही है । यों तो एकेन्द्रिय में प्रति समय अन त जीव उत्पन्न होते हक्त और मरते हक्त कि तु यहाँ प्रवेशनक– एकेन्द्रिय में अन्यत्र(त्रस) से आकार नये उत्पन्न होने वाले ही प्रवेश करने वाले गिने जाते हक्त ।

जीव अपने कर्मों से ही २४ द डक में उत्पन्न होते हक्त और अपने कर्मों के कारण (दूसरा कोई भेजने वाला नहीं होता है ।) स्वतः ही जीव कर्मानुसार जाकर उत्पन्न होता है । **सओ**=अपने कर्मों से । **सय**=खुद ही ॥ उद्देशक–३२ स पूर्ण ॥

प्रश्न–९ : भगवान के माता–पिता का यहाँ क्या वर्णन है ?

उत्तर– यहाँ ३३वें उद्देशक में ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवान दा ब्राह्मणी का वर्णन है । भगवान महावीर स्वामी का जीव दसवें स्वर्ग से आकर सर्व प्रथम देवान दा के गर्भ में उत्पन्न हुआ था और ८३ वीं रात्रि में देवता ने स हरण करके त्रिशला राणी के गर्भ में रखा था । यह बात भगवान ही जानते थे । देव द्वारा गुप्त रूप से स हरण प्रक्रिया हुई थी । इसलिये जन मानस को इस बात की, कुछ भी जानकारी अभी तक नहीं थी । प्रस्तुत सूत्रपाठ अनुसार यह जानकारी गौतम स्वामी को भी नहीं थी ।

लोक प्रसिद्ध भगवान के माता–पिता सिद्धार्थ और त्रिशला क्षत्रियाणी थे। वे दोनों श्रावक व्रतों की अराधना एव स लेखना स थारा करके १२वें देवलोक में गये। उसके बाद भगवान ने २ वर्ष न दीवर्धन भाई के आग्रह से ढककर फिर दीक्षा ली थी। भगवान के दोनों माता-पिता कु डग्राम वासी थे । एक क्षत्रिय कुंडगाम में थे दूसरे माहण कु डग्रामवासी थे अर्थात् कु डग्राम के ही ये दो विभाग थे ऐसा समझा जाता है ।

ऋषभदत्त, ब्राह्मण मत के चार वेद आदि के सा गोपा ग ज्ञाता

भी थे एव श्रमणोपासक भी थे । एक बार भगवान विचरण करते हुए कु डग्राम में पधारे । प्रवचन सुनने के लिये परिषद आई, व्याख्यान सभा भराई । प्रवचन प्रार भ नहीं हुआ था । ऋषभदत्त और देवान दा भी आये । देवान दा स्वाभाविक ही भगवान को एकटक से देखने लगी । सहज पुत्र-मातृभाव उत्पन्न हुआ । हर्ष से अ ग-प्रत्य ग विकसित हुए। यहाँ तक कि स्तनों से दूध भी बाहर प्रष्फुटित होने लगा। गौतम स्वामी की नजर देवान दा तरफ पडी । देवान दा का दृष्य देखकर तुर त भगवान से पूछ लिया कि देवान दा को ऐसा क्यों हो रहा है ? भगवान ने अपनी माता होने का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया– **ए व खलु गोयमा ! देवान दा माहणी मम अम्मगा, अह ण देवाण दाए माहणीअे अत्तए ।**

उसके बाद भगवान ने प्रवचन दिया। भगवान के माता–पिता वहीं समवशरण में दीक्षित हुए । ११ अ गशास्त्रों का अध्ययन किया । विविध तपाराधना की और दोनों अनेक वर्ष स यम पालन कर एक महीने के स थारे से उसी भव में मोक्षगामी हुए ।

प्रश्न–१० : देवान दा के गर्भ से भगवान का स हरण किया गया था तब त्रिशला के गर्भगत जीव को देवान दा के गर्भ में रखा गया था उसका क्या हुआ ?

उत्तर– प्रस्तुत में उपदेश सुनकर विरक्त हुए माता–पिता का सीधा दीक्षित होने का वर्णन है, स्क धक की दीक्षा वर्णन की भलावण है। कि तु पुत्र को घर का भार सोंपना या अन्य पुत्री आदि से मिलने का वगैरह कुछ भी वर्णन नहीं है । ऐसा सीधा दीक्षित होने का वर्णन, अर्जुनमाली, स्क धक स न्यासी आदि के पीछे कोई नहीं होने वालों का ही प्रायः होता है । अतः इस दीक्षा वर्णन से ऐसा अनुमान होता है कि इनके कोई स तान नहीं थी और त्रिशला के गर्भ से जिसको स हरित करके देव ने देवान दा के गर्भ में रखा था उसकी भी उम्र ल बी नहीं रही होगी । वह एक ही स तान–बालक या बालिका जो भी हुई थी अल्प उम्र में ही चल बसी थी, ऐसा यहाँ के वर्णन से स्वीकार किया जा सकता है । बाकी तो तत्स ब धी विवरण कोई भी कथाग्र थों में या इतिहास में उपलब्ध नहीं होता है । इसलिये निश्चित कुछ भी

नहीं कहा जा सकता ।

प्रश्न-११ : जमाली का क्या परिचय है ?

उत्तर- जमाली भगवान महावीर की जन्मनगरी क्षत्रिय कु डपुर नगर का निवासी क्षत्रिय कुमार था । उसके माता-पिता का नाम तथा गौत्र यहाँ सूत्र में नहीं बताया है । यौवन में आठ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ था। वह ऐश्वर्य-रिद्धि स पन्न था एव मानुषिक सुखों में लीन था। एक बार भगवान महावीर स्वामी का माहणकु डपुर नगर में पधारना हुआ । लोगों की दर्शनार्थ जाने की हल-चल से शोध करने पर जमालीकुमार को ज्ञात हुआ कि जनता भगवान के दर्शन-सेवा-पर्युपासना के लिये जा रही है। जमाली भी जाने को उत्सुक हुआ एव यथासमय पहुँच गया। भगवान ने समवसरण में उपस्थित पर्षदा को धर्मोपदेश दिया । जमाली विरक्त हुआ । माता-पिता से आज्ञा प्राप्त की और ५०० क्षत्रिय कुमारों के साथ दीक्षा ली । भगवान का शिष्यत्व स्वीकारा । ग्यारह अ ग शास्त्रों का अध्ययन किया । बहुश्रुत बना ।

एक बार अपने शिष्य समुदाय सहित अलग विचरण करने की इच्छा भगवान के समक्ष रखी । भविष्य जीवन मिथ्यात्व उदय से भावित होने की फरसना वाला जान कर भगवान मौन रहे । विचरण की स्वीकृति प्रभू ने नहीं दी । तब जमाली स्वत: चल दिया । विचरण करते हुए अचानक शरीर अति ढग्ण हो गया । अशाता वेदनीय एव दर्शन मोहनीय दोनों कर्मों का तीव्र उदय होने से उसके विचार चि तन भगवान के सिद्धा त से प्रतिकूल चलने लगे। आखिर उदय प्रभाव से वह समकित का वमन कर मिथ्यात्व भावित बनकर असत् प्रढपणा करने लगा । कुछ शिष्य उसके उस व्यवहार से खिन्न होकर उसे छोडकर भगवान के पास पहुँचे । वह भी विचरण करते हुए भगवान के पास पहुँचा । भगवान से झूठ ही कहने लगा कि मक्त केवली बन कर आया हूँ। भगवान ने और गौतम स्वामीने उसे कुछ समझाने का प्रयत्न किया कि तु मिथ्यात्वोदय के जोर में महावैरागी क्षत्रियकुमार

मुनि की भी बुद्धि कु ठित हो चुकी थी । होनहार बलवान था । वह बिना कुछ समझे भगवान और गौतम स्वामी की उपेक्षा करके आया ज्यों ही चल दिया । जीवन भर असत्य प्ररूपणा करता हुआ, स्वय को एव अन्यों को मिथ्यात्व में भावित करता हुआ, तप स यम के और शुभ लेश्या के प्रभाव से किल्विषी देवों में छट्ठे देवलोक में १३ सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुआ । अनेक वर्षों की स यम पर्याय एव विशिष्ट तप साधना के साथ प द्रह दिन के स लेखना-स थारा में आयुष्य पूर्ण करके उसने देवगति प्राप्त करी ।

प्रश्न-१२ : जमाली का भगवान महावीर से कोई सा सारिक रिस्ता था ?

उत्तर- कथाग्र थों में से ऐसा जानने को मिलता है कि वह भगवान का बेटी जमाई(दामाद) था । पर तु शास्त्र में कुछ भी परिचय मिलता नहीं है ।

आचारा गसूत्र में भगवान की पुत्री का नाम प्रियदर्शना बताया है । यहाँ जमाली के आठ स्त्रिया होना बताया है नाम किसी का नहीं बताया है । भगवान की दोहित्री यशोमती का आचारा ग सूत्र में कौशिक गौत्र बताया है । यहाँ जमाली के गौत्र का भी कोई कथन नहीं है । इतना होते हुए भी ग्र थों के कथन अनुसार जमाली को भगवान का दामाद होना श्रद्धा से बहु प्रचलित है एव मान्य है । शास्त्र में इसका कुछ भी स केत नहीं है । इतना जरूर है कि वह महापुण्यव त क्षत्रियकुमार था । ५०० व्यक्ति उसके पुण्य प्रभाव से उसके साथ दीक्षित हुए और उसके शिष्य बने । मिथ्यात्व का उदय होने के बाद भी उसने स यम-तप नहीं छोडा, लि ग भी नहीं पलटा। महातपस्वी जीवन से भी उसने मिथ्यात्व के कारण विराधना प्राप्त करी । कि वद ति में ऐसा भी कहा जाता है उसकी अकेले की तप करणी से अनेक जीव मोक्ष प्राप्त कर सके, ऐसी उसकी करणी थी ।

प्रश्न-१३ : जमाली का माता-पिता के साथ दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिये हुआ स वाद स क्षेप में क्या था ?

उत्तर– पुत्र के द्वारा दीक्षा लेने की बात सुनकर माता शोकातुर बनी एव मूर्छित होकर गिर पडी । परिचारिकाओं के द्वारा शुश्रूषा करने पर स्वस्थ होने के बाद उसका पुत्र जमालीकुमार के साथ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हुआ ।

(१) माता– हे पुत्र! तूँ हमारा इकलोता प्रिय पुत्र है । हम तुम्हारा क्षणमात्र भी वियोग सह नहीं सकते । अतः तुम हमारे जीवनकाल में दीक्षा नहीं लेवो । हमारे काल करने के बाद एव कुल वृद्धि करने के बाद दीक्षा लेना ।

जमाली– हे माता पिता ! यह मानव भव अनेक स कटों से युक्त, अनित्य, विनश्वर है एव अवश्य छोडना पडेगा । आप और हम में कौन पहले या पीछे काल कर जायेगा, यह कुछ निश्चित्त नहीं है । अतः आप मुझे दीक्षा की स्वीकृति दीजिये ।

(२) माता– हे पुत्र! तुम्हें यह सर्व सुलक्षण युक्त सु दर, परिपूर्ण इन्द्रिय युक्त, रोगमुक्त स्वस्थ शरीर मिला है। अतः प्राप्त गुण स पन्न शरीर ए व यौवन का सुखभोग कर, हमारे काल कर जाने के बाद दीक्षा लेना ।

जमाली– हे माता पिता ! यह शरीर दुःखों का तथा रोग–व्याधि, बुढापे का घर है। सडन-पडन-विध्व सन धर्म(स्वभाव)वाला है, मिट्टी के बर्तन के समान दुर्बल और अशुचि का भ डार है । इसे अवश्य छोडना पडेगा । आप और हम में कौन पहले–पीछे काल कर जायेगा इसका कुछ पता नहीं है । अतः मक्त आपकी आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

(३) माता– हे पुत्र! तुम्हारी ये आठ पत्नियाँ सर्वगुण स पन्न एव तुम्हारे पूर्ण अनुकूल, यौवन वय प्राप्त, उत्तम कुलों से लाई गई, सर्वांग सु दर, भावानुकूल है । इनके साथ सुख भोगने के बाद यौवन ढलने पर, विषय कुतूहल के समाप्त होने पर, हमारे काल करने के बाद दीक्षा लेना ।

जमाली– हे माता–पिता! ये मानुषिक कामभोग अशुचिमय है अल्प और सामान्य सुख वाले एव परिणाम में अन त स सार वृद्धि रूप

कटुक परिणाम वाले हक्त । मोक्षगमन मार्ग में विघ्नरूप हक्त, अज्ञानीजन सेवित और ज्ञानीजन गर्हित है । अतः हे माता–पिता! मक्त आपकी आज्ञा होने पर दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

(४) माता–पिता– हे पुत्र ! अपने घर में विपुल धन स पत्ति के भ डार भरे हक्त । अनेक पीढी तक भी खाने–देने–बा टने पर भी समाप्त नहीं होवे इतना प्रचुर धन है । अतः तुम निश्चिन्त होकर मानुषिक सुखभोग कर, कुलवृद्धि करके, हमारे चले जाने के बाद दीक्षा लेना ।

जमाली– हे माता–पिता ! धन की अनेक गति है– राजा ले ले, चोर हर ले, भाई–ब धु बा ट ले, आग लग जाय, भूक प से भूमि में समा जाय इत्यादि इस अध्रुव, अनित्य, अशाक्तत धन में मुझे कि चित् भी लगाव नहीं है, इसे छोड अवश्य जाना पडेगा । आप और हममें कौन पहले-पीछे जायेगा इसका कोई पता नहीं है । अतः आप की आज्ञा मिलने पर मक्त दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

(५) माता–पिता– हे पुत्र ! स यम के नियम–व्रत, महाव्रत, भिक्षाचर्या, आधाकर्म आदि दोषों का वर्जन, पैदल एव न गे पाँव विहार, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य पालन, २२ परीषह जीतना, इन्द्रियों का निग्रह, इच्छाओं पर काबू पाना आदि अत्य त दुष्कर दुस्सह है, तूँ सुकुमाल सुखोचित है । सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, डांस, मच्छर के परीषह सहना, लोच करना, शरीर के ममत्व का त्याग करना, ये सर्व अति कठिन कठिनतम साधनाएँ हक्त । हे पुत्र! हम तुम्हारा क्षण मात्र भी वियोग एव ए ेसा कष्ट साध्य जीवन देखना नहीं चाहते हक्त अतः हमारे जीते तक तुम घर में रहो, उसके बाद हमारे चले जाने पर तुम भुक्तभोगी होने के बाद दीक्षा लेना ।

जमाली– हे माता–पिता ! यह निर्ग्रंथ प्रवचन एव स यम सत्य अणुत्तर है, जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाला है एव अन त भव–भ्रमण का फेरा मिटाने वाला है । यह कायर पुढषों के लिये एव स सार लालसा में लीन विषयासक्त पुढषों के लिये कठिन दिखने वाला है । पर तु इस लोक परलोक के भौतिक सुखों की आशा से रहित, धीर-ग भीर, ज्ञानी, विरक्त, मोक्षाभिलाषी, एक मात्र भगवदाज्ञा में समर्पित आत्माओं

के लिये कि चित् भी दुष्कर नहीं है अपितु अन त आत्म स तोष, आत्म आन द, अतुल, अनुपम समाधि, शा ति को देने वाला है । इसलिये स यम कि चित् भी दुष्कर नहीं है । आपकी आज्ञा होने पर मक्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा में प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।

माता-पिता इच्छा बिना भी जमाली के उत्तरों से उसकी दीक्षा भावना में सहमत हो गये ।

प्रश्न-१४ : जमाली के दीक्षा महोत्सव स ब धी विशेष उल्लेखनीय वर्णन क्या है ?

उत्तर- उसका स पूर्ण दीक्षा महोत्सव का आदेश निर्देश उसके पिताजी ने दिया था । निष्क्रमणाभिषेक के रूप में १०८ सोने के १०८ चा दी के यों मणि, रत्न आदि तथा १०८ मिट्टी के कलशों से जलाभिषेक किया गया । फिर माता-पिता के द्वारा, ''हे पुत्र! तुम्हे क्या चाहिये ?'' पूछने पर जमाली ने ओघा-पात्र लाने का तथा नाई को बुलाने का फरमाया । कुत्रिकापण से ओघा-पात्र आ गये और नाई भी हाजिर हुआ । उसने सुग धित जल से हाथ-पांव धोकर, आठ पट का वस्त्र मुख पर बा धकर, फिर जमाली के मस्तक के बाल चार अ गुल लोच के योग्य रखकर बाकी के काट लिये । माता ने कटे केशों को स्वच्छ वस्त्र में लेकर धोकर सुग धित करके शुद्ध वस्त्र में बा धकर रत्न म जूषा में रखे और उस म जूषा को अपने शिरहाने के पास स्थापित किया ।

फिर जमाली को माता-पिता ने स्नान करवा कर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित कर हजार पुढष उठावे वैसी शिबिका में सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बिठाया । उसके दाहिनी तरफ भद्रासन पर उसकी माता बैठी आदि पूरे ठाठ-बाठ से दीक्षा की शोभा यात्रा भगवान की सेवा में पहुँची । मार्ग में चलते समय दीक्षार्थी के लिये विजयनारे इस प्रकार लगाये जा रहे थे-

हे नन्द ! (आन द दायक-आन द इच्छुक) ! तुम्हारी धर्म द्वारा जय हो । हे नन्द ! तप से तुम्हारी जय हो । हे नन्द ! तुम्हारा कल्याण हो । हे नन्द ! तुम अख डित ज्ञानदर्शनचारित्र के स्वामी बनो । हे नन्द ! तुम इन्द्रिय जयी बनो । हे नन्द ! तुम सर्व विघ्नों को पार करो । हे नन्द

! आप परीषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करो । हे नन्द ! तुम रागद्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करो । हे नन्द ! उत्तम शुक्ल ध्यान द्वारा कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो । हे धीर ! तीन लोक रूप विश्व म डप में उत्तम आराधना रूप विजय पताका फहरावो । हे धीर !अप्रमत्त होकर स यम में विचरण करो। हे वीर !निर्मल विशुद्ध अनुत्तर केवलज्ञान प्राप्त करो । हे वीर ! तुम्हारे धर्म मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो । हे महाभाग ! तुम परम पद रूप मोक्ष प्राप्त करो ।

पाँच सौ पुढषों के साथ जमाली को भगवान ने दीक्षा पाठ पढाया । इन पाँच सौ पुढषों का अन्य कोई भी वर्णन उपलब्ध नहीं है । उसे यहाँ गौण कर दिया गया है । वे ५०० अणगार जमाली को शिष्य रूप में भगवान ने समर्पित कर दिये थे ।

प्रश्न-१५ : इस प्रकार के उत्कृष्ट वैरागी जमाली को मिथ्यात्व का आक्रमण क्यों कैसे हुआ ?

उत्तर- भगवद् निरूपित तत्त्वों में **''चलमाणे चलिए, कज्जमाणे कडे''** ऐसा एक सूक्ष्म तात्त्विक सिद्धा त है । जो व्यवहारोचित भी है कि किया गया कार्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ होता ही है वह अपने देश नय से सत्य भी है कि तु एका त पूर्णता के दुराग्रह में व्यक्ति श कित, मोहाभिभूत, मिथ्या दुराग्रही बन सकता है । कि तु भगवद् सिद्धा त तो सापेक्ष नय स गत सत्य ही है ।

एक बार स्वत त्र विचरण काल में जमाली अत्य त ढग्ण एव अशक्त हो गया था । सोने के लिये इतना आतुर था कि ढग्ण योग्य घास आदि का स थारा व्यवस्थित करने में होने वाले विल ब को वह सहन नहीं कर पा रहा था । बार-बार शिष्यों को पूछ रहा था कि बिछौना अभी तक हुआ नहीं क्या ? शिष्य नम्रता से सही उत्तर देते जा रहे थे कि बिछौना बिछाया जा रहा है, अभी बिछा नहीं गया है । इस प्रकार अधैर्य की मानसिकता में बिछाने का कार्य चलते हुए भी बिछौना हुआ नहीं ये शब्द उसके उल्टी विचार धारा में कारणभूत बन गये । मिथ्यात्व का उदय जोर कर गया । भगवान को भी खोटा

मानने लग गया एव अत्य त दुराग्रह मानस वाला बन गया । ढग्णता और अधैर्य उसमें पक्के निमित्त बन गये । फिर शिष्यों के समझाने पर भी नहीं माना और अ त में भगवान तथा गौतम से भी नहीं माना ।

वास्तव में मिथ्यात्व का तीव्रोदय उस पर हावी हो चुका था । जो जीवन भर यों ही चला । आखिर भवाँतर में (१-२-३ भवों के बाद) कभी वह तीव्रोदय समाप्त होगा और अ त में वह मोक्षगामी भवी जीव है ऐसा प्रभु ने उसका भविष्य गौतम स्वामी के पूछने पर फरमाया ।

प्रश्न-१६ : जमाली के आगामी भवों की कोई निश्चित्त स ख्या नहीं है ?

उत्तर- जमाली के १५ दिन स थारे में काल करने के समाचार मिलने पर गौतम स्वामी ने उसकी गति पूछी ? छट्ठे देवलोक में किल्विषी देव होने का उत्तर प्राप्त कर पुन: गौतम स्वामी ने पूछा कि ये किल्विषी देव कितने प्रकार के हक्त और ये आगे कितने भव करेंगे ? भगवान ने कहा- है गौतम ! कोई किल्विषी देव-४-५ भव तक चारों गति में से कहीं भी जन्म मरण करके मोक्ष जायेंगे। यह न्यूनतम भव भ्रमण समझा जा सकता है ऐसा सूत्रपाठ से तात्पर्य निकलता है । मध्यम भव भ्रमण के अनेक दर्जे हो सकते हक्त और कई जीव अन त स सार में भ्रमण करते रहते हक्त । समुच्चय किल्विषी का प्रश्न पूरा होने के अन तर फिर जमाली स ब धी प्रश्न किया । जमाली के भव भ्रमण स ब धी प्रश्न करने पर भगवान ने कहा कि वह मेरा अ तेवासी कुशिष्य जमाली देवलोक से निकल कर तिर्यंच मनुष्य-देव के ४-५ भव करके मोक्ष जायेगा ।

वहाँ के उत्तर का तात्पर्य स्पष्ट है कि समस्त किल्विषी देवों में से कई देव ४-५ भव चारों गति में से कहीं भी करके मोक्ष जायेंगे और कई देव अनादि अन त स सार में परिभ्रमण करेंगे । तथा जमाली अणगार नरक छोडकर तीन गति में से कहीं भी कुल ४-५ भव करके मोक्ष जायेंगे ।

पर परा में जमाली के भावी भवों स ब धी पाठ से अनेक अर्थ किये जाते हक्त किंतु सीधा-सरल अर्थ उपर दिया गया है । उसमें ४-५ स ख्या को प्रत्येक गति से जोडने की उलझन में उलझा जाता है कि तु इस सीधे से अर्थ वाले पाठ में उलझने जैसा कुछ भी नहीं । सुना है आज से एक शताब्दि पूर्व जमाली के भव स ब धी चर्चा का आग्रह इतना दुराग्रह में बढ गया था कि वह प्रश्न कोर्ट केश में पहुँच कर आखिर जज के फेंसले से खारिज किया गया था ।

जज की बुद्धि- दोनों पक्ष को पूछा गया था कि तुम्हारे जमाली क्या लगता है ? दोनों का उत्तर था कुछ नहीं लगता है । तब केश रद्द कर दिया गया । फिर भी तत्त्व केवलि गम्य । **तमेव सच्च णिस क ज जिणेहिँ पवेइय** । भगवद् कथन सत्य है ऐसा स्वीकार्य है ।॥ उद्देशक-३३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१७ : एक पुढष को अथवा एक ऋषि को मारने वाला कितने जीवों को मारता है ?

उत्तर- एक मनुष्य या एक त्रस प्राणी का हनन करता हुआ व्यक्ति उस प्राणी का तथा उसके आसपास या निश्रागत एक या अनेक जीवों का भी हनन करने वाला हो सकता है । वह व्यक्ति उस जीव के वैर से तो स्पृष्ट होता ही है साथ में कभी एक या अनेक अन्य जीवों के वैर से भी स्पृष्ट होता है ।

ऋषि-मुनि का हनन करने वाला ऋषि का एव अन त जीवों का हनन करने वाला होता है क्यों कि मुनि अन त जीवों की हिंसा से विरत होते हक्त, अन त जीवों की रक्षा करते हैं और रक्षा करने के प्रेरक भी होते हक्त । अत: ऋषि घातक नियमत: ऋषि के वैर से तथा अन त जीवों के वैर से स्पृष्ट होता है । मरने पर ऋषि भी अव्रती बन जाता है अत: अपेक्षा से एव पर परा दृष्टि से उक्त कथन समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न-१८ : एकेन्द्रिय जीवों के श्वास एव क्रिया के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- एकेन्द्रिय जीवों के श्वास स ब धी सापेक्ष कथन है कि पृथ्वी

आदि के जीव निश्चय नय से परिणमन की अपेक्षा स्वय का पृथ्वी आदि का श्वास लेते हक्त, आत्म परिणत श्वासोश्वास वर्गणा के पुद्गलों का श्वास लेते–छोडते हक्त । ग्रहण–नि:सरण की अपेक्षा पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यंत सभी का अर्थात् अवगाहित क्षेत्र में रहे सभी का श्वास क्रिया में ग्रहण नि:सरण करते हक्त । इस श्वास की प्रक्रिया से एकेन्द्रिय को भी उन पृथ्वी आदि जीवों से कदाचित् ३–४ या ५ क्रिया, कायिकी आदि लगती है ।

वायु से या प्रच ड वायु से जो वृक्ष का मूल आदि विभाग हिलाया जावे या गिराया जावे तो वायुकाय को उससे ३–४ या ५ क्रिया लगती है । वृक्ष में अनेक जीव होते हक्त उसमें से कई मरते हक्त और कई को किलामना मात्र होती है इत्यादि कारणों से पाँच क्रिया वैकल्पिक लगती है अर्थात् प्रार भ की तीन क्रिया तो स सार के समस्त जीवों से लगती है। किलामना होने वाले जीव से चौथी पारितापनिकी क्रिया लगती है एव प्राण नष्ट होने पर उस जीव से पाँचवीं प्राणातिपातिकी क्रिया भी लगती है ॥ उद्देशक–३४ का पूर्ण ॥

सातों नारकी के स पूर्ण भ ग :-

जीव स ख्या	अस योगी भ ग	दो स योगी भग	तीन स योगी भग	चार स योगी भग	पाँच स योगी भग	छह योगी भ ग	सात स योगी भग	कुल भ ग
१	७	*	*	*	*	*	*	७
२	७	२१	*	*	*	*	*	२८
३	७	४२	३५	*	*	*	*	८४
४	७	६३	१०५	३५	*	*	*	२१०
५	७	८४	२१०	१४०	२१	*	*	४६२
६	७	१०५	३५०	३५०	१०५	७	*	९२४
७	७	१२६	५२५	७००	३१५	४२	१	१७१६
८	७	१४७	७३५	१२२५	७३५	१४७	७	३००३
९	७	१६८	९८०	१९६०	१४७०	३९२	२८	५००५
१०	७	१८९	१२६०	२९४०	२६४६	८८२	८४	८००८
संख्यात	७	२३१	७३५	१०८५	८६१	३५७	६१	३३३७
असंख्यात	७	२५२	८०५	११९०	९४५	३९२	६७	३६५८
उत्कृष्ट	१	६	१५	२०	१५	६	१	६४

तिर्यंच के स पूर्ण भ ग :-

जीवस ख्या	अस योगी	दो स योगी	तीन स योगी	चार स योगी	पाँच स योगी	कुल भ ग
१	५	–	–	–	–	५
२	५	१०	–	–	–	१५
३	५	२०	१०	–	–	३५
४	५	३०	३०	५	–	७०
५	५	४०	६०	२०	१	१२६
६	५	५०	१००	५०	५	२१०
७	५	६०	१५०	१००	१५	३३०
८	५	७०	२१०	१७५	३५	४९५
९	५	८०	२८०	२८०	७०	७१५
१०	५	९०	३६०	४२०	१२६	१००१
स ख्यात	५	११०	२१०	१५५	४१	५२१
अस ख्यात	५	१२०	२३०	१७०	४५	५७०
उत्कृष्ट	१	४	६	४	१	१६

उत्कृष्ट के भंगों का ज्ञान :-

१ प्रवेशनक का = १ भंग
२ प्रवेशनक के = २ भंग
३ प्रवेशनक के = ४ भंग
४ प्रवेशनक के = ८ भंग
५ प्रवेशनक के = १६ भंग
६ प्रवेशनक के = ३२ भंग
७ प्रवेशनक के = ६४ भंग

इस तरह आगे दुगुना–दुगुना करना चाहिये ।

मनुष्य के संपूर्ण भंग :–

जीव	असंयोगी	दो संयोगी	कुल
१	२	–	२
२	२	१	३
३	२	२	४
४	२	३	५
५	२	४	६
६	२	५	७
७	२	६	८
८	२	७	९
९	२	८	१०
१०	२	९	११
संख्यात	२	११	१३
असंख्यात	१	११	१२
उत्कृष्ट	१	१	२

प्रश्नोत्तर के माध्यम से इन पुस्तकों में यथाशक्य आगम भावों के स्पष्टीकरण के साथ पाठकों को उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं का भी अनुमान करके समाधान देने का प्रयत्न किया जाता है, तथापि छद्मस्थ साधकों के क्षयोपशम एक एक से बढकर होते हैक्त अत: स भव है किन्ही को अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न हो सकती है जिनका समाधान करना आवश्यक लगे तो हमारे स पर्क सूत्र पर पत्रव्यवहार द्वारा समाधान पाने का प्रयत्न किया जा सकता है । आगम प्रश्नोत्तर प्रकाशन क्रम– अ गसूत्र, उपा गसूत्र, मूलसूत्र, छेदसूत्र, इस तरह १० भागों में हो रहा है । दश भागों का परिचय प्रत्येक पुस्तक के प्रथम पृष्ट पर दिया जाता है ।

दलतपतभाई रामानुज

९८९८२

३९९६१

चार जाति के देवों के प्रवेशनक भंग :–

जीव संख्या	असंयोगी	द्विसंयोगी	तीन संयोगी	चार संयोगी	कुल भंग
१	४	–	–	–	४
२	४	६	–	–	१०
३	४	१२	४	–	२०
४	४	१८	१२	१	३५
५	४	२४	२४	४	५६
६	४	३०	४०	१०	८४
७	४	३६	६०	२०	१२०
८	४	४२	८४	३५	१६५
९	४	४८	११२	५६	२२०
१०	४	५४	१४४	८४	२८६
संख्य	४	६६	८४	३१	१८५
असंख्य	४	७२	९२	३४	२०२
उत्कृष्ट	१	३	३	१	८

शतक–१० : उद्देशक–१ से ३४

प्रश्न–१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– इसमें ३४ उद्देशक हक्त जिसमें २९ उद्देशकों में स क्षिप्त सूचन है तथा पाँच उद्देशकों में विषय वर्णन है । शतक के प्रार भ में एक गाथा द्वारा उद्देशकों के विषय एव नाम निर्देश हक्त, जो इस प्रकार है–

(१) दिशा– प्रथम उद्देशक में दस दिशाओं का नाम एव स्वरूप दर्शाकर उन दिशाओं में जीव–अजीव के देश–प्रदेश आदि के विकल्प कहे हक्त ।

(२) स वृत अणगार– इस उद्देशक में अणगार को सा परायिक और ए ेर्यापथिकी क्रिया का वर्णन है । योनियाँ, वेदना एव भिक्षु प्रतिमा के साधक स ब धी स क्षिप्त वर्णन है । जिसके लिये प्रज्ञापना एव दशाश्रुत स्क ध सूत्र की भलावण है । अ त में आलोचना प्रायश्चित्त का महत्त्व दर्शाया गया है ।

(३) आत्मऋद्धि– इस उद्देशक में देव-देवियों की अपनी क्षमता, घोडे के चलने में खू-खू की आवाज, व्यवहार भाषा आदि वर्णन है ।

(४) श्यामहस्ती– इस उद्देशक में श्यामहस्ती नामक अणगार के प्रश्न त्रायत्रिंशक देव स ब धी वर्णित है ।

(५) देवी– इस उद्देशक में चारों जाति के देवेन्द्रों की अग्रमहिषियों का वर्णन है ।

(६) सभा– इसमें शक्रेन्द्र की सुधर्मा सभा आदि का वर्णन सूर्याभ देव की भलावण युक्त स क्षिप्त है ।

(७-३४) उत्तर अ तर्द्वीप– उत्तर दिशा के २८ अ तर्द्वीप मनुष्य क्षेत्रों का वर्णन नववें शतक की भलावण युक्त स क्षिप्त है । इसके २८ उद्देशक गिने गये हत्त । जिससे कुल ३४ उद्देशक स ख्या होती हत्त ।

प्रश्न-२ : दिशाएँ कितनी है ? उनमें जीव और अजीव स ब धी कथन किस प्रकार है ?

उत्तर– आगमों में दिशाओं की स ख्या तीन प्रकार से वर्णित है । यथा- चार, छ और दस । प्रस्तुत प्रथम उद्देशक में छ और दश दिशाओं का कथन है ।

छ दिशाओं को लेकर यह कहा गया है कि ये दिशाएँ जीव स्वरूप और अजीव स्वरूप है । क्यों कि उन छहों दिशाओं में जीव भी रहे हुए हत्त और अजीव भी रहे हुए हैं । दिशा स्वय कोई द्रव्य या तत्त्व नहीं है । कल्पना से स्वीकार की गई जीव एव अजीवमय ये दिशाएँ है ।

दस दिशाएँ और उनके नाम इस प्रकार कहे हत्त- (१) पूर्व (२) पूर्वदक्षिण (३) दक्षिण (४) दक्षिण पश्चिम (५) पश्चिम (६) पश्चिम

उत्तर (७) उत्तर (८) उत्तरपूर्व (९) ऊर्ध्व (१०) अधोदिशा । ये व्यवहारिक उच्चारण रूप दस दिशाएँ हत्त । इनके दस नाम क्रमशः इस प्रकार है- (१) इन्द्रा (२) आग्नेयी (३) यमा (४) नैऋति (५) वाढणी (६) वायव्य (७) सोम्या (८) ईशानी (९) विमला (१०) तमा । इन दिशाओं में जीव अजीव के भेद विकल्प इस प्रकार है ।

(१-४) इन्द्रा(पूर्व)आदि ४ दिशा– पूर्व दिशा में एकेन्द्रिय से लेकर प चेन्द्रिय तक एव अनिन्द्रिय ये सभी जीव, उनके देश और प्रदेश होते हत्त।(६X३=१८) ।

पूर्व दिशा में अरूपी अजीव के सात भेद होते हत्त । धर्मास्तिकाय का देश तथा अनेक प्रदेश; अधर्मास्तिकाय का देश तथा अनेक प्रदेश होते हत्त । आकाशास्तिकाय का देश और अनेक प्रदेश । ये छः तथा सातवाँ काल+रूपी अजीव के पुद्गलास्तिकाय के चारों भेद यों कुल अजीव के ११ भेद पूर्व दिशा में होते हत्त । जीव के (६X३=१८)भेद होते हत्त । इसी तरह दक्षिण आदि शेष तीन दिशाओं में भी जीव के १८ भेद और अजीव के ११ भेद होते हत्त ।

(५-८) आग्नेयी आदि ४ विदिशा– ये चारों विदिशाएँ एक प्रदेशी चौडी होती है अतः स पूर्ण जीव इनमें नहीं होते, जीव के देश और प्रदेश हो सकते हत्त । अतः एकेन्द्रिय से अनिन्द्रिय तक ६X२=१२ देश-प्रदेश होते हत्त । अजीव के ११ भेद पूर्ववत् होते हत्त ।

वर्तमान समय की पृच्छा की अपेक्षा एक प्रदेशी विदिशा में कभी मात्र एकेन्द्रियों के देश ही होते हत्त (ये नियमा है) शेष एक बेइन्द्रिय आदि का देश, अनेक देश, अनेक बेइन्द्रियों के अनेक देश; इसी तरह तेइन्द्रिय से अनिन्द्रिय तक के देश विकल्प से होते हत्त अर्थात् कभी होते हत्त, कभी नहीं भी होते हत्त । प्रदेश की पृच्छा में बेइन्द्रिय से अनिन्द्रिय तक एक जीव का एक प्रदेश नहीं होता है अनेक प्रदेश ही होते हत्त । अतः देश के विकल्प से ये ५ एक प्रदेश के विकल्प कम होते हत्त ।

(९) विमला(ऊर्ध्व) दिशा– यह दिशा चार प्रदेशी होती है अतः स पूर्ण वर्णन एक प्रदेशी विदिशा के समान ही है ।

(१०) तमा(अधो)दिशा– यह भी चार प्रदेशी है इसका वर्णन भी ऊर्ध्व दिशा के समान है कि तु इसमें अजीव के १० भेद ही हक्त, ग्यारहवा काल इसमें नहीं होता है । क्यों कि नीचा लोक में काल सलिलावती और वप्राविजय की अपेक्षा होता है और यह अधोदिशा तो मेढ के ढचक प्रदेश की सीध में नीचे लोका त तक चार प्रदेशी ही होती है, अत: इसमें काल नही होता है ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३ : निग्रंथ के लिये आलोचना-प्रतिक्रमण एव अकषाय भाव का महत्त्व यहाँ किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर– निग्रंथ बाह्य आश्रवों का, आर भ-परिग्रह का त्यागी होता है । साथ ही उसे सूक्ष्म-स्थूल कषायों से भी मुक्त होने में प्रयत्नशील रहना होता है । यहाँ उद्देशक-२ में यह बताया गया है कि कषाय मुक्त अवस्था(अवीचिपथ) को प्राप्त स वृत अणगार उपर-नीचे, आजु-बाजु, आगे-पीछे, किधर भी रूपों को देखता हुआ स पराय कर्मब ध नहीं करता है । क्यों कि कषाय के अभाव में होने वाली प्रवृत्ति का कर्म ब ध में कोई महत्त्व नहीं रहता है । स वृत अणगार भी जब तक अपने सूक्ष्म स्थूल कषायों को क्षीण नहीं कर लेता है तब तक उसके द्वारा की गई रूप देखने वगैरह की कोई भी प्रवृत्ति से स परायिक क्रिया लगती है । ईर्यावहि क्रिया उनके नहीं होती है अर्थात् द्वि सामयिक वेदनीय का ब ध नहीं होकर, अधिक स्थिति के ६ कर्मों का या ७ कर्मों का ब ध होता है ।

कोई भिक्षु अकृत्य स्थान का याने स यम में दोष का सेवन करके यह सोचे कि 'मृत्यु समय में एक साथ आलोचना-प्रायश्चित्त कर लूँगा' और वह अचानक बिना आलोचना-प्रायश्चित्त किये काल कर जाय तो आराधक नहीं होता है क्यों कि दोष निवृत्ति की धकस(लगन) कम है, लापरवाही प्रमुख है ।

कोई भिक्षु यह सोचे कि– श्रावक तो कितने ही आर भ समार भ करता है तो भी वैमानिक देवलोक में जाता है, मक्त तो सामान्य दोष स्थान का सेवन कर रहा हूँ कितने स यम-नियम का पालन करता हूँ तो कुछ नहीं तो व्य तर आदि देवगति ही मिलेगी, ऐसा सोचकर भी

अपने दोषों की शुद्धि नहीं करे, यों ही काल कर जाय तो वह विराधक होता है ।

तात्पर्य यह है कि स यम-नियमों में कोई भी क्षति हो तो उसकी शुद्धि तत्काल-प्रतिदिन या शीघ्रातिशीघ्र कर लेनी चाहिये । ॥ उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-४ : देवों की गमनागमन शक्ति एव ऋद्धि का क्या स ब ध है ?

उत्तर– चारों जाति के देव अपनी स्वाभाविक ऋद्धि अनुसार प्राप्त शरीर से अपने ४-५ आवास-भवन-नगर-विमानों तक जा-आ सकते हक्त । इससे अधिक जाना हो तो उत्तर वैक्रिय शरीर बनाकर अपनी मर्यादा में कहीं भी जा सकते हक्त ।

अल्पऋद्धि(स्थिति) वाले देव महर्द्धिक देव की उपेक्षा करके उनके बीच में से नहीं जा सकते । समान ऋद्धि वालों के बीच में से भी नहीं जा सकते कि तु वे प्रमाद में, अन्य ध्यान में हो तो धोखे से जा सकते हक्त । महर्द्धिक देव अल्पर्धिक के बीच में से जा सकते हक्त ।

प्रश्न-५ : दौडते हुए घोडे के शरीर से 'खू-खू' आवाज क्यों आती है ?

उत्तर– घोडे के हृदय और यकृत के बीच में कर्कटक नामक एक प्रकार की वायु उत्पन्न होती है । उस वायु के कारण दौडते हुए घोडे के शरीर से खू-खू ऐसी ध्वनि निकलती है ॥ उद्देशक-३ ॥

प्रश्न-६ : त्रायत्रिंशक देवों का अस्तित्व किस प्रकार है ?

उत्तर– भवनपति और वैमानिक इन्द्रों के ३३ त्रायत्रिंशक देव होते हक्त । ये देव इन्द्र के हित सलाहकार, म त्री स्थानीय होते हक्त । राजा के पुरोहित पुढष के समान वे इन्द्र के सम्माननीय होते हक्त ।

भवनपति के २० इन्द्रों के और वैमानिक १० इन्द्रों के यों कुल ३० इन्द्रों के त्रायत्रिंशक देव होते हक्त । ये सदा ३३ की स ख्या में निश्चित्त होते हक्त । उम्र पूरी होने पर ये च्यवते हैं और अन्य उत्पन्न होते हक्त ।

व्य तर ज्योतिषी में स्वभाव से ही त्रायत्रिंशक देव नहीं होते हक्त । भवनपति में त्रायत्रिंशक बनने वाले विराधक श्रावक होते हक्त और वैमानिक में त्रायत्रिंशक बनने वाले आराधक श्रावक होते हक्त ।

वर्तमान में चमरेन्द्र के त्रायत्रिंशक देव काक दी नगरी के ३३ मित्र श्रमणोपासक थे । बलीन्द्र के त्रायत्रिंशक देव बिभेलनगरी के मित्र श्रमणोपासक थे । शक्रेन्द्र के त्रायत्रिंशक देव पलासक नगर के मित्र श्रमणोपासक थे । ईशानेन्द्र के त्रायत्रिंशक देव च पानगरी के मित्र श्रमणोपासक थे । चमरेन्द्र बलीन्द्र के त्रायत्रिंशक १५ दिन के स थारे में काल करके देव बने थे एव वैमानिक के त्रायत्रिंशक १ महीने के स थारे में काल करके देव बने थे ।

भवनपति के त्रायत्रिंशक देवश्रावकपने में पहले उग्रविहारी थे फिर उन्होंने शिथिलविहारी विराधक होकर काल किया था । वैमानिक के त्रायत्रिंशक देव स पूर्ण जीवन उग्रविहारी श्रमणोपासक ही रहे थे और आराधक होकर काल किया था । कुल ३० इन्द्रों के ये ३३-३३ (९९०)त्रायत्रिंशक देव होते हक्त । प्रस्तुत में ४ इन्द्रों के (३३X४=१३२ का) पूर्वभव वर्णित हक्तशेष का अस्तित्व वर्णन है । ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-७ : चारों जाति के देवेन्द्रों की कितनी-कितनी अग्रमहिषी देवियाँ है ?

उत्तर- चमरेन्द्र-बलीन्द्र के पाँच अग्रमहिषी है और प्रत्येक के ८००० का परिवार है। नवनिकाय के इन्द्रों के ६-६ अग्रमहिषी है और प्रत्येक के ६००० का परिवार है । व्य तर ज्योतिषी के ४-४ अग्रमहिषी और ४-४ हजार का प्रत्येक का परिवार है । शक्रेन्द्र- ईशानेन्द्र के आठ-आठ अग्रमहिषी और प्रत्येक के १६-१६ हजार का परिवार है ।

लोकपालों के सभी के ४-४ अग्रमहिषी और प्रत्येक के १-१ हजार देवियों का परिवार है । लोकपाल, व्य तरेन्द्र, ज्योतिषेन्द्र और ८८ ग्रहों के ४-४ अग्रमहिषी स्थाना ग सूत्र-४/१ में भी कही है वहाँ सभी के (७७६ के) नाम भी बताये हक्त । वहाँ पर भवनपति एव वैमानिक इन्द्रों की अग्रमहिषी नहीं बताई है । जिसका कारण यह है कि चौथा स्थान होने से वहाँ ४ की स ख्या का कथन है ।

भवनपति में ५-६ एव वैमानिक में आठ-आठ अग्रमहिषी है । ५+५+६X१८+३२X४+२X४+२X८ अर्थात् १०+१०८+१२८+८+१६= २७०+लोकपालों की ८८X४=३५२, यों कुल ६२२ अग्रमहिषीयों के नाम यहाँ बताये हक्त । जो ५६ इन्द्र और ८८ लोकपालों की है । उपर के सनत्कुमार आदि ८ इन्द्रों के अग्रमहिषी देविया नहीं होती है ।

ये सभी इन्द्र अपनी सुधर्मा सभा में देवियों के साथ काय परिचारणा नहीं करते हक्त । अपने परिवार ऋद्धि के साथ(नाटक देखना वगैरह की) सुख-साहबी भोग सकते हक्त ।

शतक-११ : उद्देशक-१ से १२

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें १२ उद्देशकों के माध्यम से अनेक विषयों का स कलन है । शतक के प्रार भ में प्राप्त गाथा के अनुसार उद्देशकों के नाम तथा विषय इस प्रकार है-

(१) उत्पल- उत्पल कमल के जीवों की उत्पत्ति से लेकर गति पर्यंत ३३ द्वारों का वर्णन है ।

(२-८) सालु आदि- सालुक, पलास, कु भी, नाली, पउम, कर्णिक, नालिका, इन सातों का वर्णन उत्पल के समान है, कुछ-कुछ अ तर अवगाहना, आयु और लेश्या का है ।

(९) शिव- शिवराजर्षि की दिशाप्रोक्षिक प्रव्रज्या का वर्णन, उससे उत्पन्न विभ गज्ञान, तदन तर भगवान के पास दीक्षा एव मोक्ष पर्यंत का वर्णन है । अ त में चरम शरीरी के स घयण आदि का तथा सिद्धों का स क्षिप्त वर्णन औपपातिक सूत्र की भलावण युक्त है ।

(१०) लोक- तीनों लोक, स पूर्ण लोक-अलोक का स्वरूप, स स्थान आदि के द्वारा समझाया गया है तथा इन सभी में एव इनके एक आकाश प्रदेश में जीव के भेदों का दिग्दर्शन कराया गया है ।

(११) काल- सुदर्शन श्रावक के प्रश्न के उत्तर में उपमाकाल का स्वरूप

दर्शाया गया है एव उसकी प्रामाणिकता के लिये उसके ही पूर्वभव में व्यतीत किये काल की स्थिति को स्पष्ट किया है। तब सुदर्शन श्रावक ने जातिस्मरण ज्ञान द्वारा स्वय भी यथार्थ अनुभव किया । फिर दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त तक की आराधना करी ।

(१२) आलभिका– आलभिका नगरी में रहने वाले ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक का वर्णन है तथा उसी नगरी में रहने वाले पुद्गल परिव्राजक की साधना एव विभ गज्ञान तथा तद्निमित्तक भगवान के पास दीक्षा एव मुक्ति तक का वर्णन है ।

इस प्रकार इस शतक के प्रार भ में वनस्पति तत्त्वज्ञान एव उत्तरार्ध में ४-५ कथानक के द्वारा रोचक जीवन चरित्र वर्णित है ।

प्रश्न-२ : उत्पल आदि के वर्णन में 'एग पत्तए' और 'एग जीवे अणेगजीवे' का क्या तात्पर्य है?

उत्तर– कोई भी वनस्पति जब अ कुरित होती है तब सर्व प्रथम उसकी एक पत्र अवस्था होती है अर्थात् सर्व प्रथम एक पत्र रूप में अ कुरित होती है, अ कुर फूटता है। इसे ही मूलपाठ में **एक पत्रक उत्पल आदि** कहा गया है ।

इस प्रथम अवस्था में पहले एक मुख्य जीव ही अकेला उत्पन्न होता है, अनेक जीव या अन्य कोई भी जीव पहले उसके साथ उत्पन्न नहीं होता है । **तेण पर** =उसके उत्पन्न होने के बाद उसकी नेश्राय में अन्य जीव उत्पन्न होते हक्त वे अनेक होते है अत: फिर वह कभी भी एकजीवी नहीं रहता है फिर वहाँ प्रतिसमय अनेकों जीव अर्थात् जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अस ख्य जीव उत्पन्न होते रहते हक्त और मरते रहते हक्त । यही **एगपत्तए** और **एगजीवे-अणेगजीवे** स ब धी प्रश्नोत्तर का तात्पर्य है ।

प्रश्न-३ : तेतीस द्वारों से उत्पल का क्या वर्णन है ?

उत्तर– यहाँ ३३ द्वारों के माध्यम से उत्पल आदि में उत्पन्न जीवों की स्थिति, अवगाहना, लेश्या, कर्मब ध, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान आदि एव आगति गति स ब धी विवरण दिया गया है, वह इस प्रकार है–

(१) आगति– उत्पल में उत्पन्न होने वाले जीवों की आगत तीन गति

से, नरक छोडकर । (२) उत्पात– एक समय में १-२-३ उत्कृष्ट अस ख्याता उपजे। (३) परिमाण– अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य अस ख्याता होते हक्त । (४) अवगाहना– उत्कृष्ट १००० योजन साधिक होती है।

(५) ब ध– सात कर्मों का ब ध होता है अब ध नहीं होता है । एकवचन बहुवचन से भ ग-२-२ और आयु कर्म के ब ध अब ध दोनों होते हक्त, भ ग-८ । (६) वेदना– साता अशाता दोनों वेदना होती है, भ ग-८ । (७) उदय-आठ कर्मों का उदय होता है, अनुदय नहीं; भ ग २-२ । (८) उदीरणा– ६ कर्मों के उदीरक ही होते हक्त, अनुदीरक नहीं; भ ग २-२ । आयु और वेदनीय कर्म के उदीरक– अनुदीरक दोनों होते हक्त, भ ग-८-८ । (९) लेश्या– कृष्णादि चार लेश्या होती है, भ ग-८० । (१०) दृष्टि– एक मिथ्या दृष्टि, भ ग-२ । (११) ज्ञान-अज्ञानी है, ज्ञानी नहीं भ ग २ । (१२) योग– काय योगी है, भ ग २ । (१३) उपयोग– दोनों, भ ग-८, (१४) वर्णादि– २० बोल पावे, भ ग २-२, शरीर की अपेक्षा ।

(१५) उश्वास– तीन बोल पावे– १. उश्वासक २. निश्वासक ३. नोउश्वासक नोनिश्वासक, भ ग २६ होते हक्त । (१६) आहार– आहारक-अनाहारक दोनों, भ ग-८ । (१७) विरत– अविरत होते हक्त, भ ग-२ । (१८) क्रिया– सक्रिया होते है, अक्रिया नहीं; भ ग २ । (१९) ब धक– सप्त विध ब धक और अष्ट विध ब धक दोनों, भ ग ८ । (२०) स ज्ञा– चार होती है, भ ग ८० । (२१) कषाय– चार होते हक्त । भ ग-८० । (२२) वेद– एक नपु सक, भ ग २ । (२३) वेदब धक– तीनों वेद ब धक, भ ग २६ । (२४) सन्नी– केवल असन्नि है, भ ग २ । (२५) इन्द्रिय– सइन्द्रिय है, अनिन्द्रिय नहीं; भ ग २ । (२६) कायस्थिति– उत्कृष्ट अस ख्य काल ।

(२७) कालादेश– चार स्थावर के साथ उत्कृष्ट अस ख्य भव, अस ख्य काल । वनस्पति के साथ उत्कृष्ट अन त भव, अन तकाल । विकलेन्द्रिय के साथ उत्कृष्ट स ख्याता भव स ख्याता काल । तिर्यंच प चेन्द्रिय एव मनुष्य के साथ उत्कृष्ट ८ भव, चार करोड पूर्व चालीस

हजार वर्ष। (२८) आहार- २८८ प्रकार का ६ दिशा से। (२९) स्थिति- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दस हजार वर्ष। (३०)समुद्घात- तीन क्रमशः, भ ग २६। (३१) मरण- समवहत-असमवहत दोनों, भ ग-८। (३२) गति- तिर्यंच मनुष्य दो गति में जावे । (३३) सर्वजीव- सभी जीव उत्पल कमल के सभी विभागों में अनेक या अन त बार उत्पन्न पूर्व है अर्थात् उत्पन्न हो चुके हक्त ।

प्रश्न-४ : यहाँ तेतीस द्वार के कथन में अनेक जगह भ ग स ख्या कही गई है, उसे किस प्रकार समझना ?

उत्तर- यहाँ ३३ में से २३ द्वार के साथ एकवचन-बहुवचन की अपेक्षा भ ग बताये गये हक्त उनकी विधि यह है कि पूछे गये बोलों में एक बोल पाया जाय तो उसके एक वचन और बहुवचन के यों दो भ ग होते हक्त । दो बोल पाये जाय तो उसके अस योगी ४, द्विस योगी ४, यों ८ भ ग होते हक्त । तीन बोल पाये जाय तो २६ भ ग (६+१२+८) होते हक्त और ४ बोल पाये जाय तो ८० भ ग (८+२४+३२+१६) होते हक्त।**२, ८, २६, ८० भ गों का खुलासा इस प्रकार है-**

(१) दो भ ग- एक जीव उत्पन्न हो तो ज्ञानावरणीय का ब धक एक और अनेक जीव उत्पन्न हो तो ज्ञानावरणीय का ब धक अनेक ये दो भ ग सातों कर्मों में बनते हक्त । क्यों कि एक मात्र ब धक ही होते है, अब धक नहीं होते ।

(२) आठ भ ग- आयुष्य कर्म में ब धक-अब धक दोनों होते हक्त जिनके एकवचन और बहुवचन से वर्तमान समय की पृच्छा में आठ भ ग बनते हक्त, यथा- (१) कभी एक जीव ब धक (२) कभी एक जीव अब धक (३) अनेक जीव ब धक (४) अनेक जीव अब धक। (५) एक जीव ब धक और एक अब धक (६) एक ब धक अनेक अब धक (७) अनेक ब धक एक अब धक (८) अनेक ब धक और अनेक अब धक । ये ब धक-अब धक दो बोल पाने से आयुष्य कर्म के ब ध स ब धी आठ भ ग होते हक्त ।

(३) २६ भ ग- तीनों वेद का ब ध होता है । जिसके एकवचन- बहुवचन से वर्तमान समय की पृच्छा में २६ भ ग बनते हक्त, यथा- (१)

कभी एक जीव स्त्री वेदब धक (२) अनेक जीव स्त्रीवेद ब धक (३) कभी एक जीव पुढषवेद ब धक (४) कभी अनेक जीव पुढषवेद ब धक (५) कभी एक जीव नपु सक वेदब धक (६) कभी अनेक जीव नपु सक वेदब धक होते हक्त । ये अस योगी ६ भ ग है ।

(७-१०) एक स्त्रीब धक और एक पुढषब धक इसकी चौभ गी एकवचन बहुवचन से । (११-१४) एक स्त्रीब धक और एक नपु सक ब धक । इसकी भी एकवचन बहुवचन से चौभ गी । (१५-१८) एक पुढष ब धक और एक नपु सक ब धक । इसकी भी एकवचन-बहुवचन से चौभ गी । ये द्विस योगी तीन चौभ गी से १२ भ ग बने ।

(१९) एक स्त्रीब धक, एक पुढषब धक, एक नपु सकब धक (२०) एक स्त्रीब धक, एक पुढषब धक, अनेक नपु सक ब धक (२१) एक स्त्रीब धक, अनेक पुढषब धक, एक नपु सकब धक (२२) एक स्त्रीब धक अनेक पुढषब धक,अनेक नपु सकब धक। (२३) अनेक स्त्रीब धक, एक पुढषब धक, एक नपु सकब धक (२४) अनेक स्त्रीब धक, एक पुढषब धक, अनेक नपु सकब धक (२५) अनेक स्त्रीब धक, अनेक पुढषब धक, एक नपु सक ब धक (२६) अनेक स्त्रीब धक, अनेक पुढषब धक, अनेक नपु सकब धक । ये ८ भ ग तीन स योगी के होते हक्त । यों ६+१२+८=२६ भ ग होते हक्त ।

८० भ ग- चार कषाय होते हक्त उसके ८० भ ग बनते हक्त । क्यों कि कोई जीव क्रोध कषाय में होता है, कोई मान में, कोई माया में और कोई लोभ के उदय में होता है । ये चारों प्रकार के कषाय वाले कभी एक होते हक्त, कभी अनेक होते हक्त । इसलिये **अस योगी आठ भ ग-** चार एक जीव के और चार अनेक जीव के होते हक्त । फिर द्विस योगी के-२४, तीनस योगी के-३२ और चार स योगी के-१६ भ ग होते हक्त । यों ८+२४+३२+१६=८० भ ग । इसमें **द्विस योगी** के ६ जोडे बनते हक्त, उनकी उपर कहे अनुसार ६ चौभ गियाँ होती है-६X४=२४ भ ग । **तीनस योगी** के चार जोडे होते हक्त, उनके प्रत्येक के उपर कहे अनुसार आठ-आठ भ ग होने से ८X४=३२ भ ग होते हक्त । **चारस योगी** का एक जोडा बनता है, उसके १६ भ ग इस प्रकार होते हक्त-

(१) क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी एक (२) क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी अनेक (३) क्रोधी एक, मानी एक, मायी अनेक, लोभी एक (४) क्रोधी एक, मानी एक, मायी अनेक, लोभी अनेक (५) क्रोधी एक, मानी अनेक, मायी एक, लोभी एक (६) क्रोधी एक, मानी अनेक, मायी एक, लोभी अनेक (७) क्रोधी एक, मानी अनेक, मायी अनेक, लोभी एक (८) क्रोधी एक, मानी अनेक, मायी अनेक, लोभी अनेक । ये क्रोधी एक के आठ भ ग बने ।

इसी तरह क्रोधी अनेक के आठ भ ग, यथा- (९) क्रोधी अनेक, मानी एक, मायी एक, लोभी एक (१०) क्रोधी अनेक, मानी एक, मायी एक, लोभी अनेक (११) क्रोधी अनेक, मानी एक, मायी अनेक, लोभी एक (१२) क्रोधी अनेक, मानी एक, मायी अनेक, लोभी अनेक (१३) क्रोधी अनेक, मानी अनेक, मायी एक, लोभी एक (१४) क्रोधी अनेक, मानी अनेक, मायी एक, लोभी अनेक (१५) क्रोधी अनेक, मानी अनेक, मायी अनेक, लोभी एक (१६) क्रोधी अनेक, मानी अनेक, मायी अनेक, लोभी अनेक । ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-५ : शेष शालुक आदि एकपत्रक का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- दूसरे से आठवें उद्देशक तक में- (२) शालुक (३) पलास (४) कु भिक (५) नालिक (६) पद्म (७) कर्णिका (८) नलिनकमल का वर्णन है । इनमें प्रायः वर्णन समान है । कुछ फर्क है वह इस प्रकार है । **(१) अवगाहना**-शालुक में अनेक धनुष, पलास में अनेक कोश। शेष ६ में १००० योजन साधिक । **(२) स्थिति**- कुभिक, नालिक में अनेक वर्ष, शेष ६ में दस हजार वर्ष । **(३) लेश्या**- कुभिक, नालिक, पलास में तीन । शेष सभी में चार ।

इन आठ में कई तो विविध प्रकार के कमल ही हक्त । पलास कु भिक आदि भी ऐसी ही कोई वनस्पतियाँ होनी चाहिये । पलास से प्रसिद्ध ढा क वनस्पति अर्थ किया जाय तो १० हजार वर्ष की उम्र होना विचारणीय होता है । अर्थात् अनेक वर्ष होना चाहिये। अतः प्रास गिक विविध कमल विशेष ही समझने चाहिये । ॥ उद्देशक-२ से ८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : शिव राजर्षि किस साधना से सात द्वीप और सात समुद्र देखने लगा ?

उत्तर- हस्तिनापुर के राजा का नाम शिव था । पुत्र के योग्य होने पर उसे धर्म साधना करने की इच्छा हुई । पुत्र शिवभद्र को राज्य सोंपकर उसने तापसी दीक्षा में **दिशा प्रोक्षिक प्रव्रज्या** अ गीकार की । प्रव्रज्या के दिन से ही बेले-बेले पारणा और पारणे में एक दिशा में जाकर उस दिशा की पूजा-विधि करके उसके मालिक लोकपाल देव की आज्ञा लेकर उस दिशा में से क दमूल, फल-फूल ग्रहण करके झोंपडी में रखकर, ग गा-स्नान करके वापिस आकर लीप-पोत के वेदिका तैयार कर, हवन करता है, उस हवन की अग्नि के एक तरफ चढ में पकने के लिये खाद्य सामग्री रखता है, हवन पूरा होने पर पक्व भोजन से अतिथि दान, बलि आदि करके भोजन करता है अर्थात् बेले का पारणा करता है । इस तरह की कष्टमय तप साधना निर तर वर्षों चलते रहने से उसे विशाल विभ गज्ञान उत्पन्न हुआ। जिससे वह आत्म साक्षात्कार युक्त ज बुद्वीप आदि सात द्वीप और लवण समुद्र आदि सात समुद्रों को स्पष्ट देखने, जानने लगा । ज्ञान तो सही था पर तु मिथ्यात्व के कारण समझ भ्रमित होने से उसने यह मान लिया कि मुझे दिखता उतना ही लोक है अर्थात् ७ सात द्वीप और ७ समुद्रों पर्यंत ही यह लोक है, उसके बाद लोक का अ त आ जाता है । इस प्रकार की तप साधना से उसे विशाल ज्ञान तो हुआ कि तु विभ गज्ञान के कारण समझ-मान्यता में विरोध होने से उसने उतना ही लोक मानना और प्रचार करना प्रार भ कर दिया ।

प्रश्न-७ : उसकी साधना और तप का इतना विशाल प्रतिफल हुआ तो फिर क्या उसी साधना से उसकी मुक्ति हुई थी ?

उत्तर- उसके द्वारा हस्तिनापुर में अपने ज्ञान का प्रचार किये जाने पर लोगों में वह बात बहुचर्चित बनी । एकदा प्रभू महावीर वहाँ पधारे । गौतम स्वामी अपने बेले के पारणे में गोचरी गये । लोगों से यह सात-द्वीप समुद्र जानने की शिवराजर्षि की वार्ता सुनी । गोचरी से लौटने पर भगवान से गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि इतना बडा

ज्ञान शिवराजर्षि को हुआ, क्या यह सत्य है। भगवान ने कहा- ज्ञान होने की बात सत्य है कि तु उसकी यह प्ररूपणा मिथ्या है कि इतना ही सातद्वीप-समुद्र पर्यंत ही लोक है, आगे कुछ नहीं है। वास्तव में तो लोक में अस ख्य द्वीप-समुद्र हक्त । गौतम और भगवान की वार्ता अनेक लोगों ने सुनी, जो कि वहाँ पर उपस्थित थे । जिससे नगर में दोनों प्रकार की चर्चाएँ चली कि शिवराजर्षि ऐसा कहते हक्त, भगवान महावीर ऐसा कहते हक्त ।

शिवराजर्षि ने भी जनसमुदाय के माध्यम से यह चर्चा सुनी। वह श कित, का क्षित हुआ । मानसिक उलझन के कारण विभ गज्ञान नष्ट हो गया । सरल परिणामी पुण्यवान शिवराजर्षि ने सही विचार किया। भगवान की सेवा में पहुँचा । भगवान के द्वारा ख दक स न्यासी के साथ हुआ जैसा ही सारा व्यवहार हुआ । शिवराजर्षि भी प्रभु का उपदेश सुनकर विरक्त हुआ, निर्गंथ दीक्षा अ गीकार की, ११ अ गों का अध्ययन किया एव तप-स यम से आत्मा को भावित किया । अ त में स लेखना-स थारा द्वारा सर्व कर्म क्षय कर मुक्त हुआ । इस तरह विभ गज्ञान के निमित्त से भगवान के दर्शन सेवा का स योग पाकर निर्ग्रंथ प्रव्रज्या से उसने मुक्ति प्राप्त करी । ॥ उद्देशक-९ स पूर्ण ॥

प्रश्न-८ : लोक-अलोक का क्या स्वरूप है और उसके मुख्य विभाग कौन से है ?

उत्तर- अन तान त आकाश रूप अलोक है । जिसके मध्य में लोक है । वह लोक नीचे से उपर १४ राजु प्रमाण है । नीचे चारों दिशाओं में अर्थात् पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण सात राजु प्रमाण चौडा एव गोलाकार है । इसी तरह मध्य में एक राजु प्रमाण चौडा और गोलाकार है जो समभूमि रूप तिरछा लोक है । उपर पाँचवाँ देवलोक पाँच राजु प्रमाण ल बा-चौडा गोलाकार है। सिद्धशिला से उपर लोक का चरमा त भाग है जो एक राजु प्रमाण ल बा-चौडा-गोल है ।

सातवीं नरक के नीचे लोक चरमा त सात राजु विस्तार का है वह क्रमशः कम होते हुए प्रथम नरक की उपरी सतह तक नीचे से सात राजु आने पर १ राजु हो जाता है । प्रथम नरक पृथ्वी की उपरी

सतह ही हमारी समभूमि रूप तिरछा लोक है । यहाँ से फिर उपर की तरफ लोक की ल बाई-चौडाई क्रमशः बढती है जो एक राजु से बढती-बढती पाँचवें देवलोक तक अर्थात् समभूमि से ३॥ राजु उपर जाने पर पाँच राजु की हो जाती है । वहाँ से उपर की तरफ आगे पुनः अर्थात् पाँचवें देवलोक से आगे ३॥ राजु उपर जाने तक एक राजु का विस्तार होता है ।

इस तरह नीचे से उपर चौदह राजु प्रमाण लोक, नीचे प्रार भ में सात राजु विस्तार वाला, समभूमि पर एक राजु, फिर पाँचवें देवलोक में पाँच राजु एव उपरी चरमा त में एक राजु विस्तार वाला है ।

इस प्रकार स पूर्ण लोक का आकार उपर-उपर रखे गये तीन सिकोरे जैसा है जिसमें पहला सिकोरा उल्टा, दूसरा सिकोरा सीधा और उस पर तीसरा सिकोरा पुनः उल्टा रखने पर यह लोक आकार बनता है । विशेष यह है कि उपर के दो सिकोरों की ऊँचाई समान हो और नीचे के सिकोरे की ऊँचाई उससे दुगुनी हो तो वह लोक के यथार्थ आकार जैसा बनता है । लोक के मुख्य तीन विभाग इस प्रकार है-

(१) अधोलोक- १४ राजु प्रमाण लोक का नीचे का सात राजु का क्षेत्र अधोलोक है । इसके मुख्य सात प्रति विभाग हक्त वह सात नरक रूप है। जिसमें सातवीं नरक नीचे है फिर उपर-उपर छट्ठी, पाँचवीं आदि है सबसे उपर प्रथम नरक पृथ्वी है ।

विशेष में- नीचे लोका त से सर्व प्रथम अस ख्य योजन प्रमाण आकाश मात्र है । उसके बाद उसके उपर अस ख्य योजन तनुवात है, फिर उसके उपर अस ख्य योजन घनवात है, उसके उपर वीस हजार योजन घनोदधि है और उसके उपर फिर सातवीं नरक पृथ्वीपिंड है । नीचे से यहाँ तक एक राजु ऊँचाई होती है और ल बाई-चौडाई सात से घटते हुए साधिक छ राजु रह जाती है ।

सातवीं नरक के पृथ्वी पिंड के उपर पुनः अस ख्य योजन प्रमाण आकाश, फिर अस ख्य योजन उपर तक तनुवाय, फिर अस ख्य योजन घनवाय है । उसके उपर वीस हजार योजन की घनोदधि है और

उसके ऊपर छठवीं नरक पृथ्वी स्थित है । नीचे से यहाँ तक कुल दो राजू ऊँचाई होती है । इसी क्रम से पाँचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी, पहली नरक पृथ्वी एक ऊपर-ऊपर क्रमशः आकाश, तनुवात, घनवात, घनोदधि और फिर पृथ्वी समझना चाहिए । इस प्रकार यह अधोलोक जिसमें सात नरक पृथ्वी [illegible] प्रमाण वाला एवं सात राजू ऊँचाई वाला है ।

	नीचे	चौड़ाई
(१) प्रथम नरक पृथ्वी	समभूमि	१ राजू
(२) दूसरी नरक पृथ्वी	१ राजू	१.८॥ राजू
(३) तीसरी नरक पृथ्वी	२ राजू	२.७ राजू
(४) चौथी नरक पृथ्वी	३ राजू	३.५॥ राजू
(५) पाँचवीं नरक पृथ्वी	४ राजू	४.४ राजू
(६) छठवीं नरक पृथ्वी	५ राजू	५.२॥ राजू
(७) सातवीं नरक पृथ्वी	६ राजू	६.१ राजू
(८) लोकान्त	७ राजू	७ राजू

नीचे से लोकान्त-

सातवीं नरक का पृथ्वीतल   १ राजू
छठवीं नरक का पृथ्वीतल   २ राजू
पाँचवीं नरक का पृथ्वीतल   ३ राजू
चौथी नरक का पृथ्वीतल   ४ राजू
तीसरी नरक का पृथ्वीतल   ५ राजू
दूसरी नरक का पृथ्वीतल   ६ राजू
पहली नरक का पृथ्वीतल   ७ राजू

(२) मध्य लोक- १४ राजू प्रमाण लोक के मध्य में होने से इसे मध्यलोक भी कहा जाता है अर्थात् यहाँ से लोक ७ राजू नीचे तक और ७ राजू ऊपर है । यह मध्य लोक एक राजू प्रमाण का अर्थात् एक राजू प्रमाण ही लम्बा-चौड़ा और गोलाकार है । इसके मध्य में जम्बू द्वीप है

और जम्बूद्वीप के मध्य में मेरु पर्वत है । मेरु पर्वत के मध्य केन्द्रबिन्दु से चारों दिशा में मध्य लोक आधा-आधा राजू प्रमाण है । असंख्य- समुद्रों की दो दिशाओं का योग एक राजू प्रमाण चौड़ा होता है । जम्बूद्वीप थाली के आकार का गोल एक लाख योजन विस्तार वाला है । उसके [illegible] चूड़ी के आकार का लवण समुद्र है यह दो लाख का विस्तार वाला है । उसके बाद एक द्वीप, एक समुद्र पुनः असंख्य द्वीप, असंख्य समुद्र सभी चूड़ी के आकार वाले हैं । पहले वाले से आगे वाले द्वीप या समुद्र दुगुने-दुगुने विस्तार वाले हैं । अन्त में स्वयंभूरमण समुद्र जो (१/४) राजू विस्तार वाला चूड़ी आकार का है । इस प्रकार मध्य लोक के एक राजू विस्तार में आधा राजू क्षेत्र अकेले स्वयंभू-रमण समुद्र ने घेर कर रखा है क्योंकि आधा राजू में समस्त असंख्य द्वीप समुद्र हैं ।

यह मध्य लोक मोटाई (ऊँचाई) की अपेक्षा ऊपर-नीचे १८०० योजन का है समभूमि से ९०० योजन नीचे तक और समभूमि से ९०० योजन ऊपर तक का क्षेत्र मध्यलोक का माना जाता है । इस मध्य-लोक के नीचे के ९०० योजन में [illegible] देवों के [illegible] नगर हैं और ऊपर के ९०० योजन में ज्योतिषी देवों के [illegible] विमान हैं । नीचे के ९०० योजन के बाद अधोलोक का प्रारम्भ होता है और ऊपर के ९०० योजन के बाद ऊर्ध्वलोक का प्रारम्भ होता है । [illegible] ऊपर ११० योजन क्षेत्र में है । [illegible] ८०० योजन क्षेत्र में है । [illegible] है ।

(३) ऊर्ध्वलोक- समभूमि से ९०० योजन ऊपर जाने के बाद से ऊर्ध्वलोक शुरू होकर १४ राजू प्रमाण लोक की ऊपरी सीमा तक ऊर्ध्वलोक है । करीब डेढ़ राजू ऊपर जाने पर देवलोक का प्रारम्भ होता है । सर्वप्रथम सौधर्म-ईशान देवलोक है । दोनों देवलोक का [illegible] एक ही है और वह पूर्ण चन्द्राकार है, गोल है । दोनों देवलोकों का सम्मिलित क्षेत्र अर्द्धचन्द्राकार होता है । दक्षिणार्ध भाग में प्रथम देवलोक है और उत्तर भाग में ईशान देवलोक है । इसी प्रकार [illegible]

से कुछ(अस ख्य योजन) उपर जाने पर अर्थात् समभूमि से ढाई राजु उपर जाने पर तीसरा-चौथा देवलोक है जो पहले दूसरे देवलोक के समान ही एक ही पृथ्वीपि ड पर अर्ध चन्द्राकार विभाजन वाले हक्त । उसके बाद क्रमशः अस ख्य-अस ख्य योजन उपर-उपर जाने पर पाँचवाँ, छट्ठा, सातवाँ और आठवाँ देवलोक क्रमशः पूर्ण च द्राकार एक दूसरे की सीध में उपर है । उसके बाद कुछ(अस ख्य योजन)उपर नौवाँ-दसवाँ देवलोक एक सतह पर दोनों अर्ध च द्राकार है । फिर कुछ(अस ख्य योजन) उपर जाने पर ११वाँ १२ वाँ देवलोक भी एक सतह पर दोनों अर्ध च द्राकार क्षेत्र वाले हक्त ।

उसके उपर कुछ(अस ख्य योजन) दूर जाने पर पहली दूसरी तीसरी ग्रैवेयक भूमि एक दूसरे के उपर-उपर क्रमशः नजीक-नजीक पूर्ण च द्राकार स्वत त्र है । यह प्रथम ग्रैवेयक त्रिक है । उससे कुछ दूर (अस ख्य योजन) उपर जाने पर द्वितीय ग्रैवेयक त्रिक इसी प्रकार है जो चौथी पाँचवीं छट्ठी ग्रैवेयक भूमि रूप है और आपस में नजीक-नजीक कम-कम ऊँचाई पर है । इसी प्रकार कुछ दूर(अस ख्य योजन) उपर जाने पर तीसरी ग्रैवेयक त्रिक है जो सातवीं आठवीं नौवीं ग्रैवेयक भूमि रूप एक दूसरी से उपर उपर एव नजीक नजीक है । इस तरह तीन त्रिक में नव ग्रैवेयक की नव पृथ्विया प्रत्येक पूर्ण चन्द्राकार है ।

उसके बाद उपर (अस ख्य योजन) जाने पर अणुत्तर विमान की भूमि आती है, वह भी पूर्ण चन्द्राकार है । उस एक ही भूमि सतह पर चारों दिशाओं में चार अनुत्तर विमान हक्त और बीच में एक सर्वार्थ सिद्ध नामक पाँचवाँ अनुत्तर विमान है । प्रथम देवलोक से लेकर अनुत्तर विमान तक सर्वत्र वैमानिक देवों का निवास है । अनुत्तर विमान से उपर १२ योजन दूरी पर सिद्धशिला है जो आठ योजन मध्य में जाडी है और चारों किनारे माखी की पाँख से भी पतली है । यह सिद्धशिला ४५ लाख योजन ल बी-चौडी गोलाकार है । इसकी उपरी सतह सीधी सपाट ४५ लाख योजन विस्तार वाली है । इसका नीचे का भाग बीच में आठ योजन तक चौतरफ आठ योजन जाडा है फिर क्रमशः घटते हुए ४५ लाख के अ तिम किनारे सर्वत्र माखी की पाँख के

ल्ल

समान पतले हक्त । इस सिद्धशिला से एक योजन उपर लोका त है अर्थात् १४ राजु लोक का किनारा है । वही ऊर्ध्वलोक का भी किनारा है । इस प्रकार यह स पूर्ण ऊर्ध्वलोक भी करीब सात राजु प्रमाण ऊँचाई वाला है ।

देवलोक	समभूमि से ऊँचाई	देवलोक की चौडाई
पहला-दूसरा	१॥ राजु	२॥ राजु
तीसरा-चौथा	२॥ राजु	३ल्ल राजु
पाँचवा	३॥ राजु	५ राजु
छट्ठा	३ राजु	४॥ राजु
सातवाँ	४ राजु	४ राजु
आठवाँ	४। राजु	३॥ राजु
नौवाँ-दसवाँ	४ राजु	३ राजु
ग्यारहवाँ-बारहवाँ	५। राजु	२। राजु
नव ग्रैवेयक	६ राजु	१ राजु
पाँच अनुत्तर विमान	७ राजु(देशोन)	१ राजु(साधिक)

अलोक– लोक के चौतरफ अन त क्षेत्रमय अलोक है उसमें पृथ्वीपि ड आदि या जीव-पुद्गल आदि कुछ भी नहीं है मात्र आकाशमय अलोक क्षेत्र है ।

प्रश्न-९ : लोक में जीव आदि किस प्रकार है ?

उत्तर- स पूर्ण लोक के प्रत्येक आकाश प्रदेश पर पाँचों स्थावर के सूक्ष्म जीव सर्वत्र भरे हक्त अर्थात् लोक का कोई भी आकाशप्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ पर सूक्ष्म पाँचों स्थावर के जीव न हो । इसके सिवाय लोक में जहाँ मात्र आकाश है(पोलार है), पृथ्वी-पानी नहीं है, वहाँ भी सर्वत्र **बादर वायुकाय** के जीव लोका त तक होते ही हक्त ।

तीन विकलेन्द्रिय जीव तिरछे लोक के द्वीप समुद्रों की सीमा में होते हक्त अर्थात् समुद्रों में हजार योजन नीचे तक और द्वीपों में अनेक पर्वतों पर सर्वत्र तथा समभूमि पर एव नीचे ९०० योजन तक

की भूमि में विकलेन्द्रिय(बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय) जीव होते हक्त । इसके सिवाय नीचे लोक में या ऊँचे लोक में विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हक्त । ज बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह की दो विजय सलिलावती और वप्रा नीचा लोक में आई हुई है उसकी सीमा में नीचा लोक में भी विकलेन्द्रिय जीव हो सकते हक्त ।

प चेन्द्रिय जीवों में नारकी सातों नरक में होते हक्त । चारों जाति के देवता अपने-अपने निवास स्थानों में और क्वचित् तिरछा लोक में(अपनी मालिकी के स्थानों में) होते हक्त । मनुष्य तिरछे लोक के कर्मभूमि आदि मनुष्य क्षेत्रों में और ढाई द्वीप में होते हक्त । तिर्यंच प चेन्द्रिय भी विकलेन्द्रिय के समान ही सर्वत्र होते हक्त ।

भवनपति देव मुख्यत: प्रथम नरक पृथ्वीपि ड के १० आँतरों में अपने भवनों में होते हक्त । क्वचित् तिरछालोक में भी अपनी मालिकी के स्थलों में होते हक्त । व्य तर देव समभूमि से १०० योजन नीचे जाने के बाद के आठ सो योजन के क्षेत्र में अर्थात् समभूमि से ९०० योजन नीचे तक के क्षेत्र में अपने नगरों में होते हक्त । क्वचित तिरछा लोक के द्वीपसमुद्रो में भी अपनी मालिकी के स्थानों में होते हक्त । ज्योतिषी देव- सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा; ये सभी तिरछालोक में ही होतेक्त । वैमानिक देव ऊर्ध्व लोक में अपने-अपने देवलोकों में होते हक्त ।

अजीव द्रव्य में तीन अस्तिकाय- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश स पूर्ण लोक में व्याप्त एक द्रव्य है । काल द्रव्य ढाईद्वीप में प्रवर्तन एव ज्ञान रूप है । पुद्गल द्रव्य के परमाणु से लेकर अन त प्रदेशी स्क ध तक सभी लोकाकाश प्रदेशों पर होते हक्त ।

इस प्रकार लोक में और लोक विभाग रूप तीनों लोक में अन त जीव द्रव्य, अन त अजीव द्रव्य तथा अन त जीवाजीव द्रव्य रहे हुए हक्त । अलोक में ऐसा कुछ नहीं है, मात्र आकाश द्रव्य का देश है । अलोक का आकार झुसिर गोलक जैसा है अर्थात् अलोक के बीच लोक रूप खड्डा है यहाँ अलोक नहीं हक्त । लोक का आकार कमर पर हाथ रख कर गोलाकार घूमती हुई नर्तकी के आकार का तथा तीन सरावले(सिकोरे)उपर-उपर रखे हो वैसा है, जो उपर बताया गया है ।

प्रश्न-१० : लोक-अलोक का विस्तार असत् कल्पना से किस प्रकार समझा जा सकता है ?

उत्तर- लोक विस्तार- इसके लिये असत् कल्पना से इस प्रकार समझाया गया है- चार दिशाकुमारी देवियाँ ज बूद्वीप की जगती पर चारों दिशाओं में खडी होकर बलिपिंड को भूमि पर फेंके । उस समय मेढपर्वत के शिखर पर खडे ६ देवों में से प्रत्येक देव उन चारों बलिपिंडों को भूमि पर गिरने से पहले ग्रहण कर सके, इतनी तीव्र गति वाले हो ऐसे वे देव मेढ से छहों दिशाओं में चलना प्रार भ करे । उसके बाद एक व्यक्ति की १००-१०० वर्ष की सात पीढी खतम हो जाय तब तक वे चले तो भी लोक का अ त नहीं आता है । फिर भी ज्यादा क्षेत्र पार किया है कम क्षेत्र रहा है । गये हुए से नहीं गया क्षेत्र अस ख्यातवाँ भाग है, नहीं गये से गया क्षेत्र अस ख्यगुणा है । इस उपमा से लोक का विस्तार अस ख्य योजन समझना ।

अलोक विस्तार- उपर के दृष्टा त के समान ही इसे भी समझना। विशेष यह है इसमें आठ देवियाँ आठ दिशा से बलिपि ड फेंके । उसे ग्रहण कर सके वैसे १० देव दस दिशा में चलने का कहा गया है। इसमें गये क्षेत्र से नहीं गया क्षेत्र अन तगुणा बाकी रहता है ।

प्रश्न-११ : लोक में एक आकाशप्रदेश पर एकेन्द्रिय प चेन्द्रिय एव अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश रहते हक्त तो क्या वे उलझते नहीं है ?

उत्तर- एक नृत्य करने वाली स्त्री को एक साथ दस हजार व्यक्ति देख रहे हो तो उन सब की दृष्टिया आपस में उलझती नहीं है और नर्तकी को कोई बाधा पीडा भी नहीं होती है । तो ठीक इसी तरह ए क आकाश प्रदेश पर अन त जीव और अन त अजीव के प्रदेश होते हक्त, तो भी वे परस्पर उलझते नहीं है और किसी को बाधा पीडा भी नहीं उपजाते ।

एक आकाश प्रदेश पर कभी जघन्य जीवों के प्रदेश हो सकते हक्त और कभी उत्कृष्ट जीव प्रदेश भी हो सकते हक्त । जघन्य जीव प्रदेशों से सर्व जीव अस ख्य गुणे होते हक्त । उत्कृष्ट जीव प्रदेश हो तो

उनसे सर्व जीव विशेषाधिक होते हक्त । ॥ उद्देशक-१० स पूर्ण ॥

प्रश्न-१२ : भगवान महावीर ने सुदर्शन श्रावक को उसका पूर्व भव वृत्ता त किस लिये कहा था ?

उत्तर- यहाँ ग्यारहवें उद्देशक में वाणिज्यग्राम नामक नगर के सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमणोपासक(आदर्श श्रावक) का वृत्ता त है- एक बार भगवान का वाणिज्यग्राम में पधारना हुआ। सुदर्शन श्रमणोपासक अनेक साथियों के समूह के साथ पैदल चलकर भगवान के दर्शनार्थ गया । व दन पर्युपासना एव प्रवचन श्रवण के पश्चात् काल स ब धी प्रश्नोत्तर किये । अ त में यह पूछा कि उपमाकाल में कहे गये पल्योपम सागरोपम की उम्र-आयुस्थिति कैसे पूर्ण होती है, उसका अ त कैसे होता है ? इस श का के समाधान में भगवान ने उसके पूर्व भव का विस्तृत कथन करके समझाया कि तुम पाँचवें देवलोक में १० सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके यहाँ मनुष्य भव में आये हो । इस प्रकार अन्य जीवों की भी पल्योपम सागरोपम की उम्र समाप्त होती है ।

प्रश्न-१३ : काल स ब धी सुदर्शन श्रमणोपासक का प्रश्न एव भगवान का उत्तर क्या था ?

उत्तर- हे भगवन् ! काल के कितने प्रकार है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने उसे चार प्रकार के काल का स्वरूप दर्शाया, वह इस प्रकार है- (१) प्रमाणकाल (२) यथायुष्य निर्वृत्तिकाल (३) मरणकाल (४) अद्धाकाल ।

प्रमाणकाल- १२ मुहूर्त से लेकर १८ मुहूर्त की रात्रि होती है, इतना ही दिन होता है । चार मुहूर्त की पोरिषी से लेकर साडे पाँच मुहूर्त की पोरिषी होती है । बडा दिन और बडी पोरिषी आषाढ में होती है । छोटा दिन और छोटी पोरिषी पोष महीने में होती है । १/१२२ मुहूर्त प्रमाण पोरिषी क्रमशः घटती-बढती है । आसोज और चैत्र में दिन रात १५-१५ मुहूर्त के समान ही होते हक्त, उस समय पोने चार मुहूर्त की पोरिषी होती है । यह सर्व प्रमाण काल है ।

यथायुष्क-निवृत्तिकाल- चारों गति में जो उम्र मिली है उस काल का व्यतीत होना यथायुष्क निवृत्तिकाल है ।

मरणकाल- आयुष्य पूर्ण होने पर जो शरीर और जीव के अलग होने रूप मृत्यु होती है वह मरण काल है ।

अद्धाकाल- समय से लेकर आवलिका, मुहूर्त यावत् सागरोपम रूप जो काल विभाजन है वह अद्धाकाल है । पल्योपम-सागरोपम से आयुष्य का, स्थितियों का माप होता है ।

प्रश्न-१४ : सुदर्शन के पूर्वभव वर्णन में यहाँ महाबल चरित्र किस प्रकार वर्णित हक्त ?

उत्तर- सुदर्शन का पूर्वभव-महाबल चारित्र- हस्तिनापुर नगर में 'बल' नामक राजा राज्य करता था। एक बार उसकी राणी प्रभावती ने सि ह प्रवेश का स्वप्न देखा । जिसके फल स्वरूप यथासमय उसने एक पुण्यशाली बालक को जन्म दिया। राजा ने पुत्र का जन्म महोत्सव मनाया। तीसरे दिन बालक को सूर्य दर्शन कराया । छट्ठे दिन जागरण एव ग्यारहवें दिन अशुचि निवृत्ति करण किया गया । बारहवें दिन उत्सव भोजन के साथ बालक का नामकरण किया गया । महाबल कुमार नाम रखा गया ।

सुखपूर्वक उसका बाल्यकाल व्यतीत हुआ । साधिक आठ वर्ष का होने पर उसे कलाचार्य के पास अध्ययनार्थ भेजा गया । यौवन अवस्था में आठ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण कराया गया । पिता ने विविध प्रकार की सामग्री ८-८ की स ख्या में उसे प्रीतिदान रूप में दी । इस प्रकार वह महाबल कुमार मानुषिक सुख भोगते हुए काल व्यतीत करने लगा ।

एक समय विमलनाथ अरिह त के प्रपौत्र शिष्य धर्मघोष अणगार हस्तिनापुर नगर के बाहर उद्यान में पधारे । जमालीकुमार के समान स पूर्ण वर्णन यहाँ जानना। यथा- धर्मश्रवण, आज्ञाप्राप्ति स वाद, एव दीक्षा ग्रहण । चौदह पूर्वों का अध्ययन किया । विविध तप अनुष्ठान करते हुए १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन किया । एक महीने के स थारे से आयु पूर्ण कर महाबल मुनि का जीव पाँचवें देवलोक में दस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुआ । वहाँ दस सागरोपम की उम्र पूर्ण कर हे सुदर्शन ! तूँने यहाँ वाणिज्य ग्राम में जन्म लिया

यावत् स्थविर भगव तो के पास धर्म का बोध प्राप्त कर श्रमणोपासक बना है ।

इस प्रकार अन्य जीवों के भी पल्योपम-सागरोपम की उम्र समाप्त होती है । भगवान से प्रश्न के समाधान में अपने ही पूर्वभव का घटनाचक्र सुनकर चि तन मनन करते हुए उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । उसकी श्रद्धा वैराग्य स वेग दुगुणा वृद्धि गत हुआ, आन दाश्रुओं से उसके नेत्र भर गये और वहाँ पर ही उसने स यम स्वीकार किया । सुदर्शन श्रमणोपासक से सुदर्शन श्रमण बन गया। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया बारह वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन कर स पूर्ण कर्मों का क्षय किया एव सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गया । सुदर्शन के पूर्व भव का और इस भव का ज्ञान तथा दीक्षापर्याय एक समान था अर्थात् दोनों भव में १४ पूर्व का ज्ञान एव १२ वर्ष की दीक्षापर्याय थी ।

इस प्रकरण में राणी के महल का, शय्या का, सि ह स्वप्न का, राजा के पास जाकर कहने का, रात्रि व्यतीत करने का, स्वप्न पाठकों का, पुत्र जन्म महोत्सव का, खुशखबर देने वाली दासियों के सन्मान का, क्रमशः वय वृद्धि का, प्रीतिदान की पचासों प्रकार की वस्तुओं का, विस्तृत वर्णन मूलपाठ में दर्शाया गया है । जिज्ञासु पाठक प्रस्तुत मूल सूत्र का अध्ययन करें । दीक्षा आदि का विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं किया है, उसके लिये जमाली के प्रकरण का निर्देश कर दिया गया है, जहाँ कि विस्तार से वर्णन है । ॥ उद्देशक-११ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१५ : यहाँ ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक का जीवन वृत्तांत किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक-१२ में ऋषिभद्र पुत्र का वर्णन इस प्रकार है-

ऋषिभद्र पुत्र- आलभिका नामक नगरी में ऋषिभद्र प्रमुख अनेक श्रमणोपासक थे । एक बार कहीं कुछ श्रावक इकट्ठे हुए वार्तालाप कर रहे थे । प्रस गोपात वहाँ देव की उम्र स ब धी वार्ता चली । तब ऋषिभद्र श्रावक ने बताया कि जघन्य दस हजार वर्ष से समयाधिक वृद्धि होते हुए उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तक की उम्र देवों की होती है । कईयों को इस पर श्रद्धा नहीं हुई । कुछ समय बाद विचरण करते हुए

श्रमण भगवान महावीर स्वामी आलभिका नगरी पधारे। उक्त श्रमणोपासक एव अन्य नगरी के लोग भगवान की सेवा में पहुँचे । उपदेश सुनकर पर्षदा विसर्जित हो गई । व दन नमस्कार कर उन श्रमणोपासकों ने देव की स्थिति का प्रश्न पूर्व हकीकत के साथ रखा । भगवान ने समाधान किया कि ऋषिभद्र पुत्र का कथन सत्य है । हे आर्यो! मक्त भी ऐसा ही कथन करता हूँ । तब उन श्रमणोपासकों ने श्रद्धा की एव ऋषिभद्र के समीप जाकर व दन नमस्कार करके(प्रणाम अभिवादन करके)अपनी भूल की विनयपूर्वक क्षमायाचना की । किसी की सत्य बात को स्वीकार नहीं करना, अश्रद्धा करना या उसे गलत कहना, यह एक प्रकार की आशातना ही कही जाती है । इसीलिये गौतम स्वामी भी आन द श्रावक के पास गये थे और क्षमायाचना की थी । यहाँ भी ऐसा व्यवहार श्रमणोपासकों का परस्पर वर्णित है । फिर उन श्रावकों ने अपनी अन्य जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया एव प्रभू को व दन नमस्कार करके चले गये ।

श्रावकों के जाने के बाद गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने फरमाया कि ऋषिभद्र पुत्र दीक्षा ग्रहण नहीं करेगा किन्तु अनेक वर्ष श्रावक पर्याय का पालन कर एक महिने के स थारे से काल करके पहले देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ अरूणाभ विमान में चार पल्योपम की उम्र पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त करेगा ।

प्रश्न-१६ : पुद्गल परिव्राजक के विभ गज्ञान की उत्पत्ति एव अ त में मुक्ति प्राप्त करने का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- उद्देशक-१२ में ही ऋषिभद्र पुत्र वर्णन के बाद ही पुद्गल परिव्राजक का वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है- आलभिका नगरी के 'स खवन उद्यान' के समीप में 'पुदग्ल परिव्राजक' रहता था । चारों वेद का सा गोपांग ज्ञाता था एव ब्राह्मण मत के सिद्धा तों में पार गत था । वह बेले-बेले पारणा करते हुए आतापना लेता था । प्रकृतिभद्र, विनीत एव समभावों में परिणति करते हुए उसे विभ ग नामक अज्ञान उत्पन्न हुआ । जिससे वह पाँचवें देवलोक तक देवों को एव उनकी उम्र को देखने लगा । जिससे वह मानने लगा कि

इतना ही लोक है, उसके बाद देव भी नहीं है और देवों की उम्र भी नहीं है अर्थात् उत्कृष्ट दस सागरोपम की उम्र के देव हो सकते हक्त । उसके बाद कोई स्थिति नहीं होती है ।

शिव राजर्षि की तरह पुद्‌गल परिव्राजक ने भी नगर में अपने ज्ञान का एव म तव्य का प्रचार किया । लोगों में चर्चा का विषय बना । स योगवश भगवान का वहाँ आभलिका नगरी में पदार्पण हुआ । गौतम स्वामी ने गोचरी में वह चर्चा-वार्ता सुनी, भगवान से निवेदन किया । भगवान ने उपस्थित पर्षदा में स्पष्टीकरण किया । भगवान के वाक्य भी नगरी में प्रचारिच हुए कि **अणुत्तर विमान तक देव है, देवलोक है, उम्र भी देवों में ३३ सागर तक है,** इत्यादि ।

लोगों से यह वार्ता पुद्‌गल परिव्राजक तक भी पहुँची । जिससे वह श कित, का क्षित होकर चि तन में उलझ गया, उसका भी विभ ग अज्ञान गिर गया । शिवराजर्षि की तरह वह भी भगवान की पर्युपासना करने गया, उपदेश सुना, स यम ग्रहण किया, उसी भव में सर्व कर्म क्षय कर सिद्ध गति को प्राप्त किया । देवलोकों में रूपी द्रव्य एव वर्णादि बोल होते हक्त, इस कारण विभ ग ज्ञान का विषय हो जाता है ।

विशेष- बेले बेले पारणा करने और आतापना लेने से विविध लब्धियाँ उत्पन्न होती है । विभ गज्ञान भी परोक्ष ज्ञान होने से इसका भी लब्धियों में समावेश होता है । वानप्रस्थ आश्रम के तापस क दमूल आदि को स्वय पकाकर खाते हक्त और स न्यासाश्रम के परिव्राजक भिक्षा से आजीविका करते हक्त । शिवराजर्षि ने तापसी दीक्षा धारण की थी और पुद्‌गल परिव्राजक ने स न्यासी दीक्षा ग्रहण की थी ।

शतक-१२ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस शतक में १० उद्देशकों के विभाजन से अनेकानेक विषयों का समावेश किया गया है तथापि तीसरे उद्देशक में नरक पृथ्वियों का वर्णन स क्षिप्त-अतिदेशात्मक है । शतक के प्रार भ में प्राप्त एक गाथा द्वारा उद्देशकों के नाम एव विषय दर्शाये गये है, जो इस प्रकार है-

(१) श ख- इस उद्देशक में श ख-पुष्कली आदि श्रमणोपासकों का वर्णन, कषाय फल तथा तीन जागरणा का निरूपण है ।

(२) जय ती- इस उद्देशक में जय ती श्रमणोपासिका का परिचय, भगवान से हुए १५ प्रश्नोत्तर तथा उसकी दीक्षा एव मुक्ति का वर्णन है ।

(३) पुढवी- नरक पृथ्वियों का अतिदेशात्मक स क्षिप्त वर्णन है ।

(४) पुद्‌गल- परमाणु से लेकर अन तप्रदेशी तक के पुद्‌गलों के जुडने से और भेद होने से बनने वाले विकल्प-भ गों का तथा सात पुद्‌गल परावर्तनों का वर्णन है ।

(५) अतिपात- प्राणातिपात आदि पापों का और उनसे विरति का, रूपी-अरूपी पदार्थों का वर्णन है ।

(६) राहु- इस उद्देशक में राहु ग्रह विमानों स ब धी वर्णन है तथा सूर्य चन्द्र के आदित्य-शशि नाम की सार्थकता दर्शाई है ।

(७) लोक- लोक में जीवों के अन त जन्म-मरण को बकरियों से भरे वाडे के दृष्टा त के साथ समझाया है ।

(८) नाग- महर्द्धिक देव की नाग, मणि, वृक्ष में उत्पत्ति तथा पशु पक्षियों की नरक में उत्पत्ति का वर्णन है ।

(९) देव- भवी द्रव्य देव आदि पाँच देवों का विस्तृत वर्णन है ।

(१०) आत्मा- आठ आत्माओं का विस्तृत वर्णन तथा परमाणु से अन तप्रदेशी तक के सकलादेश-विकलादेश का वर्णन है ।

प्रश्न-२ : श ख आदि श्रमणोपासकों के पौषध स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– श्रावस्ती नगरी में श ख प्रमुख अनेक श्रावक रहते थे । जो जीवाजीव आदि तत्त्वों के जाणकार थे इत्यादि श्रावक के आगम वर्णित गुणों से स पन्न, १२ व्रतधारी, महीने में ६ प्रतिपूर्ण पौषध करने वाले थे । एक बार भगवान महावीर स्वामी उस नगरी में पधारे । श ख आदि श्रावक मिलकर पैदल ही भगवान की सेवा में पहुँचे । उपदेश सुना । घर लौटते समय श ख श्रावक ने प्रस्ताव रखा कि आज हम खाते-पीते सामुहिक पक्खी पौषध करें । तब पुष्कली आदि अन्य श्रावकों ने उनका कथन स्वीकार किया । सभी अपने अपने घर की दिशाओं में चले । स्थान एव भोजन तैयार करवाने की जिम्मेदारी का निर्णय भी हुआ ही होगा । इसका कथन मूलपाठ में नहीं है । घर जाते समय श ख श्रावक के विचार बदल गये । उन्होंने उत्पला भार्या से पूछकर उपवास युक्त पौषध स्वय की पौषधशाला में किया, जो उनके घर से स लग्न थी ।

अन्य श्रावकों ने एक स्थान पर (स भवत: पुष्कली की पौषध शाला में) एकत्रित होकर पौषध व्रत धारण किया। भोजन का समय होने तक श ख श्रावक के नहीं आने पर पुष्कली श्रावक पौषध में यतना पूर्वक बुलाने गये । श खजी के घर पहुँचने पर उत्पला श्राविका के बताने से वे पौषधशाला में गये। ईर्यावहि का प्रतिक्रमण करके विनय सहित श खजी से चलने का निवेदन किया । श खजी ने स्पष्टता करी की मैंने उपवास युक्त पौषध कर लिया है अत: आप लोग भले ही खाता-पीता पक्खी पौषध का परिपालन करो । पुष्कलीजी वहाँ से निकलकर अपने स्थान में आये, अन्य श्रावकों को बताया कि श खजी नहीं आयेंगे क्यों कि उन्होंने उपवास युक्त पौषध कर लिया है । तब सभी ने आहार करके दिन रात पौषध से आत्मा को भावित किया । दूसरे दिन पुष्कली आदि सभी श्रावक स्नानादि आवश्यक क्रिया से निवृत्त होकर एक जगह इकट्ठे होकर भगवान के दर्शन करने गये । श खजी पौषध का पारना किये बिना ही अकेले भगवान की सेवा में पहुँच गये थे । पर्षदा इकट्ठी हुई । प्रवचन हुआ । प्रवचन के बाद कितने ही श्रावक श खजी के पास पहुँचकर उलाहना देने लगे, खीजने लगे । अवसर देखकर भगवान ने स्वत: ही श्रावको को स बोधन कर कहा

कि- हे आर्यों! तुम श ख श्रमणोपासक की इस तरह हीलना खि सना नहीं करो । श ख श्रावक प्रियधर्मी दृढधर्मी है और वर्धमान परिणामों के कारण ऐसा किया है और श्रेष्ठ धर्मजागरण से पौषध का आराधन किया है अर्थात् कोई भी धोखा देने के परिणाम से ऐसा नहीं किया है । प्रभु के स्पष्टीकरण करने पर श्रावक शा त हुए । प्रभु के साथ प्रश्न-चर्चा हुई । गौतम स्वामी ने जागरणा के विषय में पूछा । श खजी ने चारों कषाय का फल पूछा । कषाय का कटुविपाक(अशुभ फल) सुनकर श्रावकों ने श खजी से क्षमायाचना की । सभी श्रावक अपने-अपने घर गये। गौतम स्वामी ने श खजी का भविष्य पूछा । भगवान ने कहा- श खजी दीक्षा नहीं लेंगे कि तु अनेक वर्षों तक श्रावक व्रतों का आराधन कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होंगे । फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर यावत् स यम-तप का आराधन कर, स पूर्ण कर्मों का क्षय करके मुक्त होंगे । यह स पूर्ण वर्णन यहाँ प्रथम उद्देशक में हक्त ।

प्रश्न-३ : श ख आदि श्रावकों के उक्त वर्णन से पौषध स ब धी क्या फलितार्थ निकलता है?

उत्तर– पुष्कली जी जब श ख जी को बुलाने उनकी पौषधशाला में पहुँचे तब उन्होंने पहले ईरियावहि का कायोत्सर्ग किया, फिर वार्ता की । इससे उनका पौषध में जाना स्पष्ट होता है । फिर पुष्कली जी के लौट आने के बाद सभी श्रावकों ने आहार किया ।

(१) श्रावक के ११ वें व्रत में उपवास बिना भी पौषध किया जा सकता है। (२) ऐसा पौषध भी प्रतिपूर्ण पौषध कहला सकता है (सावद्य त्याग की अपेक्षा)। (३) पौषध पक्चक्खाण के बाद आहार किया जा सकता है । (४) पौषध पच्चक्खाण के बाद आवश्यक होने पर यतना पूर्वक गमनागमन किया जा सकता है । उसके लिये पहले से मर्यादा करने की आवश्यकता नहीं होती है । (५) व्याख्यान सुनने के बाद अपने-अपने घर जाकर आवश्यक निर्देश कर फिर ए क जगह एकत्रित होने में एक प्रहर से अधिक समय भी लग सकता है ।(६) खाते-पीते सामुहिक पौषध की वार्ता न होती तो वे श्रावक उस दिन पक्खी होने के कारण घर जाकर पौषध तो करते ही किन्तु

कैसा पौषध करते और कब करते यह निर्णय उस समय तक नहीं लिया गया होगा । अत: घर जाकर कोई खाते-पीते पौषध भी करते, कोई उपवास युक्त भी पौषध करते एव कोई घर जाकर शीघ्र पौषध करते और कोई कुछ देर से भी करते । अत: प्रतिपूर्ण पौषध व्रतधारी उन श्रावकों के भी आठ प्रहर के समय का या चौवीहार त्याग का अर्थात् आहार नहीं करने का भी आग्रह नहीं था ।

इन सब फलितार्थों में भगवती सूत्र, ६ प्रतिपूर्ण पौषध व्रतधारी भगवान के शासन के प्रमुख श्रावक एव भगवान महावीर स्वामी साक्षी रूप एव प्रमाण रूप है । अत: पर पराओं के आग्रह में किसी के द्वारा इन सूत्र फलितार्थों को इन्कार नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न-४ : पौषध की विधि के लिये यहाँ क्या फलित होता है ?

उत्तर- पौषध लेने के पहले अपने सोने, बैठने, रहने के स्थान का प्रतिलेखन प्रमार्जन किया जाता है । शारीरिक लघुश का, दीर्घश का आदि निवारण योग्य उच्चार-पासवण भूमि का प्रतिलेखन अर्थात् निरीक्षण-प्रेक्षण किया जाता है । अपने बैठने-सोने और पौषध में उपयोग में लेने के उपकरणों का आसन-शयन का प्रतिलेखन किया जाता है । ऐसा श खजी ने किया था । पौषध में कोई भी आवश्यक गमनागमन किया जाय तो उसका ईर्यावहि प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग किया जाता है । ऐसा पुष्कलीजी ने श खजी की पौषध शाला में पहुँचने पर किया था । उसके बाद ही प्रास गिक बात की थी ।

प्रश्न-५ : श्रावक-श्राविका के व दन-नमस्कार किस प्रकार होता हे ?

उत्तर- पुष्कलीजी जब श ख जी के घर गये तब श ख जी की उत्पला भार्या सात-आठ कदम सामने गई और व दन नमस्कार कर आसन निम त्रित करके फिर आने का कारण पूछा । यहाँ पाठ में हाथ जोडकर मस्तक झुकाने की प्रवृत्ति के लिये 'व दइ-णम सइ' ऐसा प्रयोग है । पुष्कली जी ने श ख जी की पौषधशाला में पहुँचकर ईर्यावहि प्रतिक्रमण करके फिर श ख जी को व दन नमस्कार करके अपनी बात शुरू की । इस प्रकार इस वर्णन से श्रावक-श्राविकाओं का परस्पर हाथ जोड

कर मस्तक झुकाने रूप व दन नमस्कार करने का स्पष्ट होता है ।

प्रश्न-६ : त्याग भावनाओं का महत्त्व अधिक होता है यह यहाँ से कैसे फलित होता है ?

उत्तर- सामान्य लौकिक बुद्धि से देखा जाय तो श ख जी ने ही खाते-पीते पौषध का प्रस्ताव रखा था तदनुसार उन्हें भी करना चाहिये था । कि तु उन्होंने त्याग-तप की वृद्धि के परिवर्तित भावों को गौण नहीं किया, उनका समादर किया, उसे ही कार्यान्वित किया । क्यों कि खाते-पीते पौषध की अपेक्षा उपवास युक्त पौषध का महत्त्व त्याग की अपेक्षा विशेष है ही, इसमें कोई भी श का नहीं है । फिर भले श्रावकों का (अव्यवहारिकता के लिये) उपाल भ सुनना पडे उसे म जूर किया। पुष्कली जी आये तो उन्हें विवेक पूर्वक अपना व्रत कह दिया। पुष्कली जी भी उत्तर सुनकर विवेक के साथ चले गये । त्याग वृद्धि के पीछे हुई अव्यवहारिकता की दृष्टि के मानस से कुछ श्रावकों ने उपाल भ दिया, रोष भी प्रगट किया । कि तु भगवान ने श ख जी की धर्मजागरणा त्याग तप का महत्त्व दर्शाकर श्रावकों को शा त रहने का फरमाया । इससे भी स्पष्ट है कि व्यवहारिकता का महत्त्व भले ही अपनी जगह पर उचित्त है तथापि त्याग-तप, आत्म विकास की वृद्धि जहाँ हो तो व्यवहारिकता को गौण किया जाना आगम दृष्टि से अनुचित नहीं माना गया है ।

प्रश्न-७ : खाते-पीते पौषध करने वाले श्रावकों ने अपने व्रत नियम के छ प्रतिपूर्ण पौषध में इसे नहीं गिन कर अलग किया हो, ऐसा मान सकते हैं ?

उत्तर- आगमों में श्रावकों के ६ पौषध के नियम की तिथियों का भी स्पष्टीकरण है कि- एक महीने की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी तथा अमावश, पूनम इन छ दिनों में वे प्रतिपूर्ण पौषध करने वाले थे । इन श्रावकों ने जो पौषध किया था वह पक्खी का दिन था और पक्खी चौदस या अमावस-पूनम को ही होती है । इसलिये पक्खी का दिन उन श्रावकों के ६ पौषध का ही दिन था ।

भगवान ने दूसरे दिन श्रावकों को श ख जी पर आक्रोश करने

का मना किया कि तु यह नहीं कहा कि तुमने खाते-पीते पक्खी पौषध किया यह अच्छा नहीं किया । गौतम स्वामी ने भी इस विषय की कोई चर्चा नहीं की । और आगम में उपलब्ध इस घटना में भी उन श्रावकों ने पौषध व्रत गलत किया था या अपनी ६ पौषध की प्रतिज्ञा में आगार का सेवन किया था, ऐसा कुछ कथन नहीं किया गया ।

प्रश्न–८ : उन श्रावकों ने पौषध का पच्चक्खाण खाने के बाद लिया या पहले लिया ?

उत्तर– पुष्कली श्रावक श ख श्रावक को बुलाने गये तब उन्होंने पौषध पच्चक्खाण ले लिये थे । तभी उन्होंने श ख जी की पौषधशाला में पहले ईर्यावहि प्रतिक्रमण किया था, फिर बात की थी । सामान्य रूप से श्रावक कहीं भी जावे तो वहाँ ईर्यावहि नहीं करते हत्त । पुष्कली आदि श्रावकों ने श ख जी के नहीं आने पर फिर ही आहार ग्रहण का कार्यक्रम किया था । यह सूत्र पाठ से स्पष्ट होता है । अत: उन श्रावकों ने पौषध के पच्चक्खाण में आहार पानी के सिवाय पच्चक्खाण किया था । तदनुसार सावद्य योग का, पापों का स पूर्ण त्याग २ करण, ३ योग से होने के कारण उनका यह पौषध प्रतिपूर्ण पौषध की गिनती में लिया गया है । ऐसा समझना योग्य है ।

प्रश्न–९ : तीन जागरणा कौन सी है और कषाय का फल क्या बताया गया है ?

उत्तर– सर्वज्ञ–सर्वदर्शी अरिह त भगव तो की धर्म आराधना रूप धर्म जागरणा को **बुद्ध जागरणा** कहा गया । अन्य सभी श्रमणों की धर्म आराधना रूप धर्म जागरणा को **अबुद्ध जागरणा** (सर्वज्ञ से अतिरिक्त की जागरणा) कही गई है और श्रमणोपासकों की धर्म आराधना रूप जागरणा को **सुदक्खु जागरणा** कही गई है ।

कषाय का फल इस प्रकार बताया गया है– क्रोध आदि के वशवर्ती जीव सात कर्मों की स्थिति की वृद्धि करता है, अनुभाग को तीव्र करता है, प्रकृति को गाढी करता है और प्रदेशों की वृद्धि करता है । आयुष्य कर्म कभी बा धता है, कभी नहीं बा धता है क्यों कि वह तो जीवन में एक बार ही ब धता है । अशाता वेदनीय कर्म का बार बार

ब ध करता है और कषाय वशवर्ती जीव भवभ्रमण की वृद्धि करके स सार परिभ्रमण करता रहता है । इस प्रकार का वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र तथा भगवतीसूत्र में भी अनेक बार आया है ।॥ उद्देशक–१ स पूर्ण ॥

प्रश्न–१० : जय ती श्रमणोपासिका कौन थी और उसने भगवान से क्या प्रश्न पूछे थे ?

उत्तर– कौशा बी नगरी में उदायन राजा राज्य करता था । उसके पिता शतानीक और दादा सहस्रानीक थे। उसकी माता मृगावती देवी और भूआ जय ती श्राविका थी । मृगावती चेडा राजा की पुत्री थी और जय ति श्राविका सहस्रानीक राजा की पुत्री थी ।

एक बार कौशा बी नगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे । उदायन, मृगावती एव जय ती तीनों ही समूह के साथ भगवान की सेवा में पहुँचे । प्रवचन सुना । उदायन राजा और उसकी माता भगवान को व दन नमस्कार करके चले गये । जय ति श्राविका ने भगवान को व दन नमस्कार करके कुछ प्रश्न पूछे । उत्तर सुनकर हृदय गम करते हुए भगवान के समक्ष दीक्षा के भाव प्रगट किये और वहीं पर देवान दा की तरह दीक्षा अ गीकार की और उस भव से मुक्त हो गई । दीक्षा की भावना जानकर राजा वगैरह का वापिस आना स्वत: समझ लेना ।

यहाँ पर उद्देशक–२ में जय ती श्रमणोपासिका के परिचय में उसके पुत्र परिवार का वर्णन नहीं है । उसके स्वत त्र मकान स्थान अनेक थे जो साधु–साध्वी के ठहरने के काम आते रहते थे। इसलिये वह भगवान के साधु–साध्वियों की प्रथम **शय्यातरी(**मकान का सुपात्र दान करने वाली) थी । कौशा बी में ही स्वत त्र मकानों की मालिकी से ऐसा अनुमान होता है कि वह उसी नगरी की बाल–विधवा थी । श्वसुर कुल में कोई नहीं होने से वह पितृ कुल में रहने वाली थी इसलिये उसके अपने अनेक मकान खाली पडे रहते थे ।

प्रश्न–११ : जय ती श्रमणोपासिका के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर क्या है ?

उत्तर– जय ती श्रमणोपासिका ने व दन नमस्कार कर भगवान से

[illegible] और [illegible] अलग अलग [illegible] बार बार [illegible]

प्रश्न–१२ : [illegible]

उत्तर– [illegible]

प्रश्न–१३ : [illegible]

उत्तर– [illegible]

प्रश्न–१४ : [illegible]

उत्तर– [illegible]

६ होते हक्त । यथा- १+४, २+३, १+१+३, १+२+२, १+१+१+२, १+१+१+१+१ । **छ प्रदेशी के-** २, ३, ४, ५ या ६ यों पाँच विभाग एव भ ग १० होते हक्त । यथा- १+५, २+४, ३+३, १+१+४, १+२+३, २+२+२, १+१+१+३, १+१+२+२, १+१+१+१+२, १+१+१+१+१+१ । इसीप्रकार आगे भी भ ग बनाना चाहिये । सात प्रदेशी के १४, आठ प्रदेशी के-२१, नौ प्रदेशी के- २८(२९) और दस प्रदेशी के-३९ (४१) भ ग ।

स ख्यात प्रदेशी के- द्विस योगी-११, तीन स योगी-२१, चार स योगी-३१, पाँच स योगी-४१, छ:स योगी-५१, सात स योगी-६१, आठ स योगी-७१, नौ स योगी-८१, दस स योगी-९१ और स ख्यात स योगी का एक भ ग । कुल = ४६० भ ग ।

अस ख्यात प्रदेशी के- द्विस योगी-१२, तीन स योगी-२३, चार स योगी-३४, पाँच स योगी-४५, छ: स योगी-५६, सात स योगी-६७, आठ स योगी-७८, नौ स योगी-८९, दस स योगी-१००, स ख्यात स योगी-१२, अस ख्यात स योगी का एक । कुल = ५१७ भ ग ।

अन त प्रदेशी के- द्विस योगी-१३, तीन स योगी-२५, चार स योगी-३७, पाँच स योगी-४९, छ: स योगी-६१, सात स योगी-७३, आठ स योगी-८५, नौ स योगी-९७, दस स योगी-१०९, स ख्यात स योगी-१३, अस ख्यात स योगी-१३, अन त स योगी का एक । कुल=५७६ भ ग ।

यद्यपि स ख्यात प्रदेशी के स ख्याता भ ग, अस ख्यात प्रदेशी के अस ख्याता भ ग एव अन तप्रदेशी के अन ता भ ग हो सकते हक्त किन्तु वह कथन पद्धति में स भव नहीं है। अत: आगम में एक अपेक्षित कथन पद्धति कायम करके क्रमश: उक्त ४६०, ५१७, ५७६ भ ग ही कहे हक्त । गा गेय अणगार के प्रश्नोत्तर रूप प्रवेशनक भ ग में भी ऐसी ही पद्धति स्वीकार की गई है । अपेक्षित पद्धति से यहाँ ये भ ग इस प्रकार बन्ते हक्त-

स ख्यात प्रदेशी के भ ग का तरीका :- द्वि स योगी= १+स ख्यात, २+स ख्यात, ३+स ., ४+स ., ५+स ., ६+स ., ७+स ., ८+स ., ९+स ., १०+स ., स +स .=११ भ ग । **तीनस योगी=** १+१+स ., १+२+स ., १+३+स ., १+४+स ., १+ ५+स ., १+६+स ., १+७+स ., १+८+स .,

१+९+स ., १+१०+ स ., १+स +स ., २+स .+स ., ३+स .+स ., ४+स .+स ., ५+स .+स ., ६+स.+स., ७+स.+स., ८+स .+स ., ९+स .+स ., १०+स .+स ., स.+स.+स. = २१ भ ग। इसी विधि से स ख्यात अस ख्यात अन तप्रदेशी के दस स योगी तक के भ ग बनाना चाहिये ।स ख्यात प्रदेशी के स ख्यात भ ग होने में सभी परमाणु हो जाते हक्त ।

अस ख्यात प्रदेशी में स ख्यात स योगी १२ भ ग- स ख्याता परमाणु+एक अस ख्यप्रदेशी, स ख्याता द्विप्रदेशी+एक अस ख्यप्रदेशी, इसी प्रकार तीन प्रदेशी आदि स ख्याता ख ड होंगे और एक अस ख्य प्रदेशी का। यथा- ४प्रदेशी स . + १अस ., ५प्रदेशी स . + १अस ., ६प्रदेशी स . + १अस ., ७प्रदेशी स . + १अस ., ८प्रदेशी स . + १ अस ., ९प्रदेशी स . + १अस ., १०प्रदेशी स .+१अस ., स ख्यातप्रदेशी स ख्याता+१अस ., स ख्याता ही ख ड अस ख्यात प्रदेशी के । ये १२ भ ग हुए ।

अन तप्रदेशी के स ख्यात स योगी और अस ख्यात स योगी १३-१३ भ ग- (१) स ख्याता परमाणु+एक अन तप्रदेशी यावत् (१०) स ख्याता दस प्रदेशी+एक अन त प्रदेशी (११) स ख्याता स ख्यात प्रदेशी+एक अन त प्रदेशी । (१२) स ख्याता अस ख्यात प्रदेशी+एक अन त प्रदेशी (१३) स ख्याता ही अन त प्रदेशी । इसी प्रकार अस ख्य के साथ भी ये ही १३ भ ग बनते हक्त ।

एक भ ग- स ख्यात प्रदेशी, अस ख्यात प्रदेशी और अन त प्रदेशी का जो अ तिम १-१ भ ग कहा है उसमें सभी परमाणु हो जाते हक्त अर्थात् स ख्यात प्रदेशी के स ख्यात स योगी भ ग में सभी(स ख्यात) परमाणु, अस ख्यात प्रदेशी के अस ख्य स योगी भ ग में सभी(अस ख्यात) परमाणु और अन त प्रदेशी के अन त स योगी भ ग में सभी(अन त) परमाणु हो जाते हक्त ।

विशेष-* *यहाँ मूलपाठ में नौप्रदेशी में एक भ ग (२-२-५) और दस प्रदेशी में दो भ ग (२+२+६ और १+२+२+५) लिपि दोष से छूट गये हक्त । इसलिये उनकी सही भ ग स ख्या २९ और ३१ कोष्टक में लिखी है । लिपिदोष से छूटे हुए भ ग नहीं बनने में कोई कारण नहीं होता है ।

प्रश्न-१५ : पुद्‍गल परावर्तन कितने प्रकार के होते हक्त और उनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर- पुद्‍गल परावर्तन के सात प्रकार हक्त- (१) औदारिक पुद्‍गल परावर्तन (२) इसी तरह वैक्रिय (३) तैजस (४) कार्मण (५) मन (६)

वचन (७) श्वासोश्वास पुद्गल परावर्तन। पुद्गलों के अन त प्रकार होते हक्त तथापि अपेक्षा से यहाँ सात प्रकार की पुद्गल वर्गणाओं से सात पुद्गल परावर्तन कहे गये हक्त ।

जीव अनादि काल से उपरोक्त सातों प्रकार के पुद्गल ग्रहण करते हक्त और छोडते हक्त । लोक के समस्त पुद्गलों को जीव औदारिक शरीर रूप में ग्रहण कर ले उतने समय को औदारिक पुद्गल परावर्तन कहते हक्त । इसमें कम से कम एक बार सभी पुद्गलों का औदारिक रूप में ग्रहण होना अनिवार्य है । इसके बीच जिनका दुबारा तिबारा आदि ग्रहण हो जाय उसकी कोई गिनती होती नहीं है । इसी तरह वैक्रिय, तैजस आदि वर्गणा के रूप में समस्त पुद्गलों के ग्रहण का नम्बर आ जाने पर वे वे पुद्गल परावर्तन बनते हक्त ।

प्रत्येक पुद्गल परावर्तन के बनने में अन त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी अर्थात् अन त कालचक्र व्यतीत होते हक्त तब एक जीव लोक के समस्त पुद्गलों को उस-उस एक वर्गणा रूप में ग्रहण कर पाता है । जिन पुद्गलों के ग्रहण का स योग जीव को ज्यादा मिलता है, वह पुद्गल परावर्तन जल्दी पूर्ण होता है। यथा- कार्मण पुद्गल परावर्तन । क्यों कि वह प्रत्येक भव में और अधिकतम ग्रहण स योग वाला है । जिन पुद्गलों के ग्रहण का स योग जीव को कम होता है, वह पुद्गल परावर्तन ल बे काल से पूर्ण होता है, यथा- वैक्रिय पुद्गल परावर्तन ।

इस अपेक्षा- (१) सबसे छोटा (कम समय में पूर्ण होने वाला) कार्मण पुद्गल परावर्तन है। (२) उससे तैजस पुद्गल परावर्तन बडा होता है। इसके पुद्गल कार्मण जितने निर तर ग्रहण नहीं होते। (३) इससे औदारिक पुद्गलपरावर्तन बडा होता है। नरक देव में उसका स योग नहीं रहता है। (४) इससे श्वासोश्वास पुद्गलपरावर्तन बडा होता है क्यों कि अपर्याप्त मरने वाले अन त जीवों के श्वासोश्वास नहीं होता है और देवों के श्वासोश्वास अल्प होते हक्त। (५-७) उससे क्रमशः मन, वचन और वैक्रिय पुद्गलपरावर्तन बडे हक्त और लम्बे काल में पूर्ण होते हक्त ।

जो पुद्गल परावर्तन बडे हक्त वे जीव ने आज तक कम किये हक्त और जो छोटे है वे जीव ने ज्यादा किये हक्त । इस अपेक्षा से जीव ने (१) सबसे कम वैक्रिय पुद्गल परावर्तन किये हक्त और (७) सबसे

अधिक कार्मण पुद्गल परावर्तन किये हक्त । शेष पाँचों का उल्टे क्रम से अधिक-अधिक समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न-१६ : चोवीस द डक के एक जीव ने या अनेक जीवों ने पुद्गल परावर्तन कितने किये हक्त और कितने करेंगे?

उत्तर- स ख्या की अपेक्षा वैक्रिय पुद्गल परावर्तन अल्प होते हक्त और क्रमशः वचन, मन श्वासोश्वास, औदारिक, तैजस एव कार्मण पुद्गल परावर्तन अन त गुणे अधिक होते हक्त ।

(१) चौवीस द डक के **एक एक जीव ने** भूतकाल में सातों पुद्गल परावर्तन अन त किये हक्त भविष्य में कोई तो नहीं करेगा और कोई करेगा तो १-२-३ उत्कृष्ट अन त(एगुत्तरिय) पुद्गल परावर्तन करेगा ।

(२) चौवीस द डक के **अनेक जीवों ने** भूतकाल में सातों पुद्गल परावर्तन अन त किये और भविष्य में भी अन त करेंगे ।

(३) चौवीस द डक के **एक-एक जीव ने प्रत्येक द डक में** ये सातों पुद्गल परावर्तन अन त किये हक्त और भविष्य में कोई तो नहीं करेगा और कोई करेगा तो एगुत्तरिय । विशेष यह है कि नारकी देवता में प्रत्येक द डक के जीव ने औदारिक पुद्गल परावर्तन भूतकाल में भी नहीं किये और भविष्य में भी नहीं करेगा । ऐसे ही ५ द डक (स्थावर) में वचन पुद्गल, ८ द डक(पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय) में मन पुद्गल और ७ द डक (चार स्थावर तीन विलेन्द्रिय) में वैक्रिय पुद्गल परावर्तन नहीं किये, नहीं करेंगे ।

(४) चौवीस द डक के **अनेक जीवों ने २४ द डक में** सातों पुद्गल परावर्तन अन त किये हक्त और अन त करेंगे । विशेष यह है कि १४ द डक में औदारिक, ५ द डक में वचन, ७ द डक में वैक्रिय और ८ द डक में मन पुद्गल परावर्तन जीवों ने नहीं किये, नहीं करेंगे ।

अस ख्य सूक्ष्म समय से एक आवलिका होती है यावत् ८४ लाख शीर्ष प्रहेलिका ग की एक शीर्ष प्रहेलिका होती है । उसके आगे पल्य में बालाग्र भरने की उपमा से काल का माप होता है । वह है- पल्योपम और सागरोपम । इसका विस्तृत वर्णन अनुयोगद्वार सूत्र में है । दस क्रोडा क्रोड पल्योपम का एक सागरोपम होता है । ऐसे चार क्रोडाक्रोड सागरोपम का अवसर्पिणी का पहला आरा, तीन क्रोडाक्रोड

सागरोपम का दूसरा आरा और २ क्रोडाक्रोड सागरोपम का तीसरा आरा होता है। चौथा, पाँचवाँ, छट्ठा आरा मिलकर एक क्रोडाक्रोड सागरोपम का होता है। इस प्रकार दस क्रोडाक्रोड सागरोपम की एक अवसर्पिणी और दस क्रोडाक्रोड सागरोपम की एक उत्सर्पिणी होती है ।

जीवों के स सार भ्रमण का काल, कायस्थिति आदि सभी वैक्रिय पुद्‌गल परावर्तन की अपेक्षा समझना चाहिये । अन्य ६ पुद्‌गल परावर्तन केवल ज्ञेय मात्र है । ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१७ : रूपी-अरूपी पदार्थ किसे कहते हक्त और वे कौन-कौन से हक्त ?

उत्तर- जिन पदार्थों में, जिन बोलों में, जिन तत्त्वों में ५ वर्ण २ ग ध ५ रस और ८ स्पर्श इन २० में से कोई भी वर्ण आदि होते हक्त वे **रूपी** कहलाते हक्त और जिनमें इन वर्णादि में से कोई भी नहीं होता है, वे **अरूपी** कहलाते हक्त । रूपी पदार्थों के मुख्य दो प्रकार किये गये हक्त- (१) चौफर्सी (२) अठफर्सी । जिन रूपी पदार्थों में आठ स्पर्श में से १. खरदरा २. सुहाला ३. हल्का ४. भारी ये चार स्पर्श नहीं होते हक्त । वे चौफर्सी रूपी पदार्थ कहे जाते हक्त और शेष सभी रूपी पदार्थ अठफर्सी होते हक्त । ये तीनों प्रकार के पदार्थ इस प्रकार है-

(१) चौफर्सी रूपी पदार्थ- १८ पाप, ८ कर्म, कार्मण शरीर, मन-वचन का योग, सूक्ष्म पुद्‌गल स्क ध। इन ३० बोलों में वर्णादि १६ बोल पाये जाते हक्त । चार स्पर्श खरदरा आदि नहीं होते हक्त । **(२) अठफर्सी रूपी पदार्थ**- ६ द्रव्य लेश्या, ४ शरीर, काययोग, बादर पुद्‌गल स्क ध एव घनवाय, तनुवाय, घनोदधि । इन १५ बोल में वर्ण आदि २० ही बोल पाये जाते हक्त । **(३) अरूपी पदार्थ**- १८ पाप त्याग(विरति), १२ उपयोग, धर्मास्तिकाय आदि ५ द्रव्य (पुद्‌गल द्रव्य को छोडकर), ६ भावलेश्या, उत्पातिकी आदि चार बुद्धि, ४ अवग्रह आदि, ३ दृष्टि, ५ जीव की शक्ति उत्थान-कर्मादि, ४ स ज्ञा । ये ६१ बोल यहाँ अरूपी दर्शाये हक्त । वर्ण आदि इनमें नहीं होते हक्त, मात्र **अगुढलघु** एक गुण पाया जाता है । स सार के सर्व द्रव्यों में कोई वर्णादि २० बोल वाले हक्त, कोई वर्णादि १६ बोल वाले हक्त, कोई (परमाणु आदि) वर्ण आदि ५ बोल वाले हक्त । अर्थात् १वर्ण+१ग ध+१रस+२स्पर्श वाले हक्त । कोई अरूपी अर्थात् वर्ण

आदि से रहित हक्त । तीनों काल अरूपी द्रव्य हक्त ।

प्रश्न-१८ : क्रोध आदि चारों कषाय के पर्यायवाची शब्द कितने हक्त ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-५ में क्रोधादि के पर्याय शब्द इस प्रकार कहे हक्त- **(१) क्रोध के पर्यायवाची १० शब्द**- क्रोध, कोप, रोष, दोष, अक्षमा, स ज्वलन, कलह, चा डिक्य, भ डण, विवाद। **(२) मान के पर्यायवाची १२ शब्द**- मान, मद, दर्प, स्त भ, गर्व, आत्मोत्कर्ष, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम, दुर्नाम । **(३) माया के पर्यायवाची १५ शब्द**- माया, उपधि, नियडी, वलय, गहन, णूम, कल क, कुरूप, जिह्मता, किल्विष, आदरणता, गूहनता, **व चनता, प्रतिकु चनता, साई (सादि)योग । (४) लोभ के पर्यायवाची १६ शब्द**- लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, का क्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिज्जा, अभिज्जा, आश सना, प्रार्थना, लालपनता, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, न दिराग । ये सभी शब्द एकार्थक है तथापि इनके व्युत्पत्ति परक आदि अलग-अलग अर्थ भी होते हक्त। जो विवेचन युक्त भगवतीसूत्र में देखना चाहिये ।

हिंसा आदि पाँच पापों के अनेक नाम और पर्यायवाची शब्द प्रश्नव्याकरण सूत्र में हक्त। शेष ९ पापों के अर्थ इस प्रकार हक्त- (१०) राग- पुत्र आदि स्वजन पर स्नेह (११) द्वेष-अप्रीति (१२) कलह-स्थूल वचनों से किसी को ज्यों-त्यों बोलना, वचन युद्ध। (१३) अभ्याख्यान-अविद्यमान दोषों का आरोप लगाना, मिथ्या कल क चढाना। (१४) पैशुन्य-चुगली करना, पीठ पीछे दोष प्रगट करना (१५) परपरिवाद- दूसरों की निंदा करना, अवगुण-अपवाद-अवहेलना करना, तिरस्कार-पराभव करना। (१६) रति-अरति-प्रतिकूल स योगों में जो उद्वेग होता है वह **अरति** है और मनानुकूल स योगों में हर्ष आन द के जो परिणाम होते हक्त वे **रति** रूप है। (१७) माया-मृषा-कपट युक्त झूठ, ठगाई, धोखेबाजी आदि में जो कपट प्रप च का व्यवहार होता है वह माया-मृषा पाप है। (१८) मिथ्यादर्शन शल्य-खोटी श्रद्धा, जिन वचन से विपरीत श्रद्धा । अठारह पापस्थानों में यह अ तिम पाप एव विशिष्ट पाप होने से शल्य- क टक की उपमा से युक्त कहा गया है । ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१९ : राहु विमान कितने प्रकार के, कितने वर्ण के होते हक्त । उसके पर्याय नाम कितने है और जगत में उसके क्या प्रवर्तन

दृष्टिगोचर होते हक्त ?

उत्तर– सूर्य–चन्द्र–ग्रह–नक्षत्र–तारे आदि पाँच ज्योतिषी विमान होते हक्त। जिसमें **राहु** यह ८८ ग्रह में से एक ग्रह है । इसके अनेक विमान हक्त जो पाँच ही र ग के होते हक्त, यथा–१. काला=काजल सरीखा । २. नीला=कच्चे तुम्बे सरीखा हरा । (३) लाल=मजीठ के समान । (४) पीला=हल्दी के समान (५) सफेद=राख के ढेर के समान । **राहु के पर्यायवाची नाम हक्त–** १.श्रृ गारक २. जटिलक ३. क्षत्रक ४. खर ५. दर्दुर ६. मकर ७. मत्स्य ८. कच्छप ९. कृष्ण सर्प ।

राहु का विमान गमनागमन करते हुए च द्र को आवृत्त करता है तो लोक में चन्द्र का ग्रसित किया जाना कहा जाता है । जब एक किनारे से आवृत्त करते हुए निकलता है तब चन्द्र का कुक्षि भेद कहा जाता है। आवृत्त करके जब पुनः लौटता हुआ अनावृत्त करता है तब लोक में चन्द्र का वमन किया जाना कहा जाता है। जब उपर–नीचे सब तरफ से आवृत्त कर देता है तब च द्र ग्रसित कर लिया गया कहा जाता है। वास्तव में ये सब आच्छादन मात्र हक्त, ग्रसित करना नहीं ।

राहू विमान दो प्रकार के हक्त– १. नित्य राहु २. पर्व राहु । नित्य राहु रोजाना च द्र का प द्रहवाँ भाग आवृत्त करता है और फिर क्रमशः प द्रहवाँ भाग अनावरित=प्रकट करता है। पर्व राहु कभी जघन्य छ महीनों से चन्द्र को आवरित करता है और कभी ४२ महीनों से चन्द्र को आवरित करता है । सूर्य को जघन्य ६ महीनों से आवृत्त करता है, उत्कृष्ट ४८ वर्षों से ढाँकता है। इससे(पर्वराहु से) **चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण** होते हक्त । नित्य राहु से कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष की तिथियाँ बनती है ।

प्रश्न–२० : सूर्य–चन्द्र का गुण स पन्न नाम क्या है ?

उत्तर– सूर्य को आदित्य कहा गया है । समय, आवलिका, मुहूर्त, दिन, मास, वर्ष, युग यावत् उत्सर्पिणी वगेरे काल की आदि–प्रार भ करने वाला होने से इसका **आदित्य** नाम सार्थक है । सौम्य होने से चन्द्र का गुण स पन्न नाम **शशि** है ।

प्रश्न–२१ : चन्द्र-सूर्य ज्योतिषेन्द्र का कामभोग सुख किस प्रकार का होता है ?

उत्तर– नव विवाहित स्वस्थ पुढष सोलह वर्ष परदेश गमन से लौट

कर आया हो, वह मनोज्ञ आवास–शय्या स योग एव भोजन पान आदि को प्राप्त कर; मनोज्ञ, अनुरक्त, यौवन प्राप्त भार्या के साथ, मानुसिक, पाँच इन्द्रियजन्य विषयों का सेवन करते हुए वेदोपशाति काल में जैसा साता सुख का अनुभव करता है, उससे अन तगुण विशिष्टतर व्य तरों का कामसुख होता है, उससे नवनिकाय का अन तगुणा, उससे असुर कुमारों का अन त गुणा एव उससे च द्र सूर्य का अन तगुण विशिष्टतर कामभोग जन्य सुखानुभव होता है । ॥ उद्देशक–६ स पूर्ण ॥

प्रश्न–२२ : लोक में जीव के अन त जन्म–मरण को बकरियों के बाडे से किस तरह समझना ?

उत्तर– लोक के सभी आकाश प्रदेशों पर प्रत्येक जीव ने जन्म-मरण किये हक्त, कोई भी प्रदेश खाली नहीं रखा है। यहाँ १०० बकरियाँ रखने के वाडे में १००० बकरियाँ भरने का और छ महीने रखने का तथा उससे वाडे का मल-मूत्र आदि से स्पर्शित होने का दृष्टान्त दिया गया है और कहा गया है कि उस बाडे का कोई प्रदेश मलमूत्र से अस्पर्शित रह भी सकता है किन्तु जीव ने लोक का कोई भी प्रदेश जन्म-मरण से रिक्त नहीं रखा है क्यों कि अनादि काल से स सार और जीव दोनों है ।

विशेष रूप से यह भी समझना है कि पाँच स्थावर रूप में तो सर्वत्र लोक में जन्म-मरण स भव है। शेष जिस क्षेत्र में जिस द डक के जीवों के जन्म-मरण की योग्यता है और जहाँ जिस रूप में अन त जन्म-मरण स भव है, उनका ही कथन समझना चाहिये । यथा– नरक में मनुष्य रूप में नहीं होंगे तो अणुत्तर विमान में देव रूप में भी अन त भव नहीं होंगे, दो ही होंगे इत्यादि विवेक पूर्वक समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–२३ : प्रत्येक जीव के सब जीवों से माता–पिता आदि स ब ध हो गये हक्त क्या ?

उत्तर– यह जीव सब जीवों के माता-पिता आदि स ब धी रूप में भी अनेक बार या अन त बार जन्म चुका है और सभी जीव इसके माता पिता आदि बन चुके हक्त । इसी प्रकार शत्रु–मित्र एव दास, नौकर आदि के रूप में भी अनेक बार या अन त बार समझ लेना चाहिये । ॥ उद्देशक–७ स पूर्ण ॥

प्रश्न–२४ : तिर्यंच प चेन्द्रिय जीवों की उन्नत–अवनत दोनों दशा